कवि विद्यापतिठाकुरकृत

कीर्त्तिलता

(अबहट्ठ काव्य, विशुद्ध मूलपाठ, संस्कृत छायानुवाद, 'प्रबोधिनी'-हिन्दी-मैथिली-व्याख्या एवं विस्तृत भूमिका सहित)

डॉ० शशिनाथ झा



विद्यापति कृत

कीर्त्तिलता

(अबहट्ठ काव्य, विशुद्ध मूलपाठ, संस्कृत छायानुवाद, 'प्रबोधिनी'-हिन्दी-मैथिली-व्याख्या एवं विस्तृत भूमिका सहित)

सम्पादक अनुवादक व्याख्याकार

डॉ० शशिनाथ झा

भूतपूर्व प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष,
व्याकरण विभाग,
कामेश्वरसिंह-दरभंगा-संस्कृत-विश्वविद्यालय,
दरभंगा

2020 ई.

विद्यापति कृत कीर्त्तिलता (अबहट्ठ काव्य, विशुद्ध मूलपाठ, संस्कृत छायानुवाद, 'प्रबोधिनी'-हिन्दी-मैथिली-व्याख्या एवं विस्तृत भूमिका सहित)

सम्पादक अनुवादक एवं व्याख्याकार- पं. श्री शशिनाथझा, ड्योढ़ी पश्चिम, शुभङ्करपुर, दरभङ्गा- 846006, मो. 9199475909

प्रकाशक : भवनाथ झा

संस्करण : ई-बुक संस्करण, 2020 ई.

मूल्य : 50 रुपये मात्र

विषय-सूची

***

भूमिका

विद्यापति कृत कीर्त्तिलता अबहट्ठ भाषा में रचित गद्य-पद्यात्मक राज-चरित वर्णनात्मक प्रख्यात काव्य है । इसके आजतक दस संस्करण व्याख्यासहित प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु मूलपाठ में संशोधन की आवश्यकता बनी ही हुई है । इसके अनेक कारण हैं—इसकी भाषा से कम परिचय के कारण मूल पुस्तक (हस्तलेख) के प्रतिलिपिकारों ने इसे बहुत स्थलों पर विकृत कर दिया, सम्पादकों एवं व्याख्याकारों ने उन-उन अपपाठों का खींचातनी कर अर्थ बैठा दिया और मूल हस्तलेख एवं मूलभाषा (मैथिल अपभ्रंस) की सहायता लेने में शिथिलता की। फिर भी इस ग्रन्थ की अवहट्ठ भाषा और वर्ण्य विषय का विवेचन पर्याप्त रूप से हो चुका है। प्रस्तुत संस्करण में कीर्त्तिलता के मूल हस्तलेख (काठमाण्डू में स्थित) की फोटो प्रति एवं प्रतिलिपि का उपयोग किया गया है, प्राचीन एवं नवीन मैथिली भाषा को दृष्टि में रख कर इसका निरीक्षण किया गया है, मैथिली लिपि से प्रतिलिपि करने में जो स्वाभाविक रूप से भूल होती है, उसका ध्यान रख कर अर्थ संगति के अनुसार पाठ संशोधन किया गया है, पूर्व संस्करणों के पाठभेद से पाठ निर्धारण में सहायता ली गयी है और संस्कृतच्छाया एवं हिन्दी मैथिली व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

सर्वप्रथम कवीश्वर चन्दा झा ने कीर्तिलता का परिचय लोगों को दिया । उन्होंने 1885 ई० में इसकी प्रतिलिपि की थी, जो विहार रिसर्च सोसाइटी, पटना में सुरक्षित है । पाठ संशोधन की जटिल समस्या के कारण वे इसे प्रकाशित नहीं कर सके । म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने काठमाण्डू स्थित इसके हस्तलेख की प्रतिलिपि के आधार पर बंगला अनुवाद सहित इसे प्रकाशित कराया (1924 ई०)। इसके बाद म० म० डॉ० गङ्गानाथ झा ने इसे सम्पादित करने का प्रयास किया, पर उन्हें भी यह कार्य दुरूह लगा और उन्होंने अपने किये हुए कार्य सहित कीर्त्तिलता की पाण्डुलिपि अपने

शिष्य डॉ० बाबूराम सक्सेना को सम्पादनार्थ दे दी जिन्होंने हिन्दी व्याख्या सहित इसे प्रकाशित (1929 ई०) किया। उसके बाद इसके अनेक संस्करण हुए और यह ग्रन्थ परिमार्जित होता गया। डॉ० शिव प्रसाद सिंह द्वारा छन्द, डॉ० अग्रवाल द्वारा फारसी शब्द, म० म० डॉ० उमेश मिश्र एवं प्रो० रमानाथ झा द्वारा मैथिली शब्द का परिचय कराना इन सम्पादकों की देन है । समुचित पाठ ग्रहण का दिशानिर्देश हेतु डॉ० श्रीवास्तव एवं पं० गोविन्द झा के संस्करण हैं ।

कीर्त्तिलता के हस्तलेखः–

1. नेपाल दरबार पुस्तकालय, काठमाण्डू– मैथिली लिपि पत्र संख्या– 1 से 37, लिपिकाल– 747 नेपाल संवत् (1627 ई०)। (इसकी फोटो प्रति पटना महाविद्यालय पुस्तकालय मैथिली ग्रन्थ सं०– 337 का यहाँ उपयोग किया गया है।)
2. अनूप सिंह पुस्तकालाय, बीकानेर– देवनागरी लिपि (स्कम्भतीर्थ में लिखित)– इसकी फोटो प्रति विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना में है । डॉ० अग्रवाल एवं डॉ० श्रीवास्तव ने इसका उपयोग किया है। लिपिकाल 1672 संवत् (1615 ई०) ।
3. विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना में दो पुस्तकें देवनागरी लिपि में फोटो प्रति प्राप्त हैं।
4. विहार रिसर्च सोसाइटी, पटना में कवीश्वर चन्दा झा लिखित देवनागरी लिपि में एक हस्तलेख प्राप्त है । प्रो० रमानाथ झा ने इसका उपयोग किया है।
5. कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृतविश्वविद्यालय में देवनागरी अक्षर में लिखित हस्तलेख जो नेपालस्थित ग्रन्थ की प्रतिलिपि है।

कीर्त्तिलता के संस्करणः-

1. कीर्त्तिलता– (बंगाक्षर में बंगला अनुवादसहित)– म० म० हर प्रसाद शास्त्री, कलकत्ता– 1924 ई०।

2. कीर्त्तिलता- हिन्दी अनुवादसहित- डॉ० बाबूराम सक्सेना, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी- 1923 ई० ।

3. कीर्त्तिलता और अबहट्ट भाषा- डॉ० शिव प्रसाद सिंह, इलाहाबाद- 1655 ई० ।

4. कीर्त्तिलता- म० म० डॉ० उमेश मिश्र, इलाहाबाद- 1960 ई० ।

5. कीर्त्तिलता- पाठभेद एवं हिन्दी व्याख्या- डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य सदन, झाँसी- 1962 ई० ।

6. कीर्त्तिलता- पाठभेद एवं मैथिली-विवरण- प्रो० रमानाथ झा, पटना- 1980 ई०।

7. कीर्त्तिलता- मैथिली अनुवादसहित- प्रो० सुरेन्द्र झा 'सुमन', दरभंगा- 1989 ई०।

8. कीर्त्तिलता- पाठभेद, प्राचीन संस्कृत व्याख्या एवं हिन्दी अनुवाद -डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना- 1988 ई० ।

9. कीर्त्तिलता- मैथिली अनुवादसहित- पं० गोविन्द झा, मैथिली अकादमी, पटना- 1992 ई०।

10. कीर्त्तिलता- संस्कृत छाया एवं हिन्दी व्याख्या- डॉ० शशिनाथ झा- 1997 ई० -दरभंगा।

प्रस्तुत- संस्करण में प्रयुक्त संकेत विवरणः-

1. ए ऐ ओ औ- इन वर्णों एवं इनकी मात्राओं को ह्रस्व निर्दिष्ट करने हेतु **इनके नोचे में रेखा दे दी गयी है ।**

2. सं०- संस्कृत । प्रा०- प्राकृत । प्रा० मै०- प्राचीन मैथिली । अब०- अबहट्ठ । मै०- मैथिली । हिं०- हिन्दी । प्रा०अ०- प्राकृत एवं अबहट्ठ । ल०सं०- लक्ष्मण संवत्।

पाठ संशोधन दिग्दर्शन

कीर्त्तिलता के अनेक हस्तलेख उपलब्ध हैं । तदनुसार अनेक प्रकाशन भी हो चुके हैं। इन में किसी एक को मूल आधार मान कर अन्य प्रतियों से पाठ संशोधन में सहायता ली जाय, यही उचित है। इसके रचयिता विद्यापति की लिपि मैथिली थी। उनके हाथ का लिखा हुआ ग्रन्थ श्रीमद्भागवत मैथिली लिपि में संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा में स्थित के अनुरूप इसी लिपि में लिखित प्राचीन हस्तलेख को आधार बनाना समुचित है, जो नेपाल राजकीय पुस्तकालय, काठमाण्डू में स्थित है और उसका फोटो पटना कालेज पुस्तकालय में उपलब्ध है जो प्रस्तुत संस्करण का मूल आधार है। विद्यापति की शैली उनकी अनेक रचनाओं से प्रसिद्ध ही है। उनकी कीर्त्तिपताका, गोरक्षविजय नाटक और सहस्रों गीतों की शैली पूर्वी अपभ्रंस से उद्भूत है और कीर्तिलता की नेपाल-पाण्डुलिपि भी उसी शैली में है । अतएव गुजरात में प्रतिलिपि की गयी देवनागरी लिपि वाली प्रति को जो पश्चिमी अपभ्रंस की शैली में ढाली हुई है, आधार बनाना समुचित नहीं है जैसा कि डॉ० श्रीवास्तव ने किया है। विद्यापति का अवहट्ठ (मिथिलापभ्रंस) पूर्वक्षेत्रीय अपभ्रंस होने से पच्छिमी अपभ्रंस से बहुत अंश में वैलक्षण्य रखता है। डॉ० श्रीवास्तव ने विद्यापति की कीर्त्तिपताका को पूर्वी अपभ्रंस की शैली में ही सम्पादित किया है, पर कीर्त्तिलता के विषय में वे बदल गये हैं। दोनों शैली का निदर्शन निम्नाकित है:-

नेपाल-पाण्डुलिपि	**गुजरात-पाण्डुलिपि**
काञि	काइं
खम्भारम्भञो	खंभारंभऊँ
मोञे	मैं
परबोधञो	परबोधऊँ
खम्भा	खंभा
मञ्चा	मंचा
अक्खर	अख्खर

लक्खण	लख्खण
पक्ख	पख्ख

अवहट्‌ठ एवं प्राचीन मैथिली में अनुस्वार को परसवर्ण होकर वर्ग पञ्चम लिखा जाता है, पर पश्चिमी अपभ्रंस में अनुस्वार ही देखा जाता है । वर्ग द्वितीय या चतुर्थ के द्वित्व में पूर्ववर्ण को वर्ग प्रथम या तृतीय होना पूर्वी अपभ्रंस का स्वभाव है । अन्तिम 'इं ऊं' के स्थान में बहुधा 'ञि ञो' देखा जाता है । तदनुसार प्रस्तुत संस्करण में नेपाल–पण्डुलिपि को अपनाया गया है । परन्तु अर्थ, छन्द, प्रकरण आदि की दृष्टि से डॉ० श्रीवास्तव द्वारा गृहीत पाठ का समादर किया गया है ।

नेपाल स्थित कीर्त्तिलता पोथी का लेखन काल 747 नेपाल संवत् है, जो 1627 ई० होता है। डॉ० श्रीवास्तव उक्त संवत् से अपरिचय के कारण इसे भ्रामक एवं अर्वाचीन (बहुत बाद का) मानते हैं, जबकि नेपाल के इतिहास सम्बन्धी किसी ग्रन्थ को देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि इस संवत् में 880 जोड़ने पर ईस्वी वर्ष बन जाता है । तदनुसार गुजरात वाली पोथी जो संवत् 1672 (1615 ई०) का है, उक्त पोथी से केवल 12 वर्ष प्राचीन है ।

तृतीय पल्लव अनुच्छेद संख्या 41 से 43 "अइसना पत्त्थावे" यह अंश मूल किसी भी प्रति में नहीं है, केवल डॉ० अग्रवाल जी के संस्करण के परिशिष्ट में संस्कृत टीकाकार ने इसे संस्कृतच्छाया के रूप में लिखा है, जिससे डॉ० श्रीवास्तव ने मूल अवहट्‌ठ बनाने का प्रयास किया, पं० गोविन्द झा ने इस अंश को गद्य एवं रड्‌डा छन्द में पाठोद्धार कर मूल के नजदीक पहुँचा दिया और यहाँ उसे अधिक परिष्कृत कर समुचित स्थान पर निविष्ट किया गया है ।

दो स्थल ऐसे हैं जिन्हें सभी सम्पादकों ने गद्य ही समझा है जबकि पं० गोविन्द झा ने उसे पद्य के रूप में पहचाना, (2–28 बाली–छन्द एवं 2–33 रड्‌डा) उसे यहाँ अपना लिया गया है । मूल हस्तलेख के वाचन में प्रतिलिपिकारों को कुछ वर्णों के पढ़ने में भ्रम होना स्वभाविक है क्योंकि मैथिली लिपि में र व, म स, न्द ण्ण एवं इकार एकार की मात्रा में बहुत

साम्य है । इन अशुद्धिओं का मूल पोथी के आधार पर संशोधन किया गया है । डॉ० अग्रवाल, डॉ० श्रीवास्तव एवं प्रो० रमानाथ झा के पाठभेद-टिप्पणी से पूर्ण सहायता लेकर समुचित पाठ-निर्धारण किया गया है और छन्द एवं अर्थ को सम्यक् रूप से प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है । यहाँ पूर्व सम्पादकों के दोषों की सूची देने की धृष्टता नहीं की जा रही है, पाठक स्वयं देखने का कष्ट करेंगे । अब कुछ पाठ संशोधन के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं:-

अनुच्छेद	**पूर्व संस्करण का पाठ**		**संशोधित पाठ**
1-5	विद्यापतिः कविः	-	विद्यापतेः कवेः
1-9	वेर करन्ता मम उबइ	-	वेर करन्ता मुज्झ जइ
1-10	दुहु नहि	-	दुज्ज न
1-12	कव्व कलाउ	-	कव्वह सार
1-16	भुञ्जइ	-	भुञ्जिअइ
1-20	अरु (अलग)	-	अरु (छन्द का ही अंश)
1-22	तिन्नि	-	तेन्ने
2-11	पुरमारि सञो	-	पुरसारिस हञो
2-12	निअ सत्ति	-	नीसत्ति
2-12	अहिमान सञो	-	अहिमानञे
2-30	सव्वउँ केरा रिज	-	सव्वहुँ केँ वारिज
2-33	गद्य	-	रड्डा
2-33	परा परिचय	-	परामरिस परिचय
2-39	तौल्लन्ति	-	तउल्लन्ति
2-49	देमा एक	-	देमएक
2-53	वित्थरि थारे	-	वित्त विथारे
3-5	कञोन चाहि	-	कञोन ताहि
3-5	कहए आन	-	कहए न आन

3-8	भरिअउ	-	भरिअ
3-21	चौसा	-	चौदीसा
4-43	पउआ	-	पाउआ
4-6	तोरह तोरि	-	तोरहि तोर
4-27	एक हाँक	-	एकहोँक
4-62	दाहिन हत्त्य समत्त्थ	-	दाहिन हत्त्थ ससत्त्थ

मूलग्रन्थ के पाठभेद के लिए प्रो० रमानाथ झा के संस्करण एवं मेरे सम्पादित पूर्व संस्करण देखे जा सकते हैं । यहाँ पाठभेद के भार से मुक्त विशुद्ध संशोधित पाठ ही रखा गया है ।

अब **अर्थनिर्देश** में पूर्वाचार्यो की अपेक्षया वैलक्षण्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

1. 'णं बलभद्दह कण्ह' 2-13-इस पंक्ति के स्पष्ट अर्थ से बड़ी समस्या सुलझ जाती है। कीर्त्ति सिंह भाई में कनिष्ठ थे फिर भी राजा वही कैसे बने? डॉ० श्रीवास्तव लिखते हैं सम्भवत: वीर सिंह वीरगति को प्रप्त कर गये!! पर ग्रन्थ के अन्त तक वह विजयी दीख पड़ते हैं। प्रस्तुत पंक्ति का अर्थ है-'ये दोनों भाई बलराम और कृष्ण के तुल्य थे, न कि राम और लक्ष्मण के तुल्य । छोटा भाई लक्ष्मण सेवक थे, पर कृष्ण छोटे रहने पर भी प्रधान ही थे।

पात्रहु तह 2-27- सुपात्र (सभ्य, उत्तम व्यक्ति) के द्वारा भी मेले में परस्त्री का बाला टूट जाता था। अभी भी मैथिली में संस्कृत की तरह पात्र शब्द का यही अर्थ होता है। पूर्वसंस्करणों में पात्र का अर्थ नर्तक किया गया जो संगत नहीं हैं।

3. 'घीवक बेचाँ दीअ घोड़' 3-26- घी के मूल्य में तक्र दिया जाता था । यहाँ घोड़ का घोड़ा अर्थ करना संगत नहीं है।

4. 'सरमी केरा सरम' 4-47- सभी ने 'सरम' शब्द को फारसी 'शरम' मानकर लज्जा अर्थ किया है, पर अर्थ सगत नहीं लगता है। वस्तुत: यह संस्कृत- श्रम-सरम-सरओं (मै०) से सम्बद्ध है। कृष्णकेलिमाला

नाटिका के चतुर्थ अंक में महाकवि नन्दीपति ने 'सरम' शब्द का व्यायाम करने के अर्थ में प्रयोग किया है:-

"यमुना तीर कदम्ब तर, प्रतिदिन सरम खेलाए"।

5. 'छोड़ु चक्की पिअ हेरब' 4-37- धूलि से व्याप्त अन्धेरे के कारण दिन मे भी चक्रवाकी (पक्षी) ने प्रिय को देखना छोड़ दिया । रात में वह प्रिय को नहीं देख सकती है ।

6. 'दुज्जन नाम मइल्ल' 1-12 । 'नाह न जानञो नाम' 1-15- 'दुर्जन तो मलिन ही होते है', 'हे नाथ ! मैं नहीं जनती हूँ' । यहाँ 'नाम' शब्द 'प्रसिद्धि' अर्थ में है, जैसे 'विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्' ।

उपर्युक्त संस्करण के बाद यह विद्यापति की 'कीर्तिलता' अभी भी संस्कार की अपेक्षा रखती है । पर जितना संस्कार हो सका, उसे जिज्ञासुओं के समक्ष शीघ्र लाने के उद्देश्य से प्रस्तुत संस्करण प्रकाश में लाया जा रहा है ।

कीर्तिलता के संक्षिप्त परिचय पाने के लिए प्रो० श्री सुरेन्द्र झा सुमन की पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं जो उनके सम्पादित इस पुस्तक की भूमिका में है:-

राय गणेश्वरक मलिक असलान द्वारा अपघात एवं तकर प्रतिक्रिया मे कीर्तिसिंह-वीरसिंहक गोहारि पर जौनपुरक इब्राहिम शाहक सहायता अभियान ओही शृंखलाक कड़ी थिक । कवि द्रष्टा विद्यापति ठाकुर द्वारा कीर्त्तिलता एही घटना लऽ कऽ रचित अछि । तेँ ई काव्य कथा रहितहुँ ऐतिहासिक 'दस्तावेज' थिक, तत्कालीन मिथिलाक शासनस्थिति सँ लए लोकजीवनक परिस्थितिक 'अलबम' थिक, संगहि संस्कृतोत्तर प्राकृत-पाली-अपभ्रंशक उत्तरकालीन अवहट्ट ओ देशभाषाक रूपपरिवर्त्तनक क्रमिक ह्रास-विकास-यात्राक प्रामाणिक 'रेकर्ड' थिक ।"

कीर्त्तिलता की विषयवस्तु

तिरहुत के राजा कीर्त्तिसिंह (1402-1404 ई.) की कीर्त्ति (यश) रूपी लता के मञ्च को विद्यापति ने अपने इस कीर्त्तिलता काव्य के रूप में खड़ा कर दिया है, जिस पर वह लता पल्लवित-पुष्पित-फलित हो रही

है । इस लता में चार पल्लव हैं । ग्रन्थ के आरम्भ में पाँच श्लोक एवं प्रत्येक पल्लव के अन्त में एक एक श्लोक संस्कृत में हैं । कुछ पद्य विशुद्ध प्राकृत में, कतिपय अंश विशुद्ध मैथिली में और अन्य सभी अंश अवहट्ठ (मैथिल अपभ्रंस) में हैं । पद्य के साथ ही प्राञ्जल गद्य भी हैं जो बाणभट्ट एवं ज्योतिरीश्वर को याद दिला देते हैं । यह राजस्तुति न होकर राजचरित है, अतः इसे विरुद काव्य नहीं कहा जा सकता है । गद्य-पद्य-मिश्रित प्रबन्ध काव्य होने के कारण यह चम्पूकाव्य है । इसमें अपभ्रंसकाव्योचित अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है । इसके विषयवस्तु को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है:-

कीर्त्तिलता के **प्रथम पल्लव में** मङ्गलाचरण तीन पद्य के द्वारा (शिवपरिवार, शिव एवं भारती वन्दनात्मक) प्रस्तुत किया गया है । उसके बाद विषय प्रस्ताव के क्रम में काव्य के श्रोता, ज्ञाता और दाता को उत्तरोत्तर दुर्लभ कहा गया है और काव्य के चरितनायक को इन तीनों गुणों से युक्त रहने के कारण इस काव्य द्वारा उनके अभ्युदय की कामना की गयी है । सज्जनप्रशंसा और दुर्जननिन्दा के बाद अबहट्ठ भाषा में रचना का कारण बताया गया है। इसके अनन्तर भृङ्गी और भृङ्ग के संवाद के रूप में इस कीर्त्तिलता काव्य को प्रस्तुत किया गया है।

इस संसार में सम्मानपूर्वक जीने के लिए वीर पुरुष का जन्म लेना ही सार वस्तु है । ऐसे वीर पुरुष बहुत कम ही होते हैं- राजा बलि, भगीरथ, परशुराम और राम ऐसे ही वीर पुरुष थे । वीर पुरुष उसे कहते हैं जो यश का इच्छुक, रणभूमि मे शूर, धार्मिक, धैर्यवान्, बलशाली और गुप्तदानी हों । इसी वीरपुरुष की परम्परा में राजा कीर्त्ति सिंह आते हैं । उनका 'ओइनी' ग्रामवासी विप्रवंश विद्यावैभव के लिए विख्यात है, जिस में राजा कामेश्वर, भोगीश्वर (फीरोज शाह के मित्र) और गणेश्वर हुए जो कीर्त्तिसिंह के प्रपितामह, पितामह एवं पिता थे । कीर्त्तिसिंह तीन भाई थे- राज सिंह, वीर सिंह और कीर्त्ति सिंह। ये बहुत वीर, दृढ़ प्रतिज्ञ और स्वाभिमानी थे। इन्होंने पितृवैर चुका कर डूबे हुए राज्य का उद्धार कर उज्ज्वल यश को प्राप्त किया।

द्वितीय पल्लव में- कीर्त्ति सिंह के पिता राजा गणेश्वर से मित्रता कर राज्य के लोभ में छल से असलान (तुर्क) ने उनका वध 252 ल० सं० (1361 ई०) में कर दिया ।

तिरहुत में अराजकता फैल गयी । सभी राजनैतिक एवं सामाजिक स्थिति बिगड़ गयी । वहाँ शासन चलाना मुश्किल हो गया । तब असलान ने सोचा कि कीर्त्ति सिंह को ही राज्य देकर इस स्थिति से निबटा जाय। माता, मित्र और मन्त्री सहमत थे, पर कीर्त्ति सिंह एवं वीर सिंह ने शत्रु की कृपा से राज्य लेना नहीं स्वीकारा और वप्पावैर सधाने की प्रतिज्ञा कर डाली।

दोनों भाई बलराम और कृष्ण के समान (बड़े की छत्रछाया में छोटा भाई ही नेतृत्व करने वाले) पैदल ही जौनपुर के शाह के दरबार को चल पड़े। लोगों को उन्हें देख कर हृदय में सहानुभूति आयी और रास्ते में अनेक प्रकार की सहायता की। बहुतों दिनों पर वे जौनपुर पहुँचे । नगर वर्णन, हाट वर्णन, मध्यदिन में हाट पर भीड़ का वर्णन, बस्ती वर्णन, वेश्याहाट वर्णन, वेश्या वर्णन, बाजार वर्णन के बाद तुर्कों का वर्णन, हिन्दू-तुर्क दोनों के सटे आवास एवं रीतिरिवाज में अन्तर का वर्णन एवं तुर्कों के बोलवाला का वर्णन है । वहाँ द्वारप्रकोष्ठ में विश्राम कर कीर्तिसिंह ने पदाधिकारी से परिचय प्रमाणित करा कर राजमहल के रहस्य जानकर गुणवान राजसेवकों से बात समझ कर उसी नगर में एक ब्राह्मण के घर में रात्रिविश्राम किया।

तृतीय पल्लव में- सुबह होते ही कीर्त्ति सिंह ने वजीर से मुलाकात की और अपना सभी कार्य निवेदित किया । मन्त्री इन पर बहुत प्रसन्न हुए और तुरत बादशाह के पास निवेदन पहुँचबा दिया । शुभ मुहूर्त्त में बादशाह से भेँट हुई । प्रसन्न मुद्रा में उसने कुशल पूछा । कीर्त्तिसिंह ने बारबार प्रणाम कर वार्ता सुनाई- आज मेरा कल्याण हो गया, पर एक ही विषय को लेकर आपका और मेरा भी अकुशल है कि आपका प्रताप तिरहुत में कम हो गया और मेरे पिता गणेश राए स्वर्गीय हो गये । शाह ने पूछा- कौन तिरहुत पर चढ़ आया है' । कीर्तिसिंह ने कहा- वह है, पर डर से आज तक किसी ने आप से नहीं कहा है, पर बात यही है कि आपका शासन जैसे यहाँ है वैसे ही तिरहुत पर असलान का है । उसने

पहले तो आप का हुक्म तोड़ा, तब गणेश राए को मारा, सम्पूर्ण विहार पर कब्जा कर लिया और छत्र धारण कर तिरहुत से कर वसूलता है, फिर भी यदि आपको रोष नहीं है तो आज ही अपने अभिमान को तिलाञ्जलि दे दी जाय । भुवन भर में आपका प्रताप फैला है । यदि आप शत्रु के नाम को सुनकर भी चुप रहें तो साधारण लोग कर ही क्या सकते हैं । वीरता तो अपनी जगह पर ही बैठी रहेगी ।

यह सुन सुलतान क्रोध से भर गया और खान उमारा सभी को फरमान हुआ कि अपने साज सज्जा के साथ तिरहुत के लिए रबाना हो ।

दरबार में हलचल मची । सभी तिरहुत के लिए चल पड़े । कीर्त्ति सिंह परम प्रसन्न हुए । इसी बीच दूसरी ओर से किसी आक्रमण की सूचना मिली । बस, सेना पूरब की ओर से मुड़कर पश्चिम की ओर हो गयी । अब कीर्त्तिसिंह घबड़ा गये । मेरा सभी परिश्रम बेकार हुआ । अवसर का चुका काम राजा के घर में फिर से होगा, यह बड़ा कठिन है ।

चिन्तित राजा को वीरसिंह ने कहा– गुणवान् इसकी चिन्ता नहीं करते हैं, राजा के घर में दुःख से ही कार्य सिद्ध होता है । राजा की नजर में आपके लिए स्थान बना हुआ है । प्रयास कीजिए, फल होगा ही, वीर पुरुष को उत्साह करना चाहिए।

सुलतानी तकतान का प्रस्थान हुआ । सुलतान के लिए सुदूर पश्चिम प्रदेश में कीर्ति सिंह सेना के साथ रहे । सुलतानी विजय वर्णन चलता है । सैन्य के जमाव से उस स्थान में महगी, वस्तु का आभाव होता है । कीर्त्ति सिंह ने तुर्क के साथ रहते हुए फलमूल खाकर परम कष्ट से आचार की रक्षा की । उनके पाथेय समाप्त हो गये, वस्त्र पुराने हो गये । ऋण भी दुर्लभ था, मानी व्यक्ति भीख भी नहीं मांग सकते, दीन वचन नहीं बोल पाते, चार चार दिन सहकर समय बिताते थे । प्रिय व्यक्ति भी छोड़ दिये, नौकर भी भूख से व्याकुल भाग गये, घोड़े को घास नहीं मिलता था, दुःख दिन दिन बढ़ता गया । कुछ स्वामिभक्तों के साथ इस दुरवस्था को धैर्यदायक संवादों, चर्चों से विताने लगे । इन्हें सुध आयी कि हमारे इन दुःखों को सुनकर मेरी माँ अवश्य मर जायगी, पर वहाँ बड़े नीतिज्ञ मन्त्री, भाई और मित्र हैं, जिनके धैर्यवचन से मेरी माँ जी जायगी ।

पश्चिमविजय यात्रा से लौटने के समय साहस कर कीर्त्ति सिंह सुलतान के पास अपनी हालत एवं कार्य का स्मरण दिलाने दोनों भाई पहुँच गये । सुलतान उनकी प्रार्थना से पसीझ गया और फरमान हुआ कि यही सेना तिरहुत के लिए चलेगी । उनका साहसरूपी कल्पवृक्ष फलने लगा ।

चतुर्थ पल्लव में- सुलतान के फरमान होते ही सैन्यों में हलचल मच गयी । रणवाद्य बजने लगे । हाथी घोड़े के मेले के साथ कादी, मख्दूम सभी तिरहुत की ओर चल पड़े । चौरंगी सेना का प्रयाण अभूतपूर्व था, गजसेना, अश्वसेना का वर्णन विस्तृत है । एक अति गुणवान् घोड़ा पर सुलतान सबार हुए, कीर्त्ति सिंह दोनों भाई भी एक एक घोड़ा प्राप्त कर साथ ही चलने लगे ।

पैदल सैनिक का वर्णन भी अनूठा है । उनकी क्रूरता, कर्कश जीवन, आहार व्यवहार भी स्वभावोक्ति की छटा में वर्णित है । यवन एव हिन्दू सैनिकों के युद्ध करने के ढंग से भेद दर्शनीय है ।

उस कटक (सैन्य) के साथ लटक (अनियमित सैन्य) भी बहुत से थे । इन सबों के प्रयाण से तीनों लोक दलमलित हो गये । जंगली पशु-पक्षी तक व्याकुल हो गये । इस प्रकार दूर देश तक आक्रान्त करते हुए वे तिरहुत पहुँच गये और सुलतान सिंहासन पर बैठ गये । वहाँ के अधिकारियों से दोनों पक्षों का हाल सुन कर सुलतान ने कहा कि असलान बहुत सशक्त है, उसे किस प्रकार वश में लाया जाय । इस पर राजा कीर्ति सिंह बोले-हे प्रभो ! यह क्या कुमन्त्रणा कर रहे हैं और हीन वचन बोलते हैं । शत्रुसेना की आप क्या परवाह करते हैं । आपके प्रताप से मैं ही अभी खदेड़ कर उसे पकड़ लाता हूँ । आज मैं अपने पिता के वध का बदला लेकर प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा ।

यह सुन कर सुलतान ने फरमान किया कि कीर्त्ति सिंह के लिए सेना गण्डक को पार करे । उस पार में राजा का नगर राएपुर है । वहाँ गण्डक के पार असलान सेना लेकर तैयार था । सुलतानी सेना से उसकी मुठभेड़ हुई । भयानक युद्ध का वर्णन एवं हताहत सैनिकों का बीभत्स वर्णन चलता है । राजा कीर्त्ति सिंह ने असलान को परास्त कर दिया और

उसने पीठ दिखा दिया । तब कीर्त्ति सिंह और वीर सिंह दोनों भाइयों ने कहा– अरे असलान ! जिस हाथ से तूने मेरे बाप को मारा था आज वह हाथ कहाँ गया ? धिक्कार है तुझे कि कायर होकर तूने पीठ दिखा दिया । अब मैं पीछा नहीं करूँगा, तुझे जीवन दान देता हूँ । विजय पाकर कीर्त्ति सिंह शंखध्वनि के साथ लौटे और सुलतान ने उनका राज्याभिषेक किया । इस प्रकार कीर्त्ति सिंह तिरहुत के राजा हुए ।।

कीर्त्तिलता की भाषा

कीर्त्तिलता की भाषा को स्वयं विद्यापति अवहट्ठ कहते हैं (1–13) और उससे बहुत अंश में समान को देशिल (अपने देश=तिरहुत की) भाषा । तदनुसार उनकी पदावली (गीतों) की भाषा देशी (प्राचीन मैथिली) का ही प्राचीनतर रूप अवहट्ठ भाषा है, जिसे ज्योतिरीश्वर ने वर्णरत्नाकर में छः भाषाओं के अन्तर्गत रखा है । ये छः भाषाएँ हैं– संस्कृत, प्राकृत, अवहट्ठ, पैचाशी शैरसेनी और मागधी । इसी प्रकार उन्होंने सात उपभाषाओं की गणना की है– शकारी, आभीरी, चाण्डाली, शाबरी, द्राविड़ी, औत्कली और विजातीया । तथापि वर्णरत्नाकर की भाषा के विषय में उनका मन्तव्य प्राप्त नहीं है, फिर भी अवहठ के ही अन्तर्गत उसे रखना उचित है, क्योंकि अन्य किसी भी वर्ग में वह आ नही सकती । अब इसकी भाषा को जब कीर्त्तिलता से तुलना करते हैं तो वर्णरत्नाकर ही देशी की ओर अधिक झुका दीख पड़ता है । अतः विद्वान् लोग इसे प्राचीन मैथिली कहना ही उचित समझते हैं, पर अवहट्ठ की अनेक विशेषताओं से युक्त रहने के कारण इसे अवहट्ठ या प्राचीनतर मैथिली कहना हमें संगत लगता है । ज्योतिरीश्वर की उपर्युक्त भाषा सूची में अवहट्ठ मागधी से भी भिन्न है । इसे मिथिलादेशीय अपभ्रंश कह सकते हैं, प्राकृतवैयाकरणों के द्वारा निर्दिष्ट अपभ्रंश नहीं, क्योंकि उसके लक्षणों से इस भाषा में बहुत भेद है, बहुत सी निजी विशेषताएँ हैं ।

विद्यापति ने यहाँ भाषा का चमत्कार दिखाया है । एक ही अवहट्ठ भाषा को अनेक रूप में प्रस्तुत किया है– संस्कृतनिष्ठ, प्राकृतनिष्ठ, फारसीनिष्ठ, हिन्दीनिष्ठ और मैथिलीनिष्ठ । ग्रन्थ के आदि और प्रत्येक

पल्लव के अन्तिम पद्य संस्कृत, दो पद्य (1-17, 18) प्राकृत और शेष अबहट्ठ हैं । दीर्घ समास वाले गद्यों में संस्कृत के लच्छेदार शब्द देखे जा सकते हैं । बहुतों पद्यों में प्राकृत के मूल शब्द निवेशित हैं- खलत्तण, विज्जावइ, छइल्ल, पाउअ, सक्कइ, जदो, एकत्तण, परिवण्णे इत्यादि । यहाँ फारसी शब्दों का भी बहुत प्रयोग हुआ है, वहीं, जहाँ तुर्कों का वर्णन आया है, अन्यत्र कहीं भी इसका प्रयोग नहीं हुआ है (इन शब्दों की सूची परिशिष्ट में द्रष्टव्य है ।) आधुनिक हिन्दी भाषा के निकट की शैली भी तुर्कों के प्रसंग में ही आयी है (2-39, 40) । बहुत अंश ऐसे हैं, जिन्हें अवहट्ठ न कह कर मैथिली कहें तो उचित होगा । ऐसे स्थलों पर हमने इसका निर्देश व्याख्या में दे दिया है । इसके अधिकांश गद्यभाग मैथिली के हैं । इन्हें देखते ही ज्ञात हो जाता है कि इनमें न तो संस्कृत का रचनातन्त्र, न प्राकृत और अवहट्ठ का ध्वनितन्त्र ही है । तत्सम शब्दों की भरमार है जो प्राकृत या अवहट्ठ के लिए एकदम अग्राह्य है । पर यह भी ज्ञातव्य है कि ये अंश भी अवहट्ठ से अछूते नहीं हैं । अतः लकीर खींचकर दोनों को अलग करना सम्भव नहीं है । इसीलिये इन्हें मैथिली निष्ठ अवहट्ठ कहा जा रहा है (2-15 से 18, 27, 28, 29, 35; 3-23 से 26; 4-21 से 31 इत्यादि) । ज्ञातव्य है कि कीर्त्तिलता में अनेक शब्द ऐसे हैं जो वर्तमान समय में केवल मैथिली भाषा में पाये जाते हैं, जिनके अर्थ अन्य भाषाभाषी नहीं जान सके हैं । अनेक वाग्धाराएँ हैं जो अभी भी मैथिली में पायी जाती हैं । इसीलिए हमने इस अवहट्ठ भाषा को प्राचीनतर मैथिली कहा है।

अवहट्ठ का साहित्य आठवीं ई० शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक पाया जाता है- सरहपाद, कुक्कुरीपाद आदि बौद्ध सिद्धों (8वीं शती) के दोहे, डाक (घाघ) के वचन (9वीं शती), ज्योतिरीश्वर का वर्णरत्नाकर (13वीं शती के अन्त), विद्यापति की कीर्त्तिगाथा,[1] कीर्त्तिपताका और कीर्त्तिलता (14वीं शती के अन्त), भीषम कवि का काव्य (कीर्त्तिपताका के आदि में कुछ अंश प्रकाशित), [2]रामदास झा की आनन्द विजय नाटिका

1. कीर्त्तिपताका- डॉ० शशिनाथ झा- 1994- नागप्रकाशक, दिल्ली। (इसमें भीषम कवि का काव्य तथा कीर्त्तिगाथा भी प्रकाशित है।)
2. मिथिला-परम्परागतनाटक संग्रह-डॉ० शशिनाथ झा- 1985 दरभंगा। (इसमें ये सभी नाटक हैं।)

के कतिपय छन्द (सत्रहवीं शती के आदि), उमापति उपाध्याय के पारिजातहरण नाटक के कुछ पद (17वीं शती के आदि), देवानन्द कृत उषाहरण नाटक के कुछ छन्द (17वीं शती) इत्यादि ।

अवहट्ठ के शब्दरूपों के विषय में जानकारी रहना अर्थ लगाने में बहुत आवश्यक है । इसमें एक ही शब्द अनेक रूप में पाया जाता है- तत्सम, प्राकृत, अवहट्ठ के अनेक रूप, मैथिली आदि । इस रूपभेद के उदाहरणः-

1. मञे, मञो, हञो=मैं ।
2. मोर, मझ, मज्झु, मुज्झ, मम=मेरा, मुझे । अम्हह=हमारा ।
3 राज, राअ, राए, राञे=राजा ।
4. दुज्ज, बे, दुइ, दुहु दूज=दो ।
5. सब, सवे, सव्व, सव्वे=सभी ।
6. हुअ, हुअउ, भउ, भा, भेल=हुआ ।
7. गउ, गमिअ, गमिअउ, जा, गेल=गया ।
8. कह, कहु, कहहिं, कहहु=कहो ।
9. लोक, लोग, लोअ, लोए=लोग ।

कारक चिह्नः-

कारकों के विभिक्तियों का बहुत स्थल पर लोप ही देखा जाता है, फिर भी बहुत जगह बँचे हुए हैं । उनके बदले कुछ कारक-चिह्न प्रयुक्त हुए हैं । इन विभक्तियों एवं कारकचिह्नों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

कर्त्ता- शून्य-'सज्जन चिन्तइ', 'बिसहर बमइ' । आ-राआ, मअंगा, काआ (बहुवचन) ।

कर्म- शून्य 'विसहर बिस वमइ' । ञे (ए) - 'अहिमानञे रक्खञो' (2-12) 'पाञे पन्नबिअ' (2-14) । हिं- 'फरमाणहिं वाचिअइ', 'सत्तुहिं' । काँ- 'कमन काँ', 'आनकाँ', न्हि (बहुवचन)- युवराजन्हि, अहितन्हि । कें - सव्वहुँ कें वारिजनयन।

करण- एँ- लक्खणेँ, दानेँ, वित्तेँ, तामसेँ, देलेँ । ञे- पाञे, राञे । एन- पुरिसत्तणेन, सुहेन, गमनेन, तेण । ए- सुजने, दाने, कण्णे, जेन्ने, उच्छाहे, पत्त्थावे । हि- 'कलसहि मण्डिआ' । एहिं- चारमेहिं, पक्खरेहिं (बहुवचन) । सञो- 'मानसञो' (पृ०-2-12) ।

सम्प्रदान- काँ- 'उत्तम काँ पारक' (2-3) । केँ- 'अभिमान केँ' (3-6) । के- 'उद्धार के' (2-4), 'जासु के' । लागि- 'तेसराँ लागि' (2-34) । कारण- देखन्त कारण, खुन्दकार कारण ।

अपादान- ते[1] -दुरहुन्ते' (2-52) । सञो- 'विन्ध्य सञो' । तह- 'पात्रहु तह' (2-27) । चाहि- कञोन चाहि' (2-5) = किससे यह स्थिति उत्पन्न हुई ? प्राचीन मैथिली में अपादान चिह्न 'चाहि' प्रयुक्त होता है ।

सम्बन्ध क- शक्तिक परीक्षा, रामदेवक रीति, अमरावतीक अवतार । करो- तन्हिकरो[2] वेश्यान्हि करो पयोधर, नगरन्हि करो परिठव । करि- 'आसपूर असवार करि'- 4-18 । करी- मध्याह्न करी वेला, धूम करी रेखा । के - उद्धार के 2-4, लच्छी के 2-20 । केर - 'पयोधर केर भारेँ' । केरा- लोअन केरा वल्लहा । करेओ- 1-29, 2-26 । कइ - थनवार कइ, सव्व कइ । को- कवन वंश को राअ- 1-21, राअ को पूत । काँ- राएपुरहि काँ- 4-45 । ह - राअह नन्दन- 2-13, लोअह । र-मोरहुँ । (आगे स्त्रीलिङ्ग शब्द रहने पर करि, करी । बहुवचन रहने पर केरा) ।

अधिकरण, शून्य- विपअ काल । ए - मूले- 3-35, करे- 3-20, अपमाने, घरे-घरे, अज्जणे- 1-18, रने- 1-20 । अँ - दिसँ, घरँ । आँ- मथाँ चढ़ाबए । माँझ- युववराजन्हि माँझ 1-27 । हिं- खेत्तहिं, मण्डलहिं- 1-24 ।

---

1. अपादान सूचक 'ते' है, हुन्ते या हुन्तह नहीं । दूरहुँ = दूर भी, सबतहुँ= सब ओर से भी । तदनुसार 'हुँ' का अर्थ 'अपि=भी', है ।

2. 'करो' मे 'ओ' का अर्थ 'अपि =भी' है । तनिकर = उनका, यह शब्द आज भी मैथिली में प्रयुक्त है । 'कनिका आदि सँ अर वैकल्पिक'- विभक्ति प्रकरण सूत्र-संख्या- 16- 'मिथिला-भाषा विद्योतन' (मैथिली व्याकरण) ।

उपर्युक्त कारक चिह्नों में कर्म-काँ, केँ, करण-एँ, सञो (सँ) सम्प्रदान-काँ, केँ, अपादान-सञो (सँ), सम्बन्ध-क, कर, केर और अधिकरण- हिं- मैथिली में प्रयुक्त हो रहे हैं ।

संज्ञाशब्द-

कीर्तिलता में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशज चारों प्रकार के शब्द प्रयुक्त हुए हैं । विदेशी शब्द के भी अवहट्ठीकृत रूप देखे जाते हैं। लिङ्ग वचन भेद का अवशेष प्राप्त है, पर सामान्यतया इसकी व्यवस्था समाप्त सी दीख पड़ती है । आ, न्ह, हु, न्त आदि बहुवचन सूचक हैं- 'मअङ्गा हजारो', पाआ, काआ, मञ्चा, बन्दा, गन्दा आदि, युवराजन्हि, अहितन्हि, जन्हिके, तान्हि, तुरुकाणञो, लोगहु।

स्त्रीलिङ्ग सूचक दो वर्ण हैं- इ और ई-

सआनी- 2-24, आड़ी डीठि- 2-42, गरुवि- 2-44, रूसलि विभूति आनलि- 1-29, करी वार्ता- 2-59 करी अधओगति- 2-35, औकी हाट- 2-32 (पुलिङ्ग में- 'अओका उपहास' - 2-45), अपनि मति- 2-12, बड़ि नाञो- 2-16, तेतुली वेला-2-7, बड़ि सफरी- 2-35, बड़िडओ चेतना-2-22, मध्याह्न करी वेला- 2-27, आगरि- 2-29, दोखें हीनि- 2-35, पुरलि मही- 2-49, बड़ि साति- 3-49, असबार करि आस- 4-18 ।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि अप्राणिवाचक शब्दों के भी स्त्रीलिङ्ग रूप एवं उनके विशेषण भी स्त्रीप्रत्यय युक्त इस अवहट्ठ भाषा में प्राप्त होते हैं । दीर्घ ईकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं- भिङ्गी, जाखरी, देहली, सत्ती, सेरणी, सुरुतानी आदि ।

उकारान्त संज्ञा शब्द कुछ तो स्वाभाविक हैं- सत्तु, पेआजु, वत्थु, विज्जु, गोरु आदि, पर कुछ अपि (भी) अर्थ में अभी हैं- अबतहु, सुरुतानहुँ । दीर्घ ऊकारान्त शब्द बहुत कम हैं- हिन्दू, पसू, पेआजू, बाजू । ए और ओ क्रमशः निश्चय एवं समुच्चय (संग्राहक) अर्थ को सूचित करते हैं, पर यहाँ कुछ स्थल पर स्वाभाविक हैं- पलए=प्रलय, राए (राय=राजा),

माए । कुछ कृत्प्रत्यय हैं- गए, जाए, कए । कुछ विभक्तिसूचक हैं- घरे, उच्छाहे । पसाओ=प्रसाद भी । गुलामो=नौकर भी । कुछ स्थल पर ओकार प्रथमा विभक्ति में है- जलदो, पुञ्जिओ ।

अवहट्ठ भाषा अनुनासिक-बहुल है और यह प्रभाव मैथिली भाषा में परिलक्षित है । अन्तिम सानुनासिक वर्ण को 'ञ' कर देना यहाँ सहज बात है । अनुस्वार को परसवर्ण करके वर्गपञ्चम करना भी इस भाषा में नियत देखा जाता है- करञो (करओँ), गहञो (गहओँ) पुञ्जिओ (पुंजिओ) । खलेँ, घरँ, रिउँ, मथाँ आदि अनुनासिक के अस्तित्व के निदर्शन हैं ।

तत्सम- माता, पितृवैर, सम, मन्त्री ।

तद्भव- माए, माहि, वप्पवेर, मज्झु, मन्ति ।

देशज- चप्परि, चुक्कञो, झंख, तलप्प, भूलल, ओल (ओर, किनारा), औकी (दूसरी), गण्डञे, जाखरी, गोट्टओ, गोवोलि, गोहन, चांगुरे, चोट्टे, ठाहर, जरहरि, टोप्परि, ठाणा, ढलवाइक, तातल, तेतुली, तोरि, थेघ, दबलि, धाँगड़, धाड़े, पए, पइ, पञेड़ा (रास्ता), पाखर, फरिआइक, बीछि, बिभालि, चेत्त्थले, कोत्त्थले, लटक, पटक, लोनुमी, सन्नगहि, सरमेरा (द्वन्द्व युद्ध), साने (संज्ञा), साति, हेड़ा ।

विदेशज- अदप (अदब), अरदगर, उमारा, उज्जीर, कादी, कुरुबक, खोदाबरद, खोदालम्ब, खोरमगह, गोमठ, तकत, तत्त्थ, तवेल्ला, नीमाज, पएदा, पाइग्गह, पापोस, बल्लीअ, बाजार, बारिग्गह, मखडूम, मगानी, मुलुक्का, सइअदगार, सरइच्चा, सरमाणा, सुरुताण, सेरणी, हसम इत्यादि शब्द फारसी भाषा से गृहीत हैं । इनमें अवहट्ठ के अनुकूल कुछ परिष्कार करके प्रयुक्त किया गया है ।

सर्वनाम-

1. मोञे, हञो, मो, मोरहुँ, महु, मझु, मज्झु, मज्झ, मञे, अम्ह, अम्हह ।
2. तोञे, तोहि, तोके, तोहें, तुम्ह, तुम्हें, तुज्झु, तुज्झ ।
3. ओ, ओहु, ओकरा, ता, ताहि, तं, तन्हिकरी, तौन, तान्हि, तेन्हे, तेन्ने, तेण, से, सो, तसु, तासु ।
4. ई, एहि, एही, एहु, एत्ता, इथिहि, अइस, अइसो, एत्तिअ ।

5. जे, जो, जं, जसु, जासु, जस्स, जञोन (जौन), जेन्ने, जाहि, जन्हि ।

6. कमन, कञोन, कमने, किमि, की, को, काइँ, केन, कइ, कोइ, कोए, काह, काहु, केउ, केबि, किछु, किच्छु, कस, कतेहु, कतहु, कत्त, कइसे ।

7. अप्प, अप्पु, अपने, अपनेञो, अपनि, अपनेहुँ, आपे, आपुकरो ।

8. सब, सव्व, सबे, सव्वे, सव्वउँ, सव्वको ।

9. आन, इअर, इअरो ।

क्रिया-

वर्त्तमान काल- (1) **उत्तम पुरुष-** ञो या ओं- देक्खओं, सुनओं करञो, दलञो, भणञो, परबोधञो ।

2. **मध्यम पुरुष-** सि, हि- भग्गसि, जासि, जीबसि, कहसि, करहि, जाहि ।

3. **अन्य पुरुष-** अ, अइ, अए, अथि, अहिं (बहुवचन)- कर, करए, जाए, चलए, कहए, होए, होइ, चिन्तइ, करइ, बोलइ, वमइ, जाइ, छुट्टइ, जग्गइ, मार, निकार, भम, वस, चाट, सह, णत्थि, जाथि, आबथि, पाबथि, पइसथि,। आनहिं, आबहि, हेरहिं, बइठहिं । न्ति (बहुवचन)- तउल्लन्ति, बेसाहन्ति। कमवाच्य में- करिअइ, धरिअइ, पाबिअइ, जम्पिअइ, भुञ्जिअइ, हरिज्जिअ, करिव्वउ ।

भूतकाल- उत्तम पुरुष- गउँ, गोचरिअउँ, आएउँ ।

मध्यम पुरुष- करिअउ, दिअउ, पेक्खिअउ ।

अन्य पुरुष-इअ- पसारिअ, लिहिअ, परिभविअ, लज्जाइअ, गहिअ, दलिअ, करिअ । ज्जिअ- लिज्जिअ, गहिज्जिअ, करिज्जिअ, सहिज्जिअ, किज्जिअ, दिज्जिअ, लिज्जिअ । अउ - वधिअउ, उद्धरिअउ, हुअउ, हुअ, भउ, गउ । एओ- पूरेओ, चूरेओ । उ- चलु, जागु, लागु, पसरु, धरु, उपजु, पडु । ईआ- पारीआ, चारीआ । ल -भेल, छल, मारल, हारल, कहल, चलल, बैसल, उबहल, देल, कएल । आ-बिका ।

भविष्य काल- सइ-होसइ । इह-बुज्झिह, करिह, जिव्विह । हइ, ज्जिह- धरिहइ, धरिज्जिह, सिज्झिहइ, दूसिहइ । त- लागत (2-35) ञो-दलञो (वर्त्तमान के समीप भविष्य में वर्त्तमान का प्रयोग) ।

आज्ञार्थक क्रिया–

उत्तम पुरुष– सुनञो, कहञो ।

मध्यम पुरुष– सुन, कह, जाहि, करहु, धरहु कहहु, सम्पलहु, राखहिं, अप्पहिं, कहहिं, सज्जह, भुञ्जह ।

अन्य पुरुष– साहउ, जिअउ, करउ, रहउ, जाउ, सुनओ, करओ । वण्णिअउ (कर्मवाच्य) ।

विधि अर्थ में– होए, देइ, पसरेइ ।

सहायक क्रिया– अछ, अछए, अच्छए, हो, हुअ, हुअउ, भा, भउ, रह ।

संयुक्त क्रिया– पारइ, खाइ ले, चढ़ावए चाह, किनइते पाबथि, बन्धि न देइ, बोलए लागु, भए गेल, जीव रह ।

ज्ञातव्य है कि उपुर्यक्त क्रियापदों में वर्त्तमान काल में 'ओँ, अइ, अए, अछि', भूत काल के 'ल', भविष्य काल के त', आज्ञार्थक ह, हिं, ओ तथा विध्यर्थक– अए प्रत्यय तथा अछ (अछि) एवं 'हो' क्रिया मैथिली भाषा में प्रयुक्त हो रहीं हैं । क्रिया में लिङ्गभेद नहीं है ।

कृदन्त क्रिया– (1) **वर्त्तमान**– करन्ता, भणन्ता, पिबन्ता, पिबन्तो, कहन्ता (विशेषण के रूप में) । गाहन्ते, खेलन्ते, भमन्ते, मारन्ते (क्रिया के रूप में), किनइते, जाइते, बहइतेँ ।

(2) **भूतकाल**– समप्पिअ, चुक्किअ, सेविअ, बसले, भेले, मिलल, पुरलि, चापल, रूसलि विभूति ।

(3) **पूर्वकालिक क्रिया**– बइसि (बैठकर), बिसवासि, गोइ, छाड़ि, भाँगि, कीनि, अछोलि, ठेल्लि, लइ, सम्मद्दि । गए (जाकर), लए, कए, धाए कहु (दौड़कर), कोहाए, पलटि कहुँ, सुनिअउँ (सुन कर भी), धकेँ ।

(4) **क्रियार्था क्रिया**– हिण्डए, बिकाए (बिकने के लिए) छुअए, पिउबाँ, जुझबाँ, कहबा[1] ।

(5) **भावार्थक**– होञे (होनी), उबार, झंखणे, विथारे, जीव, खोहना, सोहना, जोअना, हेरब, चलए, गणए, चढ़ाबए, पआनओ, साति, पण्णति ।

---

1. "भावार्थक 'अब' सँ आ वैकल्पिक"– मिथिलाभाषा विद्योतन– विभक्तिप्रकरण सूत्र संख्या–32 के अनुसार मैथिली में 'कहबाक'।

(6) **कर्त्ता अर्थ में**- बुज्झनिहार, विचारक, पढ़न्ता, कहन्ता, चलन्ता, कोहाणा ।

प्रेरणार्थक क्रिया- सिक्खबइ, बइठाब, पलटाए, कराबए, गमाबथि, पारिअइ, जनाबञो, परबोधञो ।

तद्धित प्रत्ययान्त शब्द

खलत्तणेँ, पुरिसत्तणेन, एकत्तण, वड्डिपन, वेरिपण, देसिल, बियाही, सरमी, सरमेरा, सुरुतानी, कटकाञी, तेजमन्त[1], कबहुँ, तब्बहुँ, अइस, कइस, एत्तिअ, एत्ता, कतहु, कत्त, तइसन, जइसन, पठम, दोसरी, तेसराँ, तीनू, तीनिहुँ, चारिहु, पञ्चम ।

अव्यय शब्द

काञि, जञो, तञो, तेँ, जइ, जहाँ, तहाँ, जेहे, सेहे, जदो, तदो, अरु, अवरु, नाम, फुड़, णिच्चइ, अबसओ, णहु, धुअ, पुनु, किमि, जं, तं, पइ, जबे, तबे, न ञुण, नहि, तेँ, अबि अ, किछु, किच्छु, जहीँ, तहीँ, चप्परि, उप्परि, जबही, तबही, जञो, तञो, कतहु, उत्थि, एम, तो, अज्ज, ञेहाँ, दहु, तइसना, केबि, तहँ, चोट्टे, जाव, किम्बि, अब्ब, इत्ति, मित्ति, जहिं, तहिं, विनु, जनि, सञो, अहो, अहह ।

नाम धातु–

बन्दीकरिअ, पछुआब, धसमसइ, लड़खड़िआ, कलक्केइ, झंकरिअ ।

न और ण–

कीर्त्तिलता एवं कीर्त्तिपताका में न और ण का वैकल्पिक प्रयोग देखा जाता है। इस प्रकार अनुनासिक बाहुल्य भी अनेक स्थलों पर वैकल्पिक प्राप्त होता है। इसलिए प्रस्तुत संस्करण में जहाँ एक भी स्रोत से इनका 'न' रहना ज्ञात हुआ वहाँ 'ण' और अनुनासिक का त्याग कर दिया गया है । इसी प्रकार मूर्धन्य 'ष' का प्रयोग 'ख' के लिए प्रचुरतया सभी स्रोतों में देखा गया, पर इसके औचित्य में किसी युक्ति को न देख कर लेखक–प्रमाद मान कर सब जगह हमने 'ख' कर दिया है ।

---

1. "गुण आदि सँ मन्त"- सूत्र संख्या- 84 तद्धित, 'मिथिला–भाषा विद्योतन'- पं० दीनबन्धु झा ।

वर्णरत्नाकर का प्रभाव

विद्यापत्ति की कीर्तिलता पर वर्णरत्नाकर का पूर्ण प्रभाव[1] है । यहाँ के वेश्या वर्णन और अश्वसैन्य-वर्णन की शब्दावली भी वर्णरत्नाकर से बहुत मिलती-जुलती है। इसी तरह प्राकृतपैङ्गलम्[2] के कतिपय पद्यों का प्रभाव कीर्त्तिलता पर पड़ा है। स्वयं विद्यापति ने अपने तीनों अबहट्ठ-चरितकाव्यों में एक दूसरे से आदान-प्रदान किया है। कीर्तिपताका के अनेक स्थल कीर्त्तिलता की शब्दावली से समान दीख पड़ते हैं। इस तरह यह भी सिद्ध हो जाता है कि दोनों के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं, क्योंकि दोनों की भाषा एवं शैली समान है। समान स्थलों का दिग्दर्शन प्रस्तुत है–

कीर्तिलता कीर्तिगाथा / कीर्तिपताका में समान पंक्तियाँ–

कीर्त्तिपताका (पृ०)	**कीर्त्तिलता**
नवजयदेव कवि-5	विद्यापति कवि- 1-5
सूरत्तनेँ-5	खलत्तणेँ-1-7, एकत्तण-1-22
दाने दलिअ दारिद्द-8	दाने दलिअ दारिद्द-1-22
करि तुरअ पत्ति पअभार भरेँ	पअभारेँ कोल अहि मोल गर,
कुरूमकोर[3] कसमसि सहिअ-8	कुरुम उलटि करवट्ट दे-4-22
हरिच्चन्द नल राम राहव-9	हरिश्चन्द्रक कथा-3-31
थोल थनहर- 17	संवल देल थोल- 2-16
विविह परि-20, 56	विविह परि- 4-18
काहु धरए- 20	काहु देल- 2-17

---

1. 'पअभरे पानि सोखि कादव भए गउ'-वर्णरत्नाकर पृ०-48 । द्र०-कीर्त्तिलता 3-20 । घसफाल-वर्णरत्नाकर पृ० 47, कीर्त्ति०-3-18.
2. कुञ्जरा चलन्त आ, पव्वआ पलन्त आ ।
   कुम्म पिट्ठि कम्पए, सूर धूलि झम्पए ।।
   प्रा० पै०- 2-59 । कीर्त्तिलता 3-17 ।
3. कोल=वराह ।

तेतुली वेला- 40	तेतुली वेला- 2-17
गमन करथि गोहन जानि-33	गोहन नहि पाबथि- 4-35
पाअ भरहि पसान चूरिअ-8	पअभरे पत्थर चूरीआ- 2-52
कटकाञी जसराज- 49	कटकाञी जाही- 4-33
कुन्द कुसुम संकास जस- 56	कुन्द कुसुम संकास अस- 1-24
आगाँ चल जसराज- 49	दाने गरुअ गएणेस- 1-26
संगाम कज्ज अरिराए जीन- 47	संगाम कज्ज जनि परशुराम-3-26
वप्पकुल वेरि उद्धरिअ[1]- 70	वप्पवेर उद्धरिअ धुअ- 1-20

ए ऐ ओ औ- विचार–

संस्कृत में ए ऐ ओ औ दीर्घ वर्ण हैं, इनके ह्रस्व रूप नहीं होते । प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं में इन्हें सामान्यतया दीर्घ मानने पर भी कहीं कहीं ह्रस्व माना जाता है[2]। लेकिन् इनके ह्रस्वबोधक लिपि देवनागरी या मैथिली में नहीं हैं। अत: इनके ह्रस्व रूप को प्रदर्शित करना सम्भव नहीं है, केवल उच्चारण में पार्थक्य है। कीर्त्तिलता में कहीं भाषास्वभाववश तो कहीं छन्द के अनुरोध से ए और ओ वर्णों का (इनकी मात्रा का) ह्रस्व उच्चारण होता है। इसे दिखाने के लिए यहाँ हमने उन उन अक्षरों के **नीचे रेखा** दे दी है। इनके ह्रस्व रूप का उदाहरण–

जञो, कए, जइसओ, कोइ, राए, जेन्ने।

यह भी ज्ञातव्य है कि अवहट्ठ एवं मैथिली में संस्कृत की तरह ऐ का उच्चारण 'अइ' (अय् नहीं) एवं औ का उच्चारण अउ (अव् नहीं) होता है । तदनुसार 'हए', 'कए', 'भए' इत्यादि ही लिखा जाता है–'है', 'कै', 'भै' नहीं।

अवहट्ठ भाषा के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हेतु द्रष्टव्य-

---

1. कीर्तिपताका- डॉ० शशिनाथ झा- 1992 ई., दिल्ली
2. "ए ऐ ओ औ समेत एक दू तीनि मात्राक ह्रस्व दीर्घ प्लुत"– वर्ण प्रकरण, सूत्र संख्या-3 'मिथिलाभाषा विद्योतन'।

राजेश्वर झा- "अवहट्ट : उद्भव ओ विकास"- मैथिली साहित्य संस्थान, संग्रहालय भवन, पटना से 1975 में प्रकाशित ग्रन्थ ।

छन्द–

कीर्त्तिलता में प्रयुक्त छन्दों की सूची हमने परिशिष्ट में दे दी है। इसके मूल हस्तलेखों में कुछ ही स्थानों पर छन्द का उल्लेख है, जिन्हें निम्नांकित स्थलों पर देखा जा सकता है– 1-6 से 9-दोहा, 1-24 एवं 26- छप्पद, 2-15- बाली, 2-21-छन्दः, 2-38- छन्दः, 2-52- त्रिभङ्गी छन्दः, 3-17-निशिपाल, 3-34-छन्दः, 4-7-मधुभार छन्द, 4-13- छन्दः, 4-21- छन्दः, 4-33- छन्दः, 4-55-छन्दः, 4-62- छन्दः । शेष छन्दों का निर्देश सम्पादक के द्वारा हुआ है । यहाँ उनमें कतिपय अप्रचलित छन्दों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है ।

(1) **रड्डा**- यह अपभ्रंश का प्रधान छन्द है । प्राकृतपैंगल आदि ग्रन्थों में इसका लक्षण है । इसमें पाँच चरण का छन्द 'मत्ता' और उसके बाद दोहा रहता है । मत्ता के प्रथम चरण गीत के ध्रुपद जैसा 15 मात्रा का होता है, जिसके बाद चार चरणों में क्रमशः - 11, 15, 10, 15 मात्राएँ होती है । यह रड्डा का चारुसेनी नामक भेद है । यहाँ इसीका प्रयोग हुआ है । मात्रा की अधिकता से इसके अन्य भेद भी होते हैं । डॉ० अग्रवालजी ने ह्रस्व 'ए, ओ' को गुरु मान कर यहाँ अन्य भदों को भी गिनाया है, पर वह वर्ण गुरु है ही नहीं ।

(2) **निशिपाल**- एक गुरु (या दो लघु) के बाद तीन लघु=पाँच मात्रा को तीन आवृत्त कर अन्त में रगण गुरु लघु गुरु दे देने पर यह छन्द बनता है ।

(3) **मनबहला**- तीन भगण+गुरु लघु । यहाँ इसका दो ही चरण प्राप्त है-'सावर एकहोँक' । यद्यपि (2, 15) बाली के स्थान पर इसका पाठान्तर मिलता है, पर दोनों दो छन्द हैं ।

(4) **वाली**- चौदह मात्रा प्रति चरण (3+4+3+4) ।

(5) **पुमानरी**- मरहट्ठा छन्द के अन्तिम वर्ण को गुरु कर देने ने पुमानरी

छन्द बन जाता है । इसके प्रत्येक चरण में 10+8+12+=30 मात्राएँ होती हैं ।

'प्राकृत पैंगल' के अनुसार भुजंगप्रयात आदि छन्दों को सोलह चरणों में पूर्ण समझा जाता है, जो स्पष्ट ही इनकी गेय पदावली होने का संकेत है । कीर्त्तिलता में इसका पालन हुआ है । यह भी ज्ञातव्य है कि यहाँ कुछ चतुष्पद छन्द के दो[1] चरणों का ही प्रयोग हुआ है और कहीं पर छः चरणों का, जो अपभ्रंश काव्यों में प्रचलित था ।

इन छन्दों के विशेष परिचय के लिये दामोदर मिश्र (कीर्त्तिसिंह के आश्रित कवि) के वाणीभूषण (संस्कृत, छन्द:शास्त्र) एवं पं० श्री गोविन्द झा कृत "मैथिली छन्दशास्त्र"[2] द्रष्टव्य है ।

ऐतिहासिक सन्दर्भ

कीर्त्तिलता में तिरहुत (मिथिला, उत्तरी विहार) के राजा कीर्त्ति सिंह की वीरगाथा वर्णित है । इनके वंश के वर्णन क्रम में इनके प्रपितामह कामेश्वर ठाकुर से कीर्त्ति सिंह तक के राजाओं का वैदुष्य, दानशीलता एवं शौर्य को दर्शाया गया है । अतएव उक्त अवधि में इस क्षेत्र का ऐतिहासिक दिग्दर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है । राजा कमेश्वर मिथिला के राजा हरिसिंह देव (1296-1326 ई०) के गुरु एवं सिद्ध पुरुष थे । 1326 ई० में दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक शाह (1325-1251 ई०) ने इस राजा पर आक्रमण कर दिया । राजा जब परास्त होने लगे तो वे अपने गुरु कामेश्वर ठाकुर को राज्य समर्पित कर नेपाल चले गये और वहीँ से शासन सूत्र सम्हालते रहे । बादशाह इस महान् विद्वान से मिलकर सन्तुष्ट हुआ और उन्हें शासन सम्हालने को कहा । 1340 ई० में तुगलक शाह ने विधिवत् इन्हें तिरहुत राज्य दे दिया और हरिसिंह देव का अप्रत्यक्ष शासन समाप्त कर दिया । 1342 ई० में कामेश्वर ठाकुर स्वर्गीय हो गये और राज्य के लिए उनके पुत्रों में कलह मच गया । अन्ततः राज्य का बटवारा हो गया– दक्षिणी तिरहुत उनके ज्येष्ठ पुत्र भोगीश्वर राए को मिला, जिनकी राजधानी समस्तीपुर

1. पउम चरिउ- (स्वयभूकृत) में ऐसा देखा जाता है ।
2. दरभङ्गा से प्रकाशित ।

के आस-पास रायपुर थी जो गण्डक नदी से पूरब दायें तट पर है और उत्तरी तिरहुत छोटे पुत्र भवेश्वर (भव) सिंह को मिला। ओइनी (समस्तीपुर) ग्राम वासी होने के कारण ही इस वंश का नाम '**ओइनिवार**' पड़ा।

1341 ई० में बंगाल का सुलतान हाजी इल्यास ने तिरहुत पर आक्रमण किया और अपने नाम से 'हाजीपुर' नगर बसाया। फिर 1353 ई० में उसने शम्शुद्दीन नाम से अपने को प्रख्यात किया और फिर तिरहुत पर आक्रमण कर ओइनी गाँव से कुछ दूर अपनी एक उपराजधानी बनायी जिसका नाम शम्शुद्दीनपुर रखा जिसे अब समस्तीपुर कहते हैं। उन दिनों तिरहुत दिल्ली के तुलगक शाह के पुत्र फीरोज शाह तुगलक (1351-1383 ई०) के अधीन था । राजा भोगीश्वर ने इस आक्रमण की सूचना उन्हें दी । दिल्ली से सुल्तानी सेना तिरहुत होती हुई बंगाल तक गयी और अपना प्रभुत्व जमाया। इस यात्रा में शाह ने भोगीश्वर को प्रिय मित्र कह कर तिरहुत का शासक घोषित किया, इसका विद्यापति ने कीर्तिलता में उल्लेख किया है(1-24)।

फिर 1359 ई० में फीरोज शाह ने शम्शुद्दीन के पुत्र सिकन्दर शाह पर आक्रमण किया। इस शुद्ध में फीरोज विजयी होकर तिरहुत होते हुए लौटा। युद्ध में उसका चचेरा भाई मुहम्मद जूना खाँ मारा गया था, जिसकी स्मृति में इन्होंने 1361 ई० में जौनपुर नगर की स्थापना[1] की।

इधर तिरहुत में फीरोज शाह से मान्यताप्राप्त राजा भोगीश्वर एवं उनके पुत्र राए गणेश्वर का प्रभुत्व जम गया और सब ओर से वहाँ खुशहाली थी। पर 1360 ई० में भोगीश्वर के स्वर्गवासी होते ही चारों ओर से आक्रमण शुरू हो गया। राजा भवसिंह जो उत्तर तिरहुत के शासक थे, उनके पुत्रों ने उन्हें सम्पूर्ण तिरहुत का राजा घोषित किया, क्योंकि ओइनी कुल में सर्वश्रेष्ठ वही थे। पारिवारिक कहल शुरू हो गया। उधर दक्षिण बिहार का शासक असलान तुर्क ने सम्पूर्ण बिहार पर कब्जा करने के उद्देश्य से तिरहुत के राजा गणेश्वर से मैत्री की और छल करके 1361 ई० में उनकी हत्या कर राज्य हड़प लिया (कीर्त्तिलता- 2-2)। कीर्त्तिलता में

---

1. मध्ययुग का इतिहास- डॉ० ईश्वरी प्रसाद- 1968 ई०।

उल्लिखित "पक्ख पञ्च वे"=252 लक्ष्मण संवत् उपर्युक्त ईस्वी ही होता है। विद्यापति ने अपने एक गीत में (द्र०-कीर्त्तिपताका परिशिष्ट) ल०सं० और शाके का एक साथ उल्लेख किया है जिससे ल०सं० का आरम्भ 1109 ई० में सिद्ध होता है। वर्त्तमान पंचांग के अनुसार भी इसका समर्थन होता है।

राज्य में अराजकता फैल गयी, प्रजा में क्रान्ति आ गयी। उन दिनों गणेश्वर राए के पुत्र छोटे थे, जिन्हें मन्त्रियों और माताओं ने छिपा कर रखा। तिरहुत में कहीं असलान का, तो कहीं भवसिंह के पुत्र देवसिंह का, तो कहीं देवसिंह के भतीजे अर्जुन राए का आधिपत्य था और लोग समझते थे कि गणेश्वर के पुत्रों को भी असलान ने मार दिया है। इस पर सभी प्रजा उसे शत्रु समझने लगे। उधर दिल्ली सल्तनत कमजोर पड़ गया था[1]। वहाँ से कोई सहायता मिलना सम्भव न था । निरुपाय होकर गणेश्वर के मन्त्री एवं ज्येष्ठ पुत्र राज सिंह ने शान्त रहना ही उचित समझा। पर कनिष्ठ पुत्र कीत्ति सिंह आगे चल कर विद्वान, वीर, साहसी एवं स्वाभिमानी निकले। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि पिता के वध का बदला लूँगा। अग्रजों ने समर्थन किया और राजतिलक लगाकर छोटे भाई को ही राजा होने का निर्णय लिया, जिसे विद्यापति ने संकेत रूप में कहा है कि वीर सिंह और कीर्त्ति सिंह दोनों सहोदर भाई की तुलना बलराम और कृष्ण से दी जा सकती है, राम-लक्ष्मण से नहीं (5-13)। समय बीतता गया । गणेश्वर के पुत्र अवसर के ताक में थे । 1394 ई० में शर्कीवंशीय सेनापति ख्वाजा जहाँ ने जौनपुर में अपना राज्य स्थापित कर लिया। दिल्ली के तुगलक शाह (1934 ई०) ने उसे बिहार[2] की सूबेदारी दे दी। ख्वाजा जहाँ के पुत्र मुबारक शाह (1399-1402 ई०) ने राज्य की समृद्धि की और उसका पुत्र इब्राहिम शाह (1402-1436 ई०) बहुत पराक्रमी, गुणज्ञ और स्वाभिमानी हुआ। इसकी गुणज्ञता को सुनकर राजा कीर्त्तिसिंह को उत्साह हुआ और प्रजाओं के समक्ष प्रकट हुए । ज्येष्ठ भ्राता राज सिंह घर सम्हालते रहे और वीर सिंह तथा कीर्त्ति सिंह जनसमर्थन लेने हेतु पैदल ही जौनपुर के लिए चल पड़े। आगे की घटना और कीर्त्ति सिंह का राजा होना कीर्त्तिलता में वर्णित ही है।

---

1. भारतवर्ष का इतिहास- डॉ० ईश्वरी प्रसाद।
2. भारतवर्ष का इतिहास- डॉ० ईश्वरी प्रसाद ।

ज्ञातव्य है कि अपने पितामह ख्वाजा जहाँ के समय से ही इब्राहिम शाह शासन–सूत्र में हाथ बँटाता था और स्वयं प्रतिभा–शूरता से प्रधान स्थान उसे प्राप्त था ही । अत: उसके गद्दीनशीन होने से पहले भी यह घटना घटित हो सकती है । तदनुसार 1394 से 1402 ई० के बीच ही कीर्ति सिंह जौनपुर गये होंगे ।

मिथिला के इतिहास ग्रन्थों में कीर्त्ति सिंह के राज्य के बारे में सूचना नहीं के बराबर है । उन दिनों ओइनीवंश की तीन शाखाएँ प्रभुत्व में थीं– कीर्त्ति सिंह, अर्जुन सिंह और शिव सिंह । ये तीनों चचेरे भाई थे और तीनों राजा थे । विद्यापति ने इन तीनों की कीर्त्ति को अबहट्ठ भाषा में निबद्ध की है । ये ग्रन्थ हैं क्रमश: कीर्त्तिलता, कीर्त्तिगाथा और कीर्त्तिपताका । इन ग्रन्थों में बहुत ऐतिहासिक नाम आये हैं, पर एक ग्रन्थ में जो नाम है, वह दूसरे में नहीं । तीनों राजाओं को तिरहुत का राजा कहा गया है । इन तीनों में परस्पर वैरभाव रहने पर भी कवि विद्यापति अपने व्यक्तित्व से तटस्थ रहे और सभी दरबार उनके लिए खुले थे ।

कीर्त्ति सिंह तिरहुत के राजा हुए । इसका उल्लेख न केवल कीर्त्तिलता में है, अपितु दो अन्य ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है–

(1) म०म० दामोदर मिश्र विरचित छन्द:शास्त्र का एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है–**'वाणीभूषण'** जो संस्कृत भाषा में रहने पर भी दोहा आदि अपभ्रंश प्रसिद्ध छन्दों का भी निरूपण करता है । इसके कुछ उदाहरणों में राजा कीर्ति सिंह का वर्णन है–

> विधिरेव विधुरयति, मर्म निकृन्तति, जनयति शर्म न नर्मसद:
> चन्दनवन–पवनो, विकलयति मनो, दलयति मदनो हृदयमद: ।
> प्रियसखि ! मम नयनं, पङ्कजनयनं, कीर्त्तिसिंह–धरणीरमणं
> यदि मिलति विशालं, भवति तदालं, विरहपयोनिधि–सन्तरणम् ।।
>
> –पद्मावती छन्द: 80

> तरणी भवति विमज्जतो, दुरितपयोनिधिवारि ।
> दिशि दिशि विलसति तव यशो, नवहिमरुचि–रुचिधारि ।।

नवहिमरुचि-रुचिधारि, महोऽपि न यस्य समानम्,
[1]परवारणबलसिंह ! विदुषि वितरसि बहु दानम् ।
परवारणबलसिंह ! जयसि भुवि जगदेक-रणी,
कीर्त्तिसिंह नृप ! जीव, यावदमृतद्युति-तरणी ।।

—कुण्डलिका-82

त्वयि चलति, चलति वसुधा, वसुधाधिप !
कीर्त्तिसिंह ! धरणीरमणे !

—लीलावती- 114

(2) कामेश्वर सिंह दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय के हस्तलिखित ग्रन्थागार में ग्रन्थ सं- 1774 (2118)- मन्त्ररत्नावली नाम का तन्त्र ग्रन्थ है, जिसके प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में "महाराज कीर्त्ति सिंह विरचितायां मन्त्ररत्नावल्याम्" लिखा गया है । ग्रन्थ का आदि और अन्त भाग फटा हुआ है । ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है । देवनागरी लिपि में लिखित इस ग्रन्थ में 145 पत्र, प्रतिपत्र 29 पंक्ति, प्रतिपंक्ति 50 अक्षर हैं ।

कीर्त्तिलता में जौनपुर से तिरहुत की ओर सेना के प्रस्थान के वर्णन के समय में संकेत रूप से कहा गया है कि इसी समय अचानक कोई ऐसी घटना घटी कि सेना पूरब की ओर से मुड़कर पश्चिम की ओर चल पड़ी और बहुत दूर जाने पर मुठभेड़ हुई, जिसमें सुलतान विजयी हुआ' । इतिहास ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि इकबाल खाँ ने दिल्ली से चलकर आक्रमण किया था, जिससे गङ्गातट पर कन्नौज के पास इब्राहिम शाह का युद्ध हुआ था ।

कीर्त्तिसिंह के बाद उनके उत्तराधिकारी उनके चचेरे भाई शिवसिंह हुए। इससे ज्ञात होता है कि उन्हें कोई सन्तान न थी और कुछ ही वर्षों में उनका राज्य समाप्त हो गया। पर कैसे? यह रहस्य बना हुआ है।

---

1. वारण=निवारण एवं हाथी ।

कविवर विद्यापति

कीर्त्तिलता के रचयिता कविवर विद्यापति (1350-1440 ई०) बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे, संस्कृत-प्राकृत-अवहट्ठ-मैथिली इन चार भाषाओं के परिनिष्ठित कवि थे । इन्होंने फारसी का भी अध्ययन किया था जो कीर्त्तिलता के अध्ययन से ज्ञात होता है । पुरुषपरीक्षा में इनका सुललित संस्कृत गद्य-पद्य देखने को मिलता है तो कीर्त्तिलता और कीर्त्तिपताका में आकर्षक अबहट्ठ गद्य-पद्य का दर्शन होता है । धर्मशास्त्र के अनेकों मान्य निबन्धों का इन्होंने प्रणयन किया, जिन्हें प्रमाण रूप में म०म० केशव मिश्र (1500 ई०) ने द्वैतपरिशिष्ट में, म०म० गणपति (1500 ई०) ने गङ्गाभक्तितरङ्गिणी में, म०म० रुद्रधर (1800 ई०) ने वर्षकृत्य में और म०म० कमलाकर भट्ट ने (1750 ई०) निर्णयसिन्धु में उद्धृत किया ।

ये "विशैवार विस्फी" मूलक मैथिल कुल में उत्पन्न हुए थे और दरभंगा जिला के विस्फी गाँव के निवासी थे । इनके वंश में अनेक महान् विद्वान् ग्रन्थकार और मन्त्री हुए। इनके प्रपितामह धीरेश्वर एवं उनके अनेक भ्राता वीरेश्वर आदि हरिसिंह देव के मन्त्री थे । धीरेश्वर के पुत्र जयदत्त ठाकुर हुए। जयदत्त के पुत्र म०म० गणपति ठाकुर के एकमात्र पुत्र थे विद्यापति। इनकी माता का नाम अम्मा माइ प्रसिद्ध गाङ्गो देवी था।

ये तिरहुत के अनेक राजाओं के राजपण्डित रहे-कीर्त्तिसिंह, अर्जुन राए, शिव सिंह, भैरव सिंह आदि। विद्यापति के तीन पुत्र हुए म०म० हरपति, नरपति और वाचस्पति। इनकी वंशपरम्परा अविच्छिन्न रूप से वर्त्तमान में सौराठ आदि गाँवों में है । इनके विशेष परिचय के लिए प्रो० रामानाथ झा कृत-विद्यापति[1], पं० गोविन्द झा कृत विद्यापतिक आत्मकथा[2], डॉ० जयमन्त मिश्र कृत संस्कृत भाषा में 'विद्यापति'[3] आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

इसकी रचनाओं का परिचय मेरे सम्पादित कीर्त्तिपताका की भूमिका में देखा जा सकता है जो 1994 ई० में नागप्रकाशक, जबाहर नगर, दिल्ली-7 द्वारा प्रकाशित है।

---

1. साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली से मैथिली, हिन्दी, अग्रेजी में प्रकाशित ।
2. विद्यापति की जीवनी पर आधारित उपन्यास, पटना से प्रकाशित ।
3. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से प्रकाशित- 1995 ई० ।

इनके रचित निम्नांकित ग्रन्थ हैं:–

(1) मैथिली– विद्यापति–पदावली, गोरक्षविजय नाटक ।

(2) अवहट्ठ– कीर्त्तिलता[1], कीर्त्तिगाथा[2], कीर्त्तिपताका ।

(3) संस्कृत– (क) **काव्य**– भूपरिक्रमण, पुरुषपरीक्षा, मणिमञ्जरी नाटिका, प्रश्नोत्तरमालिका (ख) **राजकीय पत्रलेखन**–'लिखनावली' । (ग) **धर्मशास्त्र**–विभागसार, शैवसर्वस्वसार, शैवसर्वस्वसार प्रमाणभूत– पुराणवचन संग्रह, गङ्गावाक्यावली, दानवाक्यावली, दुर्भाभक्तितरङ्गिणी, व्याड़ीभक्तितरङ्गिणी वर्षकृत्य, गयापत्तलक (घ) **ज्योतिष**– 'ज्योतिषसार–समुच्चय' हस्तलेख, मिथिलासंस्कृतशोध संस्थान, दरभंगा ।

विद्यापति की कीर्त्तिलता ऐतिहासिक, भाषाशास्त्रीय और काव्यात्मक महत्त्व के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय है । इस में रस, भाव, ध्वनि, गुण, अलङ्कार, औचित्य, स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति आदि काव्यतत्व पद–पद पर झलक रहे हैं । शब्दविन्यास एवं लालित्य का औचित्यपूर्वक निर्वाह नितान्त प्रौढ़ कवि के अनुरूप है ।

कृतज्ञता ज्ञापन

इस संस्करण के सम्पादन में अपने पूर्वाचार्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । कीर्त्तिलता के हस्तलेख फोटो देखने की सुविधा देकर पटना कालेज के पुस्तकालय के अधिकारीगण, विशेषकर श्री गोपाल बाबू धन्यवाद के पात्र हैं ।

मूल प्रेरणादायक आचार्य डॉ० जयमन्त मिश्र जी धन्यवादार्ह हैं जिन्होंने अपने कुलपति रहने के समय 'विद्यापति–संस्कृत ग्रन्थावली' हेतु इसे तैयार करने की प्रेरणा दी थी ।

संस्कृत छायानुवाद करने में कहीं कहीं क्रियारूपों के कालसम्बन्धी वैपरीत्य को विद्वज्जन क्षमा करेंगे । पाठ–संशोधन एवं हिन्दी अर्थ सम्बन्धी

---

4. प्रो० तन्त्रनाथ झा ने इसका मैथिली पद्यानुवाद किया था, जो दरभंगा से 'स्वदेश' (पत्रिका) 1948 ई० में छपा था ।

5. कीर्त्तिपताका के साथ आरम्भ में इसका अंश प्रकाशित है ।

सुझाव प्रेषित कर यदि कोई सज्जन भेजेंगे तो हमें प्रसन्नता होगी और अग्रिम संस्करण में परिष्कार कर सकेंगे । आशा है, जिज्ञासु जन इसे अपना कर हमें उत्साहित करेंगे ।

दीप ग्राम — **डॉ० शशिनाथ झा**, विद्यावाचस्पति
1-1-2020 ई० — पूर्व प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर व्याकरण विभाग,
का०सिं०द० संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभङ्गा ।

श्रीः

महाकवि विद्यापतिकृता

कीर्तिलता

॥ प्रथमः पल्लवः ॥

(मालिनी छन्दः)

'पितरुपनय मह्यं नाकनद्या मृणालं'
'नहि तनय ! मृणालः किन्त्वसौ सर्पराजः' ।
इति रुदति गणशे, स्मेरवक्त्रे च शम्भौ,
गिरिपति-तनयायाः पातु कौतूहलं वः ॥ 1 ॥

अपि च,

(अनुष्टुप् छन्दः)

शशि-भानु-बृहद्भानु-स्फुरत्त्रितय-चक्षुषः ।
वन्दे शम्भोः पदाम्भोजनम् अज्ञान-तिमिरद्विषः ॥ 2 ॥

अपि च,

(शार्दूलविक्रीडितं छन्दः)

द्वाः सर्वार्थसमागमस्य, रसना-रङ्गस्थली-नर्तकी,
तत्त्वालोकन-कज्जलध्वज-शिखा, वैदग्ध्य-विश्रामभूः ।
शृङ्गारादि-रस-प्रसारलहरी, स्वर्लोक-कल्लोलिनी,
कल्पान्त-स्थिरकीर्त्ति-सम्भ्रम-सखी, सा भारती पातु वः ॥ 3 ॥

(अनुष्टुप् छन्दः)

गेहे गेहे कलौ काव्यं, श्रोता तस्य पुरे पुरे ।
देशे देशे रसज्ञाता, दाता जगति दुर्लभः ॥ 4 ॥
श्रोतुर्ज्ञातुर्वदान्यस्य कीर्त्तिसिंह-महीपतेः ।
करोतु कवितुः काव्यं भव्यं विद्यापतेः कवेः ॥ 5 ॥

कीर्तिलता की 'प्रबोधिनी' हिन्दी व्याख्या

महाकवि विद्यापति ने कीर्तिलता-काव्य के मङ्गलाचरण में बाल-गणेश एवं वात्सल्यमय शिव की उक्ति-प्रत्युक्ति में गणेश-जननी गिरिजा के आनन्दातिशय को वर्णित किया है-

(गणेश कहते हैं)-"पिताजी ! आप अपने माथे पर स्थित स्वर्ग-गङ्गा में उत्पन्न यह कमल-नाल मुझे दीजिए" । (शिव उत्तर देते हैं)- "पुत्र ! यह कमल-नाल नहीं, किन्तु सर्पराज (वासुकी) है" । यह सुनकर बालक गणेश रोने लगे, शिवजी के मुख पर मुस्कुराहट आ गयी और गिरिराजपुत्री का यह कौतूहल (अद्‌भुत लीलादर्शन) आप पाठकों की रक्षा करे ।। 1 ।।

और भी- चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि के रूप में चमकते इन तीनों आँखों से युक्त शम्भु के पदकमल की वन्दना करता हूँ, जो (शम्भु) अज्ञानरूपी अन्धकार के शत्रु हैं ।

उपर्युक्त प्रथम पद्य में वात्सल्य से परिपोषित एवं द्वितीय पद्य में अद्‌भुत से परिपोषित भक्ति रस प्रकटित हो रहा है । पदाम्भोज एवं अज्ञान-तिमिर में रूपक अलंकार है ।। 2 ।।

और भी-

वह भारती (वाणी देवी) आपलोगों की रक्षा करे, जो सकल अर्थ-प्राप्ति का द्वार है, जीभ रूपी रङ्गमञ्च की नर्त्तकी है, तत्त्व (सूक्ष्मविषय) देखने के लिए दीप शिखा है, शृङ्गार वीर आदि रसों के फैलाने के लिए

तरङ्गयुक्त स्वर्ग की नदी (गङ्गा) है और सृष्टि के अन्त तक स्थिर रहने वाले यश को सम्हाल कर रखने वाली सखी है । मालारूपकालङ्कार एवं भक्तिरस से अनुप्राणित यह पद्य है ।। 3 ।।

इस कलियुग में घर-घर में काव्य होते हैं, उसके श्रोता प्रत्येक नगर में हैं और इसके ज्ञाता प्रत्येक देश में हैं, पर दाता तो संसार भर में दुर्लभ है । कवि, श्रोता, ज्ञाता और दाता में उत्तरोत्तर दुलभ होते हैं । यहाँ 'सार' नामक अलंकार है, जहाँ उत्तरोत्तर वस्तु की श्रेष्ठता बताई जाती है ।। 4 ।।

कवि विद्यापति का यह (प्रस्तुत कीर्त्तिलता) काव्य राजा कीर्त्तिसिंह का कल्याण (भव्य) करे जो राजा कवि, श्रोता, ज्ञाता और उदार हैं । उल्लेख अलंकार ।। 5 ।।

दोहा (छन्द)

तिहुअण खेत्तहिं काञि तसु, कित्तिवल्लि पसरेइ ।
अक्खर खम्भारम्भ जञो मञ्चा बन्धि न देइ ।। 6 ।।
तें मञे भणञो निरूढि कए, जइसओ तइसओ कब्ब ।
खल खलत्तणेँ दूसिहइ, सुअण पसंसइ सब्ब ।। 7 ।।
सुअण पसंसउ कव्व मझु, दुज्जण बोलउ मन्द ।
अवसओ विसहर बिस वमइ, अमिञ विमुक्कइ चन्द ।। 8 ।।
सज्जन चिन्तइ मनहि मने, मित्त करिअ सब कोए ।
वेर करन्ता मुज्झ जइ, दुज्जन वैरि न होए ।। 9 ।।

।। संस्कृतच्छायानुवादः ।।

त्रिभुवनक्षेत्रे कथं तस्य कीर्त्तिवल्ली प्रसरेत्?
अक्षरस्कम्भारम्भं यदि मञ्चं बद्ध्वा न दद्यात् ।। 6 ।।
तेनाहं भणामि निरूढ़िं कृत्वा, यादृशं तादृशमपि काव्यम् ।
खलः खलत्वेन दूषयिष्यति, सुजनः प्रशंसति सर्वम् ।। 7 ।।

सुजनः प्रशंसतु काव्यं मम, दुर्जनो वदतु मन्दम् ।
अवश्यमेव विषधरो विषं वमति, अमृतं विमुञ्चति चन्द्रः ।। 8 ।।
सज्जनश्चिन्तयति मनस्येव मनसा, मित्रं कुर्यात् सर्वं कमपि ।
वैरं कुर्वतो मम यदि, दुर्ज्जनाः वैरिणो न भवेयुः ।। 9 ।।

विभुवन रूपी खेत में उस राजा कीर्त्तिसिंह की कीर्त्ति (यश) रूपी लता कैसे फैलेगी यदि अक्षर (कविताबद्ध) रूपी खम्भों पर टिका कर मञ्च (मचान) न बना दिया जाय ? अर्थात् जैसे किसी लत्ती के विकास के लिए खूटों पर बाँस, करची आदि का मंच बनाना जरूरी है, उसी तरह कीर्त्तिसिंह की यशोलता के प्रचार-प्रसार के लिए अक्षरबन्ध की आवश्यकता है । मालारूपक एवं अर्थापत्ति अलंकार ।

खेत्तिहिं=क्षेत्र (खेत) में, मैथिली-खेतहिं, गामहिं, घरहिं । तसु=उसका, सं०-तस्य, प्रा०- तस्स । सं०- अक्षर, प्रा० अव०-अक्खर, मैथिली-आखर (शब्द) । खम्भ+आरम्भ (बनाना) ।। 6 ।।

इसीलिए मैं आरूढ़ (तत्पर) होकर जैसा-तैसा भी (बहुत उत्तम न होने पर भी) काव्य कह रहा हूँ, (जिससे सर्वगुण-सम्पन्न कीर्त्ति सिंह की कीर्तिलता फैल सके) । मेरे इस काव्य की दुर्जन तो अपनी दुर्जनता के कारण निन्दा करेंगे ही (दोष दिखाएंगे ही), पर सज्जन सब तरह से प्रशंसा ही करेंगे । लता को फैलने के लिए केवल ऐसा मञ्च (आधार) चाहिए, जिस पर वह टिक सके, मंच का सुन्दर होना आवश्यक नहीं है, सुन्दरता तो लता में स्वयं होती है । इसी तरह मेरी कविता का सौन्दर्य तो कीर्तिसिंह के गुण होंगे, उनका केवल आधार मेरी कविता होगी । खल का तो स्वभाव ही खलत्व (दुष्टता करना) है । यदि वे ऐसा न करें तो खल कहायेंगे ही नहीं । दोष दिखाना ही उनका काम है, अतः वे ऐसा करेंगे ही । पर मुझे इसकी परवाह नहीं, क्योंकि इस संसार में गुणग्राहक सज्जन भी तो हैं । स्वभावोक्ति अलंकार ।

मजे-प्राचीन मैथिली में प्रचलित शब्द, जिसका अर्थ होता है- मैं, नवीन मैथिली में इसके लिए 'हम' शब्द चलता है । भणञो-कहता हूँ,

'ओ' उत्तम पुरुषबोधक प्रत्यय । निरूढ़ि कए-निश्चय करके, आरूढ़ होकर । जइसउ-जैसा भी, जइसन=जैसा, उ=भी । खलत्वं (सं०)-खलत्तणं (प्रा०) । दूसिहइ-दूषित करेगा, 'दूसब' (मैथिली) ॥ 7 ॥

सज्जन मेरे काव्य की प्रशंसा करते हैं और दुर्जन निन्दा करते हैं (बुरा कहते हैं) तो वे कर लें, क्योंकि विषधर (सर्प) विष अवश्य उगलते हैं और चन्द्रमा अवश्य अमृत बरसाते हैं । जिसका जो स्वभाव है, वह वैसा करेगा ही, क्योंकि उसका वही काम है । तात्पर्य कि दुर्ज्जन के द्वारा कथित दोष उनका अपना स्वभाव है, मेरी कविता का नहीं । दृष्टान्त अलंकार । अबसओ-अवश्य । सं०-अमृत, प्रा० अ०-अमिञ । विमुञ्चति-विमुञ्चइ-विमुक्कइ=विमुक्तं करोति=विमुक्त करते हैं ॥ 8 ॥

सज्जन मन ही मन विचारते हैं कि सभी को मित्र ही बना लिया जाय । यदि मुझे वैर करना ही पड़े तो दुर्जन वैरी न होबे । तात्पर्य यह कि सज्जन और दुर्जन सभी मित्र ही रहें, अगर शत्रु हो ही जायँ तो दुर्जन से शत्रुता न हो । दुर्जन विवेकशून्य होने से क्या कर बैठेगें, इसका ठिकाना नहीं है, जबकि सज्जन का विरोध भी विवेकपूर्ण होने से लाभदायक ही होता है । यहाँ 'बेर करन्ता' के स्थान में 'भेअ कहन्ता' पाठ भी मिलता है, उसका भी ऐसा ही अर्थ उचित है कि मुझे अगर भेद (अलगाव, भिन्नता, शत्रुता) ही करना पड़े तो दुर्जन से भेद (शत्रुता) न होबे । वैरं (सं०)-वेरं (प्रा०)-वेर (अवहट्ठ) ॥ 9 ॥

(चौपाइ छन्द)

बालचन्द बिज्जाबइ भासा ।
दुज्ज न लग्गइ दुज्जन-हासा ॥
ओ परमेसर-सेहर सोहइ ।
ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ ॥ 10 ॥
का परबोधओ कमन मनावओ ।
किमि नीरस-मन रस लए लाबओ ॥

जइ सुरसा होसइ भज्झु भासा ।
जो बुज्झिह सो करिह पसंसा ॥ 11 ॥

(दोहा छन्द)

महुअर बुज्झइ कुसुम रस, कब्बह सार छइल्ल ।
सज्जन पर उअआर मन, दुज्जन नाम मइल्ल ॥ 12 ॥

(चौपाइ)

सक्कअ वाणी बुहअन भावइ ।
पाउअ-रस कोइ मम्म न पाबइ ॥
देसिल वअना सबजन मिट्ठा ।
तें तैसन जम्पञो अबहट्ठा ॥ 13 ॥

बालचन्द्रः विद्यापतिभाषा ।
द्वयोरपि न लगति दुर्जन-हासः ॥
असौ परमेश्वर-शेखरे शोभते ।
एष निश्चयं नागरमनो मोहयति ॥ 10 ॥
कं प्रबोधयामि, कं मानयामि ।
किमिति नीरसमनसि रसं नीत्वा लापयामि ॥
यदि सुरसा भविष्यति मम भाषा ।
यः बोधिष्यति, स करिष्यति प्रशंसाम् ॥ 11 ॥
मधुकरो बुध्यते कुसुमरसं, काव्यस्य सारं विदग्धः ।
सज्जनः परोपकारमनाः, दुर्जनो नाम मलिनः ॥ 12 ॥
संस्कृतवाणीं बुधजनो भावयति ।
प्राकृत-रसस्य कोऽपि मर्म न प्राप्नोति ॥
देशीय-वचनं सर्वजन-मिष्टम् ।
तेन तादृशं जल्पामि अपभ्रष्टम् ॥ 13 ॥

बाल (छोटे, शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि का) चन्द्रमा एवं विद्यापति की लोकभाषा रचना इन दोनों को दुर्जन का उपहास नहीं लगता है (दुर्जन अगर हँसेंगे भी तो इन पर उसका असर नहीं पड़ता है) क्योंकि वे (चन्द्र) परमेश्वर शिव के शिर पर शोभित होते हैं और यह (भाषा) रसिकों के मन को मोह लेती है ।

बाल चन्द्र में वक्रता होती ही है जो उपहास का कारण है, पर उसमें ऐसा बड़ा गुण है जिससे यह छोटा दोष मालूम ही नहीं पड़ता है, वह गुण है उस चन्द्र का परमेश्वर के मस्तक पर रहना । विद्यापति की भाषा लोक-भाषा होने के कारण श्रेष्ठ नहीं हो सकती, पर काव्य तो सहृदयों के द्वारा ही मूल्यांकित होता है और यह काव्य उनके ही मन को मोह लेने के कारणक भी उपहास का पात्र नहीं हो सकता । दीपक एवं काव्यलिङ्ग अलंकार । 'दुज्ज न' एवं 'दुज्जन' में यमक अलंकार ।

बिज्जाबइ-विद्यापति । दुज्ज-द्वयं (सं०)- दुज्जं (प्रा०)-दुज्ज (अवहट्ठ) -दूज (हिन्दी) । लग्गइ-लगति (सं०) । सेहर-शेखर । निश्चय (प्रा०)-णिच्चइ (अव०)-निहचे (प्राचीन मैथिली) । नाअर-नागर (सं०)- णायर (प्रा०)=नगरवासी (चतुर), रसिक ।। 10 ।।

किसे बुझाऊँ, किसे मनाऊँ ? रस लेकर रसहीन मन वालों को किस तरह लाऊँ (अपनी ओर आकृष्ट करूँ) ? (यह सम्भव नहीं है, अतः मैं किसी को कविता से नहीं मनाऊँगा ।) यदि मेरी भाषा (काव्य) सुन्दर रसभरी होगी तो जो उसे समझेंगे, सब उसकी प्रशंसा ही करेंगे । (कवि को अपने काव्य की गुणवत्ता पर विश्वास है । तात्पर्य यह कि काव्य के गुण को केवल सहृदय जन ही समझ सकते हैं । पर, सहृदय को कैसे पहचाना जाय ? जिस-किसी के आगे काव्य-प्रदर्शन से क्या लाभ ? अतः मैं काव्य को पूरा कर डालता हूँ, सहृदय स्वयं इस पर आकृष्ट होंगे ।) अर्थापत्ति अलङ्कार और कविगर्वोक्ति रूप वस्तुध्वनि ।

कतम (संस्कृत)- कओन- (प्रा० मैथिली) -कोन- (मै०)- कौन- (हिन्दी)- कमन (अवहट्ठ)- विद्यापति के गोरक्षविजय में इसका अनेक वार प्रयोग हुआ है । मन् (सं०)-मानना का प्रेरणार्थक रूप मनाबउँ-मनाना ।

किमि=कैसे । लए (मै०)=लेकर । जइ=यदि (सं०) । होसइ-भविष्यति (सं०)- हुविस्सदि (प्रा०)=होगा । बुध (सं०)-बुज्झ (प्रा०)-बुज्झिह (अव०)-बुझबह (मै०)= समझेगा । करिह-करिष्यथ (संस्कृत)- करिहह (मैथिली) ॥ 11 ॥

मधुप (भौँरा) फूल के रस को जानता है । सहृदय (रसिक) काव्य के तत्त्व को जानते हैं, सज्जन परोपकार में मन को लगाना जानते हैं और दुर्जन मलिन होने से दोष दिखाना ही जानता है ।

सज्जन सहृदय मेरी काव्य रचना के परिश्रम एवं उसके रस को सहानुभूति पूर्वक देखेंगे और दुर्जन अपने मन में मालिन्य (कालिमा) रहने के कारण केवल दोष देखेंगे, क्योंकि इनका अपना-अपना स्वभाव ही ऐसा है । स्वभावोक्ति एवं दीपक अलङ्कार ।

मधुकर (सं०)- महुअर (प्रा०,अव०) । बुज्झइ-बुझइ (मैथिली) । कव्वह-काव्य का । छइल्ल (प्रा०)- छविमान्, विदग्धः (सं०)- छैला (हिन्दी) । उपकार (सं०)-उअआर (प्रा०, अव०) । नाम (सं०), वाक्य की शोभा बढ़ाने वाला अव्यय शब्द, जिसका अर्थ 'तो' होता है, प्रसिद्धि द्योतक । मलिन (सं०)-मइल्ल (अव०)-मइल (मैथिली), मैला (हिन्दी) ॥ 12 ॥

संस्कृत भाषा विद्वानों (पण्डितों) को अच्छी लगती है, प्राकृत भाषा के रस के मर्म (तत्त्व) को तो अब कोई नहीं पाता है और देशी भाषा सभी लोगों को मीठी लगती है । इसीलिए उस देशी भाषा के तुल्य (बहुत अंश में समान) अवहट्ठ भाषा में अपना काव्य कह रहा हूँ ।

संस्कृत भाषा को पण्डित ही जानते हैं, सामान्य लोग उसे समझ नहीं सकते, प्राकृत तो सबों के लिए अपरिचित ही हो गया है, उसके बाद अवहट्ठ (अपभ्रष्ट=अप-थोड़ा, भ्रष्ट-परिवर्तित प्राकृत) का स्थान आता है, पर भाषा उससे भी आगे बढ़ चुकी है और वह है देशी (मैथिली, बंगला आदि), जो अपनी भाषा होने से सबों को मीठी लगती है । इस देशी के सब से निकट अवहट्ठ ही है । इसलिए उसी भाषा में कहता हूँ क्योंकि इसके द्वारा व्यापक क्षेत्र में मेरा यह काव्य फैल सकता है (देशी तो सीमित क्षेत्र में ही रहती है ।)

भाषा रूप में समान होने पर भी संस्कृत एवं प्राकृत आदि में फर्क होने से यहाँ व्यतिरेकालंकार ध्वनित हो रहा है । मीठी कहने से गुणातिशय ध्वनित हो रहा है । संस्कृत (सं०)- सक्कय (प्रा०) । बुहअन-बुधजन । पाउअ-प्राकृत । देसिल-देशीय या देश्य (सं०)-देसिल (मै०) । वचन (सं०)- बअण (प्रा०, अव०) । तेन (सं०)-तेण (प्रा०)-तें (अव०)-तेँ (मैथिली) । मैथिली में 'सन' का अर्थ सदृश (समान) होता है, जो संस्कृत समं का तद्भव रूप है । जल्प (सं०)- जप्प (प्रा०)- जम्प (अव०)=कहना । अवहट्ठा-अपभ्रष्टा (सं०), पहराजकृत 'पाउसकोस' (11वीं शती) और वर्णरत्नाकर (14वीं शती का आरम्भ) में संस्कृत और प्राकृत के बाद अवहठ या अवहट्ठ का नाम आया है ।। 13।।

(दोहा)

भिङ्गी पुच्छइ 'भिङ्ग ! सुन, की संसारहिं सार' ।
'मानिनि ! जीवन मान सञो, वीर पुरुष अवतार' ।। 14 ।।
'वीर पुरुस कइ जम्पिअइ, नाह ! न जानञो नाम ।
जइ उच्छाहें फुड कहसि, हञो आकण्णन काम' ।।15।।

(रड्डा छन्द)

कित्ति-लुद्धअ, सूर सङ्गाम ।
धम्मपराअण हिअअ, विपअ काल णहु दीन जम्पइ ।
सहज भाव सानन्द, सुअने भुञ्जिअइ जासु सम्पइ ।।
रहसे दव्व दए विस्सरइ, सत्त-सरूअ सरीर ।
एत्ते लक्खणेँ लक्खिअइ, पुरुस पसंसञो वीर ।। 16 ।।

जदो-

(गाहा छन्द)

पुरिसत्तणेन पुरिसो, ण हु पुरिसो जम्ममत्तेण ।

जलदाणेन हु जलदो, ण हु जलदो पुञ्जिओ धूमो ॥ 17 ॥
सो पुरिसो जसु माणो, सो पुरिसो जस्स अज्जणे सत्ती ।
इअरो पुरिसाआरो, पुच्छ-बिहूणा पसू होई ॥ 18 ॥

भृङ्गी पृच्छति-'भृङ्ग ! शृणु, किं संसारे सारम्' ।
'मानिनि ! जीवनाय मानेन, वीरपुरुषस्य अवतार:' ॥ 14 ॥
'वीरपुरुष: क: जम्प्यते नाथ ! न जानामि नाम ।
यदि उत्साहेन स्फुटं कथयसि, (तर्हि) अहम् आकर्णन-कामा' ॥ 15 ॥
कीर्त्ति-लुब्धक:, शूर: सङ्ग्रामे ।
धर्मपरायण-हृदय:, विपत्काले न खलु दीनं जल्पति ।
सहज-भावेन सानन्द:, सुजनै र्भुज्यते यस्य सम्पत्ति: ॥
रहसि द्रव्यं दत्त्वा विस्मरति, सत्त्व-स्वरूप-शरीर: ।
एतै र्लक्षणै र्लक्ष्यते, (य: तं) पुरुषं प्रशंसामि वीरम् ॥ 16 ॥

यत:-

पुरुषत्वेन पुरुषो, न खलु पुरुषो जन्ममात्रेण ।
जलदानेन खलु जलदो, न खलु जलद: पुञ्जितो धूम: ॥ 17 ॥
स पुरुषो यस्य मान:, स पुरुषो यस्य अर्जने शक्ति: ।
इतर: पुरुषाकार:, पुच्छविहीन: पशु र्भवति ॥ 18 ॥

विद्यापति ने कीर्त्तिलता की कथावस्तु को भृङ्ग और भृङ्गी के संवाद रूप में उपस्थापित किया है ।

भौंरे की पत्नी भौँरे से पूछती है कि हे भृङ्ग ! सुनो- संसार में सबसे उत्कृष्ट वस्तु क्या है ? भौँरा उत्तर देता है कि हे मानवती ! सम्मानपूर्वक जीने के लिये वीर पुरुष का अवतार (जन्म) लेना ही सार वस्तु है ।

शृणु (सं०)-सुन (अव०, मै०) । किम् (सं०)-किं (प्रा०)-की (अव०, मै०) । जीवनाय (सं०)- जीवन (अव०)- जीवाक लेल (मै०) । समम् [सं०]-समं [प्रा०]-सञो [अव०]-सँ [मै०] ॥ 14 ॥

(भृङ्गी का प्रश्न)-हे नाथ ! वीर पुरुष किसे कहते हैं (इसका लक्षण क्या है), यह मैं नहीं जानती हूँ । यदि तुम उत्साह से स्पष्ट कर कहते हो, तो मुझे सुनने की कामना है (मैं सुनना चाहती हूँ) ।

कम् (सं०)-केइ (प्रा०)-कइ(अब०)=किसे । कति (सं०)-कइ (प्रा०, अव०)- कतेक (मै०)=कितने, ऐसा अर्थ करने पर 'जम्पिअइ' के स्थान पर 'जम्मिअइ'- जन्मे हैं, यह पाठ ही रहेगा और कुछ आगे अनेकों वीर पुरुषों के नाम भी गिनाये गये हैं, जिससे इस पाठ का समर्थन होता है, पर, इस दोहा के बाद एक रड्डाछन्द और दो आर्या छन्दों में पुरुष का लक्षण ही है । अतः यहाँ का प्रश्न भी पुरुष लक्षण-विषयक ही उचित है ।।15।।

[भौंरा का उत्तर]- कीर्ति का जिसे लालच हो, युद्ध भूमि में जो वीर हो, जिसका हृदय धर्म में लगा है, विपत्ति काल में जो दीन-वचन नहीं बोलता है, जो सरल स्वभाव के कारण आनन्दित (प्रसन्न) रहे, जिसके सम्पत्ति का उपभोग सज्जन करते हैं, जो एकान्त में किसी को धन देकर फिर भूल जाते हैं (किसी के आगे अपनी बड़प्पन के लिए उसकी चर्चा तक न करते हैं) और जिनका शरीर सदय, गुणमय या सुगठित हो-इन लक्षणों [विशेषताओं] से जो लक्षित [घटित] होता है, वही वीर पुरुष है और उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ । उल्लेख अलंकार ।

लुब्धक [सं०]-लुद्धअ [प्रा०, अव०] । हृदय [सं०]-हिअअ (प्रा०, अव०) । विपद् [सं०]-विपअ [प्रा०, अव०] । न खलु [सं०]-ण खु [प्रा०]- ण हु [अव०] । सुजनैः [सं०]- सुअणेहिं [प्रा०]-सुअने [अव०] । भुञ्ज [सं०] धातु के कर्मवाच्य का रूप भुज्यते-भुञ्जिअइ [छन्द एवं अर्थानुसार यही पाठ समुचित है, पर सभी प्रतियों में 'भुञ्जइ' पाठ मिलता है] । यस्य [सं०]- जस्स [प्रा०]-जासु [अव०] । सम्पत्ति [सं०]- सम्पइ [प्रा०,अव०] । रहस्ये [स०]- रहस्से [प्रा०]-रहसे [अव०]=एकान्त में । विस्मरति [सं०]-विस्सरइ [प्रा०, अव०]- विसरइ [मैथिली]=भूलता है । इयत् [सं०]-एत्ते [प्रा०, अव० मै०] ।। 16 ।।

जैसा कि- पुरुषत्व [पुरुष में रहने वाले आवश्यक गुण] से ही कोई पुरुष कहा सकता है, [पुरुष के रूप में] केवल जन्म लेने से ही पुरुष

नहीं होता है । जल देने के कारण ही मेघ जलद कहलाता है, एकत्रित हुए धुएँ को कोई जलद नहीं कहता है । मेघ बनने में मुख्य तत्त्व रहने के कारण यहाँ केवल धूम का उल्लेख है, अतः धूम शब्द से धूम आदि समझना चाहिए । महाकवि कालिदास ने मेघदूत में स्पष्ट कहा है- 'धूम-ज्योतिः-सलिल-मरुतां सन्निपातो मेघः" अर्थात् धुआँ, सूर्यकिरण, पानी और हवा के सूक्ष्मतत्त्वों के मिश्रण से मेघ बनता है । इन तत्त्वों के पुञ्जित होने पर मेघ बन सकता है, पर जल बरसे विना उसे जलद नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि जलद का अर्थ ही है- जल देने वाला । दृष्टान्त अलंकार ।

यहाँ से दो पद्य विशुद्ध प्राकृत भाषा में हैं । पुरुषत्वं [सं०]- पुरिसत्तण [प्रा०]= पौरुष, यथा-खलत्तण ।। 17 ।।

वही पुरुष है, जिसे अभिमान [आत्मगौरव] है, वही पुरुष है जिसे अर्जन करने की शक्ति है । इनसे भिन्न व्यक्ति तो पुरुष के आकार में पूँछ के विना ही पशु है । यहाँ 'वही' शब्द से पौरुष [पुरुष में रहने वाले गुणों] से युक्त' यह अर्थ ध्वनित होता है । व्यतिरेक अलंकार ।

यस्य [सं०]- जस्स [प्रा०]- जासु [अव०] । शक्ति [सं०]- सत्ती [प्रा०]- सत्ति [अव०] । इतर [सं०]- इअर [प्रा०] । पशु (सं०) पसू [प्रा०]- पसु [अव०] ।। 18 ।।

(दोहा)

पुरिस कहानी हञो कहञो, जसु पत्थावे पुन्न ।
सुक्ख सुभोअन सुभ वअने, देवहा जाइ सँपुन्न ।। 19 ।।

(षट्पद छन्द)

पुरिस हुअउ बलि राए, जासु कर कन्नें पसारिअ ।
पुरिस हुअउ रघुतनय, जेन्ने रने रावण मारिअ ।।
पुरिस भगीरथ हुअउ, जेन्ने निञकुल उद्धरिअउ ।

परसुराम पुनि पुरिस, जेन्ने खत्तिअ खअ करिअउ ॥
अरु पुरिस पसंसञो राअ गुरु, कित्तिसिंह गएणेस-सुअ ।
जे सत्तु समर सम्मद्दि कहु, बप्पवेर उद्धरिअ धुअ ॥ 20 ॥

[अथ भृङ्गी कथयति]–

(दोहा)

'राअ चरित्त रसाल एहु, नाह ! न राखहिं गोए' ।
कवन वंस को राअ सो, कीत्तिसिंह को होए' ॥ 21 ॥

[अथ भृङ्गः कथयति]–

(रड्डा छन्द)

'तक्क कक्कस वेअ पढु तेन्ने ॥
दाने दलिअ दरिद्द, परम बम्ह परमत्थ बुज्झइ ।
वित्तें बटोरइ कित्ति, सत्तेँ सत्तु सङ्गाम जुज्झइ ॥
'ओइनी'-वंस पसिद्ध जग, को तसु करइ न सेव ।
दुहु एकत्तण पाबिअइ, भूबइ अरु भूदेव ॥ 22 ॥

पुरुष-कथानिकाम् अहं कथयामि, यस्याः प्रस्तावेन पुण्यम् ।
सुख-सुभोजन-शुभवचनेन, दिवसो याति सम्पूर्णः ॥ 19 ॥
पुरुषोऽभवत् बलिराजः, यस्य (अग्रे) करः कृष्णेन प्रसारितः ।
पुरुषोऽभवद् रघुतनयः, येन रणे रावणो मारितः ॥
पुरुषो भगीरथोऽभवद्, येन निजकुलम् उद्धृतम् ।
परशुरामः पुनः पुरुषः, येन क्षत्रियक्षयः कृतः ॥
अपरं, पुरुषं प्रशंसामि राजानं गुरुं, कीर्तिसिंहं गणेश-सुतम् ।
येन शत्रून् समरे सम्मर्द्य, पितृवैरम् उद्धृतं ध्रुवम् ॥ 20 ॥
'राजचरित्रं रसालम् एतद्, नाथ ! न रक्ष गोपायित्वा ।
कस्य वंशस्य राजा स, कीर्त्तिसिंहः को भवति' ॥ 21 ॥

तर्कः कर्क्कशः, वेदः पठितः तैः ।।
दानेन दलितं दारिद्र्यं, परब्रह्म परमार्थं बुध्यन्ति ।
वित्तेन वर्तयन्ति कीर्त्तिं, सत्त्वेन शत्रुणा संग्रामे युध्यन्ति ।।
'ओइनी'-वंशः प्रसिद्धो जगति, कः तस्य करोति न सेवाम् ।।
द्वयमपि एकत्वेन प्राप्यते, भूपतिः, अवरो भूदेवः ।। 22 ।।

पुरुष की कहानी मैं कहता हूँ, जिसके प्रस्तुत (आरम्भ) करने से पुण्य (धर्म) होता है और सुख, सुभोजन एवं शुभ वचन से पूरा दिन बीतता है ।

जिसके प्रस्ताव से ही पुण्य आदि प्राप्त होते हैं, उसके आचरण में लाने से कितना फल होगा यह सहज ही समझा जा सकता है, यह तात्पर्यार्थ है । उदात्त अलंकार । 'हञो कहञो' यमक अलंकाार ।

अहम् [सं०]-अह्म (प्रा०)-हञो [अव०]- हम [मै०] । कथयामि (सं०)- कधेमि [प्रा०] कहञो [अव०] । यस्य [सं०]- जस्स [प्रा०]- जसु [अव०] । सुख [सं०]- सुह [प्रा०]- सुक्ख [अव०], यहाँ दुःख शब्द के सादृश्य से सुःख [क्ख] बना हुआ है । दिवस-दिवह-देवहा ।। 19 ।।

पुरुष हुए राजा बलि, जिनके आगे भगवान् कृष्ण (विष्णु, वामन) ने हाथ पसारा था, पुरुष हुए रघुनन्दन (राम), जिन्होंने युद्ध में रावण को मारा था, पुरुष हुए भागीरथ, जिन्होंने अपने कुल का उद्धार किया था, फिर (आगे चलकर) पुरुष हुए परशुराम, जिन्होंने क्षत्रियों का संहार किया था। एक और पुरुष की मैं प्रशंसा कर रहा हूँ । वे हैं गणेश (गणेश्वर) के पुत्र राजाओं में श्रेष्ठ कीर्ति सिंह, जिन्होंने समर-भूमि में शत्रु का मर्दन कर अच्छी तरह वप्पावैर (पिता से शत्रुता करने वालों से बदला) चुकाया था। दीपक और उल्लेख अलङ्कार की संसृष्टि।

कृष्ण [सं०]- कण्ह [प्रा०]- कन्न [अव०] । प्रसारित [सं०]- पसारिअ [प्रा०, अव०, मै०] । येन [सं०]- जेण [प्रा०] जेन्ने [अव०] । क्षय [सं०]- खअ [प्रा०, अव०] । अवर [सं०]- अबर [प्रा०]- अउर-अरु [अव०] । गणेश [सं०]-गणेस [प्रा०]- गएणेस [अव०] । सम्मर्दनं

कृत्वा [सं०]-सम्मद्दिअ [प्रा०]- सम्मद्दि [अव०] = कुचल कर, पैरों तले रौंद कर।

वाप [सं०]=जनक-बप्प [प्रा०]=पिता, बाप [अव०, मै०] ॥ 20 ॥

अब भृङ्गी कहती है- हे नाथ ! इस राजा के रसमय चरित्र को आप छिपा कर (विना कहे हुए) मत रखिये। वह राजा कीर्ति सिंह किस वंश का है ओर कौन है ? कृपया मुझे सुनाइये।

गोपायित्वा [सं०]- गोबइअ [प्रा०]-गोइ [अव०]। कतम (सं०)- कअम [प्रा०]- कमन, कवन [अव०]- कौन (हिन्दी) ॥ 21 ॥

उन्होंने परम कठिन तर्क (न्याय) शास्त्र एवं वेद को पढ़ा था, दान से दरिद्रता को दलित किया था। वे परम ब्रह्म (परमात्मा) को परमार्थ (चरम) सत्य) समझते हैं, धन से यश को बटोरते हैं (संगृहीत करते हैं) और पराक्रम से संग्राम में शत्रु के साथ युद्ध करते हैं। (ऐसे महापुरुषों से युक्त) 'ओइनी' नाम का वंश संसार भर में प्रसिद्ध है, उसकी सेवा कौन नहीं करता है ? पृथ्वीपति (राजा) और पृथ्वीस्थ देवता (ब्राह्मण) एक रूप में ही यहाँ (इस वंश के पुरुष में) प्राप्त होता है (ये ब्राह्मण होते हुए भी राजा हैं) ॥

तेनैव (सं०)-तेणेब्व [प्रा०]- तेन्ने, तेन्हे, [अव०], यथा-जेन्ने (येनैव, की०ल०-1-29)। 'तिन्नि' पाठ उचित नहीं। 'तेन्ने' का ही विकृत रूप लिपिकार के दोष से 'तिन्नि' अपपाठ है। इकार और एकार की मात्रा में मैथिली लिपि में बहुत अल्प भेद है।)

दलितं (सं०)- दलिअं (प्रा०)- दलिअ (अव०)- दलित किया= दो टूक कर दिया। एकत्वेन (सं०)- एकत्तेण (प्रा०)- एकत्तण (अव०), 'एकत्थ'-यह विकृत पाठ है, 'त्त' और 'त्थ' मिथिलाक्षर में समान भी लिखा जाता है ॥ 22 ॥

जेन्ने खण्डिअ पुब्ब बलि-कन्न ॥
जेन्ने सरण परिहरिअ, जेन्ने अत्थिजन विमन न किज्जिअ।

जन्हि अतत्थ नहु भणिअ, जन्हि न पाओ उम्मग्ग दिज्जिअ ॥
ता कुल केरा बड्डिपन, कहबा कओोन उपाए ।
जं जम्मिअ उप्पन्न-मति, कामेसर सन राए ॥ 23 ॥

छप्पए (षट्पद छन्द)

तसु नन्दन भोगीस राअ, वर भोगे पुरन्दर ।
हुअउ हआसन तेजेँ, कान्ति कुसुमाउह सुन्दर ।
जाचक सिद्धि-केदार, दाने पञ्चम-बलि जानल ।
पिअसख भणि पिअरोज साह, सुरतान सँमानल ॥
पत्तापे दाने सम्माने गुणेँ, जे सबे करिअउ अप्पवस ।
वित्थरिअ कित्ति महिमण्डलहिं, कुन्द-कुसुम संकास जस ॥ 24 ॥

दोहा (छन्द)

तासु तनय नय विनय गुण, गरुअ रए गएनेस ।
जे पट्ठाइअ दसओ दिस, कित्ति कुसुम सन्देस ॥ 25 ॥

छप्पए (षट्पद छन्द)

दानेँ गरुअ गएणेस, जेन्ने जाचक-जन रञ्जिअ ।
मानेँ गरुअ गएणेस, जेन्ने रिउ बड्डिम भञ्जिअ ॥
सत्तेँ गरुअ गएणेस, जेन्ने तुलिअउ आखण्डल ।
कित्ति गरुअ गएणेस, जेन्ने धवलिअ महिमण्डल ॥
लावण्णेँ गरुअ गएणेस पुनु, देक्खिअ भासइ पञ्चसर ।
भोगीस-तनअ सुपसिद्ध जग, गरुअ राए गएणेस वर ॥ 26 ॥

येन खण्डितौ पूर्वं बलिकर्णौ ॥
येन शरणं परिहृतम्, येन अर्थिजनो विमनाः न कृतः ।

येन अतथ्यं नहि भणितं, येन न पदम् उन्मार्गे दत्तम् ।।
तत्कुलस्य महत्त्व-कथनस्य कः उपायः ।
यत्र जातः उपपन्नमतिः, कामेश्वरसमः राजा ।। 23 ।।
तस्य नन्दनो भोगीशो राजा, वरभोगेन पुरन्दरः ।
अभूद् हुताशनः तेजसा, कान्त्या कुसुमायुध-सुन्दरः ।।
याचकस्य सिद्धि-केदारः, दानेन पञ्चम-बलिः ज्ञातः ।
प्रियसखं भणित्वा फीरोजशाह-सुरत्राणेन सम्मानितः ।।
प्रतापेन दानेन सम्मानेन गुणेन, यः सर्वं कृतवान् आत्मवशम् ।
विस्तृता कीर्त्तिः महिमण्डले, कुन्दकुसुम-संकाशा यस्य ।। 24 ।।
तस्य तनयो नय-विनय-गुणैः गुरुः राजा गणेशः ।
येन प्रस्थापितः दशसु दिक्षु, कीर्ति-कुसुम-सन्देशः ।। 25 ।।
दानेन गुरुको गणेशः, येन याचक-जनो रञ्जितः ।
मानेन गुरुको गणेशः, येन रिपु-वर्धिमा भञ्जितः ।।
सत्त्वेन गुरुको गणेशः, येन तुलित आखण्डलः ।
कीर्त्त्या गुरुको गणेशः, येन धवलितं महिमण्डलम् ।।
लावण्येन गुरुको गणेशः पुनः, दृष्टो भासते पञ्चशरः ।
भोगीश-तनयः सुप्रसिद्धो जगति, गुरुको राजा गणेशो वरः ।। 26 ।।

जिन्होंने पहले राजा बलि तथा कर्ण इन दोनों दानवीरों के यश को खण्डित कर दिया था । 'पतिपक्ख' पाठ मानने पर 'प्रतिपक्षी' (शत्रु) को मारा था, जिन्होंने किसी के शरण में जाने का परित्याग किया था (शरणापन्न नहीं हुए थे), याचकों को विमन (दुःखी) नहीं किया था, अयथार्थ (झूठा) नहीं बोला था और अपने पैर को उन्मार्ग (गलत रास्ते) में नहीं दिया था । उस कुल की बड़ाई किस उपाय (साधन) से कही जाय ? (बड़ाई करना असम्भव है), जिस कुल में प्रत्युत्पन्नमति (विलक्षण उत्तर देने वाले महामति) कामेश्वर राय जैसे राजा जन्मे थे । व्यतिरेक एवं अर्थापत्ति अलंकार ।

परिहृतम् [सं०]=पडिहरिअं [प्रा०]- परिहरिअ [अब०, प्रा० मै०] = परित्याग किया । क्रियताम् [सं०]- किज्जए [अव०]-किज्जिअ [भूतकालिक रूप] । येनैव [सं०]-जेन्ने [अव०], जन्हि [मै०] । वर्धापनं [सं०] बड्ढावणं [प्रा०]- वड्ढिपन [अव०] । कथनस्य [सं०]- कहबाँ [अव०]- कहबाक [मै०] । यस्मिन् [सं०]- जं [अव०]। उपपन्न = युक्तियुक्त, समुचित । ।। 23 ।।

उनके पुत्र राजा भोगीश (भोगीश्वर) हुए जो उत्तम भोग करने में इन्द्र थे, तेज से अग्निस्वरूप हुए, कान्ति से सुन्दर कामदेव ही थे, याचकों के लिए सिद्धिक्षेत्र थे, दान देने में चतुर पाँचवाँ बलि ही थे और सुलतान फीरोज शाह के द्वारा प्रियसखा कह कर सम्मानित हुए थे । जो प्रताप, दान, सम्मान तथा गुणों से सबों को अपने वश में कर लेते थे, जिनका कुन्द फूल के समान उज्ज्वल यश सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर फैल गया था- ऐसे थे भोगीश्वर राए । मालारूपक और उपमा अलंकार ।

हुताशन [सं०]- हुदासण [प्रा०]- हुआसन [अव०] । पञ्चम बलि– दैत्यराज बलि सर्वोत्कृष्ट दाता के प्रतीक माने जाते हैं । विद्यापति ने ऐसे पाँच उत्कृष्ट दाताओं को 'बलि' कहा है । उनमें प्रथम तो साक्षात् राजा बलि ही हैं, दूसरे बलि दधीचि हैं, तीसरे हरिश्चन्द्र, चौथे कर्ण और पाँचवें बलि राजा भोगीश्वर हुए । द्रष्टव्य कीर्त्तिलता तृतीय परिच्छेद -"बलि-कर्ण-दधीचि करो स्पर्धा साध" । प्रो० रमानाथ झा के अनुसार- दानको पाँचवाँ बलि (यज्ञमें समर्पित भोज्य पदार्थ) जाना । नित्य पाँच महायज्ञ (ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ) में पाँचवाँ अतिथि वा भूत बलि दान से करते थे । आत्मवश [सं०]-अप्पवश [प्रा० अव०]- आप बस [प्रा० मै०]- अपन वश [मै०] । विस्तृत [सं०]- वित्थरिअ [प्रा०, अव०]- विथरि [मैथिली] । यस्य [सं०]- जस्स [प्रा०]- जस [अव०]= जिसका । 'जस' शब्द को यहाँ 'यश' का तद्भव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि यश का पर्यायवाची कीर्त्ति शब्द यहाँ विद्यमान ही है ।। 24 ।।

उनके पुत्र राजा गणेश्वर नीति, विनय एवं गुणों के कारण श्रेष्ठ माने जाते थे, जिन्होंने अपने यशरूपी फूल के सन्देश (मै० उपहार) को दशों दिशाओं में भेज दिया । रूपक एवम् अतिशयोक्ति अलंकार ।

गणेश [सं०]- गणेस [प्रा०]- गएणेस [अव०], 'गणेश' का फारसी प्रभावित उच्चारण। प्रस्थापित [सं०] -पट्ठाविअ [प्रा०]-पट्ठाइअ [अव०]-पठाओल (मैथिली)। सन्देश- वार्ता (सं०)-उपहार (मै०)। ॥ 25 ॥

राजा गणेश (गणेश्वर) महान् गौरवशाली राजा हुए। वे गणेश दान करने के कारण श्रेष्ठ थे, जो याचक लोगों को प्रसन्न करते थे, मान के कारण श्रेष्ठ हुए, जिन्होंने शत्रु की उन्नति (महत्ता) का भङ्ग किया था, सत्त्व (पौरुष) से श्रेष्ठ थे, जिन्होंने इन्द्र को भी तुलित कर लिया था (शक्ति को माप ली थी), यश से श्रेष्ठ थे, जिन्होंने भूमण्डल को धवलित (उजला) कर दिया था और सौन्दर्य से श्रेष्ठ थे, क्योंकि देखने में कामदेव ही जान पड़ते थे। इस तरह भोगीश्वर के पुत्र राजा गणेश्वर संसार भर में प्रसिद्ध थे ॥

काव्यलिङ्ग, अतिशयोक्ति एवम् उपमा अलंकार। गुरु [सं०]-गुरुक [सं०]-गरुअ [प्रा०, अव०]- गरु [मै०]। येन (सं०)- जेण [प्रा०]-जेन्ने (अव०)। वर्धिमा (सं०)-वड्ढिम (प्रा०)- बढ़ियाँ (मै०, हिं०)। सत्त्वेन (सं०)- सत्तेण (प्रा०)- सत्तेँ (अव०)= पौरुष (बल) से ॥ 26 ॥

(गद्य)

तन्हिकरो पुत्र युवराजन्हि माँझ पवित्र, अगणिअ-गुण-ग्राम, प्रतिज्ञा-पदपूरणैक-परशुराम, मर्यादा-मङ्गलावास, कविता-कालिदास, प्रबलरिपुबल-समर-साहस-दुर्निवार, धनुर्विद्या-वैदग्ध्य-धनञ्जयावतार, समाचरित-चन्द्रचूड-सेव, समस्त-प्रक्रियाविराजमान-महाराजाधिराज- श्रीमद्वीरसिंहदेव ॥ 27 ॥

दोहा (छन्द)

तासु कनिट्ट गरिट्ठ-गुण, कित्तिसिंह भूपाल।
मेइनि साहउ चिर जिअउ, करउ धम्म परिपाल ॥ 28 ॥

(गद्य)

जेन्ने राञे अतुलतर-विक्रम-विक्रमादित्य करेओ तुलनाञे, साहस साधि, पातिसाह आराधि, दुट्ठा करेओ दप्प चूरेओ, पितृबैर उद्धरि माहि करो मनोरथ पूरेओ, प्रबल-शत्रु-दल-संघट्ट-सम्मिलन-सम्मद्द-सञ्जात- पदाघात-तरल-तर-तुरङ्ग-खुरक्षुण्ण- वसुन्धरा-धूलि-सम्भार-घनान्धकार-श्याम- समर-निशाभिसारिकाप्राय-जयलक्ष्मी-करग्रहण करेओ, बूडन्त राज्य उद्धरि धरेओ, प्रभुशक्ति-दानशक्ति-ज्ञानशक्ति तीनिहु शक्तिक परीक्षा जानलि, रूसलि विभूति पलटाए आनलि, अहितन्हि करो अहङ्कार सारेओ, तरलतर-तरवारिधारा-तरङ्ग-संग्राम-समुद्रफेणप्राय यश उद्धरि दिगन्त वित्त्थरेओ ॥ 29 ॥

तस्य पुत्रो युवराजेषु मध्ये पवित्रः, अगणित-गुणग्रामः, प्रतिज्ञापदपूरणैक-परशुरामः मर्यादामङ्गलावासः, कविताकालिदासः, प्रबल-रिपुबल-सुभट-सङ्कीर्ण-समर-साहस-दुर्निवारः, धनुर्विद्या-वैदग्ध्य-धनञ्जयावतारः, समाचरित-चन्द्रचूड़सेवः, समस्त-प्रक्रिया-विराजमान-महाराजाधिराज-श्रीमद्वीरसिंहदेवः ॥ 27 ॥

तस्य कनिष्ठो गरिष्ठगुणः, कीर्त्तिसिंहो भूपालः ।
मेदिनीं साधयतु चिरं जीवतु, करोतु धर्मस्य परिपालनम् ॥ 28 ॥

येन राज्ञा अतुलतर-विक्रम-विक्रमादित्यस्य तुलनया साहसं संसाध्य, पातिसाहम् (सम्राजम्) आराध्य दुष्टानां दर्पः चूर्णितः, पितृवैरम् उद्धृत्य मातुः मनोरथः पूरितः, प्रबलशत्रुबल- संघट्ट- सम्मिलन- सम्मर्द- सञ्जात- पदाघात- तरलतर-तुरङ्ग-खुरक्षुण्ण-वसुन्धरा-धूलिसम्भार-घनान्धकार-श्याम-समर-निशाभिसारिकाप्राय-जयलक्ष्मी-करग्रहणं कृतम्, भ्रश्यद् राज्यम् उद्धृत्य धृतम्, प्रभुशक्ति-दानशक्ति-ज्ञानशक्तीति तिसृणामपि शक्तीनां परीक्षा ज्ञाता, रुष्टा विभूतिः परावर्त्त्य आनीता, अहितानाम् अहङ्कारः अपसारितः, तरलतर-तरवारिधारा-तरङ्गसंग्राम- समुद्रफेणप्रायं यशः उद्धृत्य दिगन्ते विस्तारितम् ॥ 29 ॥

उनके पुत्र, युवराजों में पवित्र-अगणित गुणों के आश्रय, प्रतिज्ञा पद को पूरा करने में एकमात्र परशुराम स्वरूप, मर्यादा (कुलरीति) के मङ्गलमय आवास, कविता करने में कविकुलगुरु कालिदास स्वरूप, प्रबल शत्रु-सैन्य के उत्तम योद्धाओं से भरे समरभूमि में साहस के समय दुर्दम्य (किसी से रोके न जानेवाले), धनुर्विद्या की निपुणता में अर्जुन के ही अवतार, चन्द्रमा को मस्तक पर रखने वाले शिव की सेवा में सविधि तत्पर और सभी राजोचित साधन एवं प्राधिकार से युक्त महाराजाधिराज श्रीमान् वीरसिंह देव थे । रूपक एवं प्रतापातिशय व्यंग्य ।

तत्कृत: (सं०)-तंकिअ (प्रा०)- ताकरो (अव०)- तकरो, तनिकरो, तनिको (मै०)=उनका । मध्य-मज्झ-माँझ (अव०, मै०) ।। 27 ।।

उनके (वीर सिंह के) सबसे छोटे किन्तु गुण में सबसे बड़े भाई राजा कीर्त्ति सिंह पृथ्वी को अधिकृत करें, चिरजीवी हों और धर्म का पालन करें । विरोधाभास अलंकार । कनिष्ठ-कणिट्ठ-कनिट्ठ । गरिष्ठ-गरिट्ठ । मेदिनी- मेइणी-मेइनि । साधयतु-साहअउ-साहउ। जीवतु- जीवउ-जिअउ।। 28।।

जिस राजा ने उत्कृष्ट अतुलनीय पराक्रम से राजा विक्रमादित्य के समान साहस कर बादशाह को सेवा से प्रसन्न कर दुष्टों के दर्प को चूर्ण किया, पितृवध का वैर चुका कर माता के मनोरथ को पूर्ण किया, प्रबल शत्रु-सैन्य के जमाव से मुठभेड़ (टकराव) के कारण उत्पन्न सम्मर्दन (धक्का-धुक्की) से हुए सैनिकों के पैरों के आघात से तथा अत्यन्त चञ्चल घोड़ों के खुरों के द्वारा खुने जाने से, पृथ्वी की धूलि भर जाने पर घने अन्धेरा के कारण (रात के समान) काली समर भूमि में मानिये निशाभिसारिका (अन्धेरी रात में छिपकर प्रियकी पास जाने बाली नायिका) के रूप में आयी हुई विजय-लक्ष्मी का पाणिग्रहण किया, डूबते हुए राज्य का उद्धार करके रखा, प्रभुशक्ति-ज्ञानशक्ति एवं दानशक्ति इन तीनों शक्तियों की जाँच करना जाना, रूठी हुई विभूति (ऐश्वर्य) को लौटाकर लाया, अहित करने वालों के अहङ्कार को दूर किया और अतिचञ्चल तलवार की धारा के तरङ्ग से संग्राम में, मानिये समुद्र फेन के समान उज्ज्वल यश को उठाकर दिग-दिगन्त में फैला दिया ।।

विक्रम एवं बल शब्दों की आवृत्ति से यमक अलंकार, उपमा, 'प्राय' शब्द से उत्प्रेक्षा, अतिशोक्ति अलंकार। बादशाह (फारसी)-पातिसाहि (अव०)। आराध्य (सं०)-आराहिअ (प्रा०)-आराधि (अव०)-अराधि (मै०)। दुष्टानां [सं०]- दुट्ठाणं [प्रा०]- दुट्ठा करेओ [अव०]- दुट्ठ केर [प्रा० मै०]- दुष्टक वा दुष्ट केर [मै०]। उद्धृत्य [सं०]-उद्धरिअ [प्रा०]- उद्धरि [अव०]। मातृ [सं०]-माए [प्रा०]- माहि [अव०]- माइ [मै०]। जानलि=जानी गयी, 'जानल' का स्त्रीलिङ्ग रूप, कर्मवाच्य। परावर्त्य-पलट्टाबिअ-पलटाए [मै०]। सारित [सं०]- सारिअ [प्रा०, अव०]-सारेओ [अव०]। विस्तारित [सं०]-बित्थारिअ [प्रा०]- वित्थरेओ [अव०]- विथारल [मै०] ॥ 29 ॥

(रथोद्धता छन्द)

ईशमस्तक-निवास-पेशला, भूतिभार-रमणीय-भूषणा ।
कीर्त्तिसिंह-नृपकीर्त्तिकामिनी, यामिनीश्वरकला जिगीषतु ॥ 30 ॥

इति श्री विद्यापतिविरचितायां कीर्त्तिलतायां प्रथमः पल्लवः ॥

राजा कीर्त्तिसिंह की कीर्त्ति (यश) स्वरूपा कामिनी (नायिका) चन्द्रकला की जीतने की इच्छा करे, अर्थात् उससे अधिक गुणवती हो जाय, जो (कीर्त्ति) ईशों (अधीनस्थ राजाओं) के मस्तक पर निवास करने में अतिनिपुण है और ऐश्वर्य के भार (आधिक्य) स्वरूप रमणीय भूषणवाली है। चन्द्रकला भी ईश (शिव) के मस्तक पर रहती है और उन्हीं की विभूति (भस्म) से भूषित भी है। इन कथित गुणों से कीर्त्ति एव चन्द्रकला अभी तुल्य ही है, कीर्त्ति बढ़ जाय, यही तात्पर्य है)।

कीर्त्ति को ही कामिनी और भूतिभार को ही भूषण कहना रूपक अलंकार है। ईश एवं भूति शब्दों पर दो अर्थ आते हैं, अतः श्लेष अलंकार हुआ। कीर्त्ति सिंह की कीर्त्तिकामिनी एवं रात्रिपति चन्द्रमा की कला के तुल्य रहने पर भी एक का उत्कर्ष कथन व्यतिरेक अलंकार है। पेशल=अति

निपुण, यथा=रसपेशल । यामिनी=रात्रि, उसके ईश्वर (पति) चन्द्रमा, उसकी कला=चान्दनी । 'यामिनीश्वरकला:' द्वितीयाबहुवचन का रूप, कर्मकारक । जकार (अश्) के परे विसर्ग का लोप "भोभगो०" सूत्र से हुआ है ।

आगे इस ग्रन्थ में कीर्त्तिसिंह का ऐसा यश वर्णित होगा कि जिससे वह चन्द्रकला को अवश्य जीत लेगा-यह सूचित हो रहा है ।। 30 ।।

प्रथम पल्लव समाप्त ॥

द्वितीयः पल्लवः

अथ भृङ्गी पुनः पृच्छति—

(दोहा)

किमि उप्पणउ वैरिपण, किमि उद्धरिअउ तेण ।
पुण्ण कहाणी पिअ कहहिं, सामिञ सुणओँ सुहेण ॥ 1 ॥

[अथ भृङ्गः कथयति—]

(षट्पद छन्द)

लक्खण सेन नरेस लिहिअ जबे पक्ख पञ्च बे ।
तं महुमासहि पढम पक्ख पञ्चमी कहिअ जे ॥
रज्ज-लुद्ध असलान, बुद्धि बिक्कम बले हारल ।
पास बइसि विसवासि, राए गएणेसर मारल ।
मारन्त राए राग-रोल पडु, मेइनि हा-हा सद्द हुअ ।
सुरराए नअर नाअर रमणि, वाम नअन पप्फुरिअ धुअ ॥ 2 ॥
ठाकुर ठक भए गेल, चोरेँ चप्परि घर लिज्जिअ ।
दासेँ गोसाञुनि गहिअ, धम्म गए, धन्ध निमज्जअ ॥
खलेँ सज्जन परिभविअ, कोइ नहि होइ विचारक ।
जाति-अजाति विवाह, अधम उत्तम काँ पारक ॥
अक्खर रस बुज्झनिहार नहि, कइकुल भमि भिक्खारि भउ ।
तिरहुत्ति तिरोहित सब्ब गुणेँ, रा गणेस जबे सग्ग गउ ॥ 3 ॥

किमु उत्पन्नं वैरित्वं, कथम् उद्धृतं तेन ।

पुण्यकथानिकां प्रिय ! कथय, स्वामिन् ! शृणवानि सुखेन ।। 1 ।।
'लक्ष्मणसेन-नरेश-लिखितं यदा पक्ष-पञ्च द्वे (इति) ।
तन्मधुमासे प्रथम-पक्ष-पञ्चमी कथिता या ।।
राज्यलुब्धः 'असलानः' बुद्धि-विक्रम-बलैः पराजितः ।
पार्श्वम् उपविश्य विश्वास्य राजा गणेश्वरो मारितः (तेन) ।।
मार्यमाणे राज्ञि रण-कोलाहलः पतितः, मेदिन्यां हा-हाशब्दोऽभूत् ।
सुरराज-नगर-नागर-रमण्याः, वामनयनं प्रस्फुरितं ध्रुवम् ।। 2 ।।
ठक्कुरः वञ्चकोऽभवत्, चौरेण तरसा गृहाः गृहीताः ।
दासेन गोस्वामिनी गृहीता, धर्मो गत्वा, द्वन्द्वे निमग्नः ।।
खलेन सज्जनाः परिभाविताः, कोऽपि नहि भवति विचारकः ।
जात्याजात्योः विवाहः, अधमः उत्तमस्य पारक्यः ।।
अक्षर-रसस्य बोद्धा नहि, कविकुलं भ्रमित्वा भिक्षुकोऽभूत् ।
तीरभुक्तिः तिरोहिता सर्वगुणेन, राजा गणेशो यदा स्वर्गं गतः ।। 3 ।।

अब भृङ्गी फिर पूछती है- कीर्त्तिसिंह जैसे वीर पुरुष को शत्रुता कैसे हो गयी और उसने उसका उद्धार कैसे किया (बदला कैसे चुकाया) ? हे प्रिय ! स्वामी भृङ्ग ! इस पुण्य कहानी को कहो, इसे मैं सुख से सुनूँ ।।

उत्पन्न [सं०]-उप्पण्ण [प्रा०]-उप्पण्णउ [अव०] । वैरित्व-वेरिप्पण-बैरिपण । उद्धृत-उद्धरिअ उद्धरिअउ (कर्मवाच्य भूत-काल) । कथय-कधेहि-कहहि [अव०, मै०] । स्वामिन्-सामी-सामिञ । सुखेन-सुहेण [प्रा०, अव०] ।। 1 ।।

अब भृङ्ग कहता है- राजा लक्ष्मण सेन का चलाया हुआ संवत् जब 252 हुआ और उस वर्ष में मधुमास (चैत्र) के प्रथम पक्ष (कृष्ण पक्ष) की पञ्चमी तिथि जो हुई उस तिथि को राज्य का लोभी 'असलान' नाम का एक क्रूर व्यक्ति ने बुद्धि, बल और सैन्य से हार कर राजा गणेश्वर के पास बैठकर उन्हें विश्वास देकर मार दिया ।

राजा के मारे जाने के साथ ही वहाँ संग्राम होने जैसा कोलाहल होने लगा, पृथ्वी पर हाहाकार मच गया और देवराज इन्द्र के नगर में रसिक रमणियों की वायें आँख निश्चित रूप से फड़कने लगी होगी ।

स्त्री के वाम अङ्गों का फड़कना शुभ शकुन है । अति गुणशाली गणेश्वर का समीप आना ही उसका फल है, मरने पर तो वे स्वर्ग ही जाएँगे ।

स्वभावोक्ति अलंकार । रण-रोल में उपमा, 'ध्रुव' शब्द से उत्प्रेक्षा की अभिव्यक्ति । करुण रस । गणेश्वर का गुणातिरेक अभिव्यञ्जित हो रहा है । 'विक्रम बले' में पुनरुक्तवदाभास अलंकार है । लिखित [सं०]- लिहिअ [प्रा०, अव] = लिखा हुआ = चलाया हुआ । द्वे [सं०]- वे [प्रा०, अव०] = दो । 'अङ्कस्य वामा गतिः' अङ्क दायें से वायें की ओर लिखे जाते हैं । पक्ख पञ्च बे = 252 हुए । विक्रम = पराक्रम । बल = सैन्य । बइसि [मै०] = बैठकर । विसवासि [मै०] = विश्वास देकर । रणरोल = रणभूमि की तरह हल्ला । प्रस्फुरित [सं०] - पप्फुरिअ [प्रा०, अव०] ॥ 2 ॥

राए गणेश जब स्वर्ग गये तो (उनके तिरहुत राज्य में अशान्ति फैल गयी।) ठाकुर लोग ठग बन गये, चोर जबर्दस्ती घर से सामान लेने लगे, नौकर कुलदेवता तक के स्थान को लेने लगे, धर्म द्वन्द्व में पड़कर (राम लें या खुदा लें) डूब गया, दुष्ट सज्जन को सताने लगा । कोई विचारने वाला न रहा, उत्तम जाति के लोग से अधम जाति का विवाह होने लगा, अधम व्यक्ति उत्तम व्यक्ति का शत्रु बन गया, अक्षर के रस (कवित्व) को समझने वाला कोई न रहा, कविजन भटक कर भिखारी हो गये और तिरहुत (मिथिला) सभी गुणों से ओझल हो गया। अर्थात् कोई भी गुण वहाँ नहीं रहा।

ठाकुर = अधिपति, मान्यजन । स्थग्न सं०–ठग्ग, प्रा०–ठक अब०, मै० = वञ्चक । तत्पर सं०–तप्पर प्रा०- चप्पर अव०–चड़-फड़ मै० = तत्परता से, बलात् । गोस्वामिनी सं० – गोसामिणी, प्रा०-गोसाउनि [अव०, मै०] कुलदेवता, अन्य वस्तु की तो बात ही क्या, कुलदेवतास्थान तक को अधिकृत कर लिया । गत्वा – गए (मै०) = जाकर । द्वन्द्व [सं०]- दंद [प्रा०]- धन्ध [अव०] = दुविधा । पारक्य सं०-पारक [अब०] = शत्रु, "पार भए पारक" की० ल० तृतीय० । भए गेल [मै०] = हो गया । 'कोइ नहि होइ विचारक' [मै०] । उत्तम काँ [मै०] = उत्तम को । बुज्झनिहार [अव०]- बुझनिहार [मै०] ॥ 3 ॥

(रड्डा छन्द)

राए बधिअउ सन्त हुअ रोस ॥
लज्जाइअ निअ मनहि, अस तुरुक्क असलान गुन्नइ ।
मन्द करिअ हञो कम्म, धम्म सुमरि निअ सीस धुन्नइ ॥
एहि दुन्नअ उद्धार के, पुण्ण न देक्खञो आन ।
राज्ज समप्पञो, पुनु करञो, कित्तिसिंह-सम्मान ॥ 4 ॥

(दोहा)

सिंह-परक्कम मानधन, वेरुद्धार सुसज्ज ।
कित्तिसिंह णहु अङ्गिरइ, सत्तु समप्पिअ रज्ज ॥ 5 ॥

राजा हतः, शान्तोऽभूद् रोषः ॥
लज्जितो निजमनसि, इत्थं तुरुष्कः असलानः गुणयति ।
मन्दं कृतं मया कर्म, धर्मं स्मृत्वा निजशीर्षं धूनयति ॥
एतद्-दुर्णयोद्धारस्य पुण्यं न पश्यामि अन्यत् ।
राज्यं समर्पयानि, पुनः करवाणि कीर्त्तिसिंह-सम्मानम् ॥ 4 ॥
सिंहपराक्रमो मानधनः, वैरोद्धार-सुसज्जः ।
कीर्त्तिसिंहो न खलु अङ्गीकरोति, शत्रुसमर्पितं राज्यम् ॥ 5 ॥

असलान ने राजा को जब मार दिया तो उसका रोष शान्त हो गया। वह तुर्क असलान मन ही मन लज्जित होने लगा और ऐसा विचारने लगा कि मैंने बहुत बुरा काम किया। वह धर्म को स्मरण कर अपना माँथा धुनने लगा कि अपनी इस दुर्नीति से उद्धार के लिए दूसरा पुण्य नहीं देखता हूँ। वह एकमात्र पुण्य यह है कि कीर्त्ति सिंह को राज्य समर्पित कर फिर से सम्मान करूँ।

शान्त [सं०]- संत [प्रा०]- सन्त [अव०] । गुणयति [सं०]- गुण्णइ [प्रा०, अव०] । अहम् [सं०]- हञो । दुर्नय [सं०]- दुण्णय [प्रा०]- दुण्णअ [अव०] । अन्य [सं०]- आन [अव०, मै०] ॥ 4 ॥

परन्तु कीर्ति सिंह शत्रु के द्वारा समर्पित राज्य को स्वीकार नहीं कर रहे हैं, क्योंकि वे सिंह के समान पराक्रमी, मान के धनी और वैर चुकाने हेतु सुसज्जि (तैयार) हैं । 'सिंह परक्कम' में उपमा एवं 'मान-धन' में रूपक अलंकार हैं । वैरोद्धार [सं]—वेरोद्धार [प्रा०]- वेरुद्धार [अव०] । न खलु (सं०) - ण क्खु (प्रा०) - णहु (अव०) । अङ्गीकरोति (सं०)- अंगीकरेइ (प्रा०)- अङ्गिरइ (अव०, प्रा० मै०) ॥ 5 ॥

(रड्डा छन्द)

माए जम्पइ अवरु गुरुलोए ॥
मन्ति मित्त सिक्खबइ, कबहु एहु नहि कम्म करिअइ ।
कोहे रज्ज परिहरिअ, वप्प-वेर निअ चित्त धरिअइ ॥
लेहेन राए गएणेस गउँ, सुरपुर इन्द समाज ।
तुम्हें सत्तुहि मित्त कए, भुञ्जह तिरहुति-राज ॥ 6 ॥

(गद्य)

तेतुली बेला मातृ-मित्र-मन्ति-महाजनन्हि करो बोलन्ते, हृदय-गिरिकन्दरा-निद्राण पितृवैर-केसरी जागु, महाराजाधिराज श्रीमत्कीर्त्तिसिंहदेव कोपि कोपि बोलए लागु–

अरे अरे लोकहु, वृथा-विस्मृत-स्वामिशोकहु, कुटिल-राजनीति- चतुरहु, मोर वअन आकण्ण करहु- ॥ 7 ॥

(दोहा)

माता भणइ ममत्त पइ, मन्ती रज्जह नीति ।
मज्झु पिआरी एक्क पइ, वीर पुरिस को रीति ॥ 8 ॥
मान-विहूणा भोअणा, सतुक देलें राज ।
सरण पइट्ठे जीअणा, तीनू काअर काज ॥ 9 ॥

(चौपाई)

जे अपमानें दुक्ख न मानइ ।

दान-खग्ग को मम्म न जानइ ॥

पर उअआरें धम्म न जोअइ ।

सो धण्णो निच्चित्ते सोअइ ॥ 10 ॥

माता जल्पति अपरो गुरुजनः ॥

मन्त्रि-मित्रे शिक्षयतः, कदापि एतद् नहि कर्म क्रियताम् ।

क्रोधेन राज्यं परिहृत्य, वप्रवैरं निजचित्ते ध्रियताम् ॥

लेखया राजा गणेशो गतः, सुरपुरम् इन्द्र-समाजम् ।

यूयं शत्रून् मित्राणि कृत्वा, भुञ्जध्वं तीरभुक्ति-राज्यम् ॥ 6 ॥

तृतीय-वेलायां मातृ-मित्र-मन्त्रि-महाजनेषु वदत्सु हृदय- गिरिकन्दरानिद्राणः पितृवैर-केसरी जागृतः । महाराजाधिराजः श्रीमत्कीर्त्तिसिंहदेवः कोपं-कोपं वक्तुं लग्नः-

अरे अरे लोकाः ! वृथा-विस्मृत-स्वामिशोकाः ! कुटिल-राजनीति चतुराः ! मम वचनम् आकर्णं कुरुत- ॥ 7 ॥

माता भणति ममत्वं प्रति, मन्त्री राज्यस्य नीतिम् ।

मम प्रियता एकां प्रति, वीरपुरुषस्य रीतिम् ॥ 8 ॥

मानविहीनं भोजनं, शत्रुणा दत्तं राज्यम् ।

शरणं प्रविष्टेन जीवनं, त्रीण्यपि कातरस्य कार्याणि ॥ 9 ॥

यः अपमानेन दुःखं न मनुते ।

दान-खड्गयोर्मर्म न जानाति ॥

परोपकारेण धर्मं न योजयति ।

स धन्यो निश्चिन्तं स्वपिति ॥ 10 ॥

माता एवं गुरुजन कह रहे हैं, तथा मन्त्री एवं मित्र सिखा रहे हैं कि कभी भी ऐसा काम मत करें कि 'क्रोध से राज्य को छोड़ कर पिता के वध का वैर अपने मन में रखे रहें', अर्थात् शत्रुता को न बढ़ाकर राज्य ले लेना ही उचित है । अपनी भाग्यरेखा के चलते राजा गणेश इन्द्र के पास देवलोक गए (इसमें किसी का दोष नहीं है, उनके भाग्य का दोष या गुण ही इसे जाने, क्योंकि वे इन्द्र के पास पहुँच चुके हैं) । इसलिए तुम शत्रु को मित्र बनाकर तिरहुत के राज्य का भोग करो ।

'एहु नहि कम्म' से सूचित होता है कि ऐसा कर्म करने का भयंकर परिणाम होगा । काव्यलिङ्ग अलंकार । माता [सं०] = माए (प्रा०, अव०, मै०) । शिक्षयति [सं०] = सिक्खबइ (प्रा०, अव०) - सिखबइ (मै०) । परिहृत्य [सं०] = परिहरिअ (प्रा०, अव०)- परिहरि (प्रा०मै०) । निज [सं०] = णिअ (प्रा०)- निज (अव०, प्रा० मै०) । लेखेन [सं०]- लेहेण (प्रा०)- लेहेन (अव०)- भाग्य रेखा (कपार में विधाता के द्वारा लिखित अक्षर) से, भाग्य-दोष से । समाज [सं०]- मिलन, समाज, (प्रा०मै०)- पास । कृत्वा [सं०]- करिअ (प्रा०)- कए (अव०,मै०) । भुञ्जह (अव०,प्रा०मै) ।। 6 ।।

दिन के तीसरे पहर में माता, मित्र, मन्त्री और महाजनों के बोलने पर, हृदय रूपी गुफा में सोया हुआ पितृवैर (पिता के मारे जाने से उत्पन्न शत्रुता) रूपी सिंह जाग उठा और महाराजाधिराज कीर्त्ति सिंह क्रोध से ललक कर बोलने लगे- अरे अरे लोगों ! व्यर्थ में स्वामी के शोक को भूलने वालों ! कुटिल राजनीति में चतुर आपलोग मेरा वचन ध्यान से सुनें ।

रूपक एवं परिणाम अलंकार । तृतीया [सं०] - तितिआ [प्रा०]- तेतुली [अव०]- तेतरि [मै०, परन्तु, अर्थ तीन पुत्र के बाद जन्मी बेटी]- तीसरी, बेला ['बेरू पहर'- मैथिली] । निद्राण [सं०]- सोया हुआ । वचन [सं०]- बअण [प्रा०]- वअन (अव०, प्रा० मै०) । आकर्णन [सं०]- आकण्ण (प्रा०, अव०) - अकानब (मै०)- ध्यान से सुनना ।। 7 ।।

माता ममता के कारण ऐसा बोल रही है (कि युद्ध करने से सुकुमार पुत्र की दुर्दशा हो सकती है, इसलिए शोक को बर्दाश्त करना ही उचित है), मन्त्री राज्य की नीति के कारण ऐसा बोल रहे हैं, पर मुझे तो एक ही चीज प्यारी है कि वीर पुरुष की रीति को अपनाकर युद्ध किया जाय ।

उल्लेख अलंकार । ममत्वं प्रति [सं०]- ममत्त पइ (प्रा०, अव०) । राज्यस्य [सं०]- रज्जस्स (प्रा०)- रज्जह (अव०) ।। 8 ।।

मान-विहीन भोजन, शत्रु के देने से प्राप्त राज्य और किसी के शरण में पैठ कर जीना, ये तीनों काम कायर के हैं ।

दीपक अलङ्कार । विहीन [सं०] - विहूण [प्र०] - विहून [अव०] । देलेँ [मै०]= देने से । प्रविष्ट [सं०] - पइट्ठ [प्रा०, अव०]- पैठ [हिन्दी] । कातर-कायर [प्रा०, अव०] - कायर [हिं०] ।। 9 ।।

जो व्यक्ति अपमान से दु:ख नहीं मानता है, दान और खड्ग (तलवार चलाने) का मर्म (रहस्य) नहीं जानता है और परोपकार के द्वारा धर्म को नहीं बढ़ाता है, वह धन्य (भाग्यशाली, वस्तुत: अभागा) व्यक्ति निश्चिन्त सोता है । (ये ही तीन कार्य सतत चिन्तनीय हैं, जिन्हें इनका प्रयोजन ही नहीं है, उन्हें कोई चिन्ता ही नहीं है ।)

दु:ख [सं०]-दुक्ख [प्रा० अव०, मै०], वर्ग द्वितीय वर्ण के द्वित्व मे प्रथम को वर्ग प्रथम हो जाना संस्कृत सहित सभी भारतीय भाषाओं की ध्वनिगत विशेषता है, यथा-कट्ठ (कठ्ठ नहीं), दुट्ठ (दुठ्ठ नहीं), अक्खर (अख्खर नहीं), दुक्ख (दुख्ख नहीं) । योजयति-जोअअइ-जोअइ-जोगाएब (मै०) = योजित करना या सुरक्षित रखना । धन्य-धाण्ण (प्रा०)- भाग्यवान् (काकु से बोलने पर विपरीत 'अभागा' आज भी मैथिली में प्रयुक्त होता है और संस्कृत में तो ऐसा अर्थ प्रसिद्ध ही है) ।। 10 ।।

(दोहा)

पर-पुरसारिस हञो गहञो, बोलए न जा किछु धाए ।
मोरहुँ जेट्ठ गरिट्ठ अछ, मन्ति-विअक्खण भाए ॥ 11 ॥

(षट्पद छन्द)

वप्पवैर उद्धरञो, न ञुण परिवण्णे चुक्कञो ।
सङ्गर साहस करञो, न ञुण सरणागत मुक्कञो ॥
दाने दलञो दारिद्द, न उण 'नहि' अक्खर भासञो ।
पान पाट वरु करञो, न उण नीसत्ति पआसञो ॥
अभिमानञे रक्खञो जीवसञो, नीच समाज न करञो रति ।
तेँ रउअ कि जाउ कि रज्ज मम, वीरसिंह भण अपनि मति ॥ 12 ॥

(रड्डा छन्द)

वेबि सम्मत मिलिअ तबे एक्क ॥
वेबि सहोअर सङ्ग, वेवि पुरिस सब गुण विअक्खण ।
णं बलभद्दह कण्ह, न उण वण्णिअउ राम-लक्खण ॥
राएह नन्दन पाञे चलु, अइस विधाता भोर ।
ता पेक्खन्ते कमन काँ, नअन न लग्गइ नोर ॥ 13 ॥
लोअ छड्डिअ अवरु परिवार ॥
रज्ज-भोग परिहरिअ, वर तुरङ्ग परिजन विमुक्किअ ।
जननि-पाञे पण्णविअ, जन्मभूमि को मोह छोड्डिअ ॥
धनि छोड्डिअ नवजोब्बना, धन छोड्डिओ बहूत ।
पातिसाह उद्देसेँ चलु, गएनराअ को पूत ॥ 14 ॥

बाली (मनवहला) छन्द

पाञे चलु दुअओ कुमर । हरि हरि सबे सुमर ॥
बहुत छाड़ल पाटि पाँतर । बसले पाओल आँतरे आँतर ॥ 15 ॥
जहाँ जाइअ जेहे गाञो । भोगाइ राजाक बड़ि नाञो ॥
काहु कापल काहु घोल । काहु सम्वल देल थोल ॥ 16 ॥
काहु पाती भेल पैठि । काहु सेवक लागु भैठि ॥
काहु देल रीन उधार । कहु करिअ नदीक पार ॥ 17 ॥
काहु उबहल भार-बोझ । काहु बाट कहल सोझ ॥
काहु आतित्थ विनअ करु । कतेहु दिने बाट सन्तरु ॥ 18 ॥

परं पुरुषार्थमहं गृह्णामि, वक्तुं न शक्यं किमपि प्रधाव्य ।
ममापि ज्येष्ठो गरिष्ठोऽस्ति, मन्त्रिविचक्षणो भ्राता ॥ 11 ॥
पितृवैरम् उद्धरामि, न पुनः प्रतिपन्नाच्च्युतो भवामि ।
सङ्गरे साहसं करोमि, न पुनः शरणागतं मुञ्चामि ॥
दानेन दलयामि दारिद्र्यं, न पुनः 'नहि' इत्यक्षरं भाषे ।
प्राणपातं वरं करोमि, न पुनः निःशक्तिं प्रकाशयामि ॥
अभिमानं रक्षामि जीवसमं, नीच-समाजे न करोमि रतिम् ।
तेन रभतां किं वा यातु राज्यं मम, वीरसिंहोऽभणद् आत्ममतिम् ॥ 12 ॥
द्वयोरपि सम्मतं मिलितं तदा एकम् ॥
द्वावपि सहोदरौ सङ्गे, द्वावपि पुरुषौ सर्वगुण-विचक्षणौ ।
नूनं बलभद्र-कण्णौं, न पुन र्वण्यतां राम-लक्ष्मणौ ॥
राज्ञो नन्दनौ पादेन चलितौ, ईदृशो विधाता अविज्ञः ।
तत्प्रेक्षमाणानां केषां नयनयो र्न लगति अश्रु ॥ 13 ॥
लोकस्त्यक्तः अवरः परिवारः ॥
राज्यभोगः परिहृतः वर-तुरङ्ग-परिजनाः विमुक्ताः ।
जननी-पादौ प्रणम्य, जन्मभूमेः मोहः त्यक्तः ॥

धन्या त्यक्ता नवयौवना, धनं त्यक्तम् प्रभूतम् ।
पातिसाहस्य उद्देशेन चलितः, गणेशराजस्य पुत्रः ।। 14 ।।
पद्भ्यां चलितौ द्वावपि कुमारौ । हरि हरि (इति) सर्वे स्मरन्ति ।।
प्रभूतानि त्यक्तानि पट्टिका-प्रान्तराणि ।
वसतिः प्राप्ता अन्तरे अन्तरे ।। 15 ।।
यत्र यातौ यस्मिन्नेव ग्रामे । भोगीशराजस्य बृहद् नाम ।।
कोऽपि कर्पटं, कोऽपि घोटम् । कोऽपि सम्वलमदात् स्तोकम् ।। 16 ।।
कोऽपि पङ्क्तीभूतः प्रविश्य । कोऽपि सेवकत्वेन लग्नः प्रभ्रश्य ।।
कोऽपि दत्तवान् ऋणोद्धारौ । कोऽपि कृतवान् नद्याः पारम् ।। 17 ।।
कोऽपि उदबहद् भारं बद्धम् । कोऽपि वर्त्म कथितवान् शुद्धम् ।।
कोऽपि आतिथ्यं विनयेन कृतवान् । कतिपयैः दिनैः वर्त्म सन्तीर्णम् ।। 18 ।।

मैं (इस प्रकार के निर्णय से) परम पुरुषार्थ को ग्रहण कर रहा हूँ ऐसा झट से कुछ कहा नहीं जा सकता, (यह तो अपना विचार व्यक्त कर रहा हूँ, निर्णय तो सबको मिलकर ही करना है) क्योंकि मुझ से भी बड़े भाई, मन्त्रणा (राजनीतिक परामर्श) करने में विद्वान् एवं सर्वोकृष्ट गौरवशाली उपस्थिति हैं (ये भी अपना विचार उपस्थित करें) ।

'हञो गहञो' में यमक अलंकार । पुरुषार्थ [सं०] - पुरसारिस (प्रा०, अव०) । अहम् [सं०] - हञो [अव०]- हञु [प्रा०, मै०] । गृह्णामि [सं०] - गेण्हेमि [प्रा०] - गहञो [अव०, प्रा० मै०] । ममापि [सं०] मोरहु (अव०, मै०) = मेरा भी । ज्येष्ठ-जेट्ठ-जेठ [मै०] । अस्ति [सं०] - अत्थि [प्रा०] - अच्छि वा अच्छ वा अछ [अव०] - अछि [मै०], 'अस्ति' का अछि से पूर्णतः अर्थ की समानता, सहायक क्रिया होना एवं अंशतः रूपसाम्य है, यथा - पढ़ैत अछि = पढ़ता है = पठत् अस्ति । भ्राता [सं०] - भाए [प्रा०, अव०, मै०] ।। 11 ।।

अब वीर सिंह अपनी सम्मति कह रहे हैं- मैं पिता के वैर का उद्धार करूँगा (बदला लूँगा) ही, न कि अपने किये निर्णय से चुकूँगा, रणभूमि में क्रूरता कर लूँगा, पर शरणागत होने पर भी शत्रु को न छोड़ूँगा

(अपितु मार ही डालूँगा), दान से दरिद्रता को दलित कर दूँगा, पर 'नहीं' ऐसा शब्द नहीं बोलूँगा, प्राणपात कर (जान गँवा) लूँगा, पर अपनी नि:शक्ति (अशक्तता, असमर्थता) नहीं प्रकाशित करूँगा । अभिमान (गर्व) को प्राण के समान रखूँगा (बचाऊँगा), इसलिए नीच समाज (दुराचारियों) से प्रेम (मेल) न करूँगा, भले ही मेरा राज्य रहे वा चला जाय ।

वीर रस । पुनः [सं०] - उण [प्रा०] ञुण [अब] । प्रतिपन्न [सं०] - पड़िवण्ण [प्रा०] - परिवण्ण [अब०] - चुकना [हि०] । साहस [सं०] = क्रूरता । मुक्त [सं०] - मुक्क [प्रा०, अव०] - मुक्कञो (उत्तम पुरुष का रूप) । दलयामि [सं०] - दलेमि [प्रा०] - दलञो [अव०] = कुचल कर समाप्त करता हूँ (इतना दान करूँगा कि दरिद्रता का नामों निशान न रहेगा) । भाष [सं०] - भास [प्रा०, अव०] - भाख [मै०] = बोलना । प्राणपात [सं०] - प्पाणपाअ [प्रा०]- पानेपाट [अव०] । नि:शक्ति [सं०] - णीसत्ति [प्रा०] - नीसत्ति [अव०] । प्रकाश [सं०]- पआस [प्रा०, अव०] । सम [सं०प्रा०] - सञो [अव०] = समान । 'अपनि' शब्द में ह्रस्व इकार स्त्रीप्रत्यय है ।। 12 ।।

तब दोनों भाइयों का विचार एक मिल गया और दोनों सहोदर साथ-साथ चल पड़े । दोनों पुरुष सभी गुणों में निपुण थे, मानिये कि बलभद्र के साथ जैसे कृष्ण हों, न कि ये दोनों राम-लक्ष्मण के समान वर्णित हो सकते हैं । (कीर्त्ति सिंह छोटे होने पर भी श्रीकृष्ण की तरह प्रधान शासक हुए और वीरसिंह बलरामजी की तरह परामर्शदाता, अनुमोदनकर्त्ता एवं केवल वीरभाव से मण्डित रहते थे । राम और लक्ष्मण मे ऐसी बाते न थीं, इसलिए उनकी उपमा न दी जा सकती है ।) राजा के पुत्र पैदल ही चल पड़े । आज विधाता ऐसा भोला (नासमझ, अविवेकी) हो गया । उनको देखते हुए किनके आँखों में आँसू न लग गये ? अर्थात् सभी रोने लगे ।

उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक एवं अर्थापत्ति अलंकार । द्वे अपि [सं०] - बेवि [अव०] = दोनों । नूनं [सं०]- णं [प्रा०, अव०] = निश्चित रूप से, जैसा कि । बलभद्रस्य [सं०]- बलभद्दस्स [प्रा०] बलभदह [अव०]=

बलभद्र का । कृष्ण-कण्ह [प्रा०, अव०]- कान्ह (हिं०, मै०] । राज्ञः-राएह=राजा का । पादेन-पाञे=पैदल । ईदृश [सं०]- ईरिस [प्रा०]- अइस [अव०]= ऐसा । भद्र [सं०]- भोल (प्रा०) - भोर (अव०, मै०) ।। 13 ।।

अपने लोगों (समाज) और परिवार को छोड़ दिया, राज्यभोग का परित्याग किया, उत्तम घोड़ों एवं सेवकों को छोड़ दिया, माता के चरणों में प्रणाम किया, जन्मभूमि के मोह को छोड़ा, नव यौवना स्त्री को छोड़ दिया और बहुत से धन को छोड़ दिया । इस तरह राजा गणेश्वर के पुत्र यवनाधिपति (बादशाह) के उद्देश्य से (उनसे मिलने) चल पड़े ।

लोक-लोग-ओअ । छर्दित=वमन किया-छड्डिअ (छोड़ दिया) या छोरित (छट+णिच्+क्त)-छोड्डिअ (अव०)- छोड़िअ (मै०) । धन्या-धन्ना-धनि (स्त्री) । प्रभूत-बहुत्त-बहुत ।। 14 ।।

दोनों राजकुमार पैदल ही चल पड़े, यह देख सभी दुःख से 'हरि हरि' स्मरण करने लगे । बहुत से गाँव से बाहर की छोटी बस्ती एवं निर्जन स्थानों की छोड़ा (पार किया) और बीच-बीच में बसे हुए स्थानों (वस्तियों) को भी पाया । जहाँ, जिसी गाँव जाते थे, वहाँ भोगीश्वर राजा (कीर्त्ति सिंह के पितामह) का बड़ा नाम (यश) था । इसलिए वहाँ इन्हें किसी ने कपड़ा दिया, किसी ने घोड़ा दिया, किसी ने थोड़ा-थोड़ा संवल (मार्ग व्यय हेतु धन) दिया, कोई पंक्ति में पैठ कर साथ हो गये, कोई सेवक बनने के लिए प्रतीक्षा करने लगे, किसी ने ऋण और उधार दिया, किसी ने सीधा रास्ता बतला दिया और किसी ने अतिथि सेवा और विनय (सत्कार) किया । इस तरह कितने ही दिनों में (बहुतों दिन पर) रास्ता को पार किया ।।

अनुच्छेद संख्या- 15 से 18 तक पूर्णतः मैथिली भाषा में है । द्वावपि [सं०]- दुबे वि [प्रा०] - बेवि [अव०] - दुअओ [मै०] । 'पाटि-पाँतर' युग्म शब्द है, जैसे-भार-बोझ, मैथिली में गाँव से दूर के छोटे टोले को पाटि [सं०-पट्टी=सिर्फ दो चार घर की बस्ती) एवं दूर तक जन शून्य मार्ग को 'पाँतर' [सं०प्रान्तर] कहते हैं । तुलनीय-पट्टीटोल, पाहीपट्टी, पटिहार शब्द । बसल=बसा हुआ स्थान, बस्ती । आँतर = थोड़े-थोड़े दूर

पर [सं०-अन्तर] । ग्राम-ग्गाम [प्रा०]- गाओँ [मै०]- गाँव [हि०] । भोगाइ = भोगीश्वर के लिए प्रयुक्त प्रचलित संक्षिप्त नाम, जैते - जीवेश्वर को जिबाइ और धीरेश्वर को धिराइ अभी भी कहा जाता है । बड़ि नाञो = बड़ा नाम, संज्ञा शब्द नाम का पर्यायवाची होने से नाञो का विशेषण स्त्रीलिङ्ग 'बड़ि' प्रयुक्त हुआ, अभी भी 'बड़ी टा नाओँ' कहा जाता है । स्थूल [सं०]- [प्रा०] = थोल [अव०] = पुष्ट, विपरीत लक्षणा से थोड़ा । भ्रष्ट-भट्ठ-भैठ = गँवाना (कीर्त्तिलता-द्वि० प०-'दिवस भइट्ठे'), प्रतीक्षा करना । ऋण-उधार युग्म शब्द है, ऋण=कर्जा, उधार=बाद में मूल्य देने का वादा करके समान लेना । शुद्ध [सं०]- सुद्ध, सोज्झ [प्रा०]- सोझ [मै०] = सीधा । उल्लेख अलंकार ॥ 15-18 ॥

(दोहा)

अबसओ उद्दम लच्छि बस, अवसओ साहस सिद्धि ।
पुरुस विअक्खण जं चलइ, तं तं मिलइ समिद्धि ॥ 19 ॥
तं खणे पेक्खिअ नअर सो, जोनापुर तसु नाम ।
लोअन केरा वल्लहा, लच्छी के विसराम ॥ 20 ॥

छन्द : (हरिगीतिका)

पेक्खिअउ पट्टन चारु मेखल, जञोन नीर पखारिआ ।
पासान कुट्टिम भीति भीतर, चूह उप्पर ढारिआ ॥
पल्लविअ कुसुमिअ फलिअ उपवन, चूअ चम्पक सोहिआ ।
मअरन्द-पान विमुद्ध महुअर, सद्द मानस मोहिआ ॥ 21 ॥
वकवार पोखरि बाँध साकम, नीक नीर-निकेतना ।
आवट्ट बट्ट विवट्ट बट्टहिं भुलिओ बड्डिओ चेतना ॥
सोपान तोरण, जन्त जोरण, जाल-गाओख खण्डिआ ।
धअ धवल-हर घर-सहसे पेक्खिअ, कनअ कलसहिं मण्डिआ ॥ 22 ॥
थल-कमल-पत्त-पमान नेत्तहिं, मत्त-कुञ्जर-गामिनी ।

चौहट्ट बट्ट पलट्टि हेरहि, सत्त्थ सत्त्थहि कामिनी ॥
कप्पूर कुङ्कुम गन्ध चामर, रअन कञ्चन अम्बरा ।
बेवहार मुल्लहिँ वणिक विक्कण, कीनि आनहि बब्बरा ॥ 23 ॥

अवश्यमेव उद्यमे लक्ष्मी र्वसति, अवश्यमेव साहसे सिद्धिः ।
पुरुष-विचक्षणो यत्र चलति, तत्र तत्र मिलति समृद्धिः ॥ 19 ॥
तत्क्षणे प्रेक्षितं नगरं तद् जोनापुरं तस्य नाम ।
लोचनस्य वल्लभं, लक्ष्म्याः विश्रामः ॥ 20 ॥
प्रेक्षितं पट्टनं, चारु-मेखलं, यद् नीर-प्रक्षलितम् ।
पाषाण-कुट्टिम-भित्त्या अभ्यन्तरे, सुधया उपरि धारितम् ।
पल्लवित-कुसुमित-फलितोपवन-चूत-चम्पक-शोभितम् ।
मकरन्द-पान-विमुग्ध-मधुकर-शब्द-मानस-मोहितम् ॥ 21 ॥
वक्रद्वार-पुष्करिणी-बन्ध-सङ्क्रम-निकाम-नीर-निकेतना ।
आवर्त्त-वर्त्म-विवर्त्त-वर्त्मभिः भ्रमति बृहती अपि चेतना ॥
सोपान-तोरण-यन्त्रजोटन-जाल-गवाक्षखण्डिका-युक्तम् ।
ध्वज-धवल-गृहं गृहसहस्रे प्रेक्षितं कनक-कलशैर्मण्डितम् ॥ 22 ॥
स्थल कमल पत्र प्रमाण नेत्रैः मत्तकुञ्जर गामिनी ।
चतुर्हट्ट-वर्त्मनि परावृत्य प्रेक्षते सार्थ-सार्था कामिनी ॥
कर्पूर-कुङ्कुम-गन्ध-चामर-रत्न-काञ्चाम्बराणि ।
व्यवहरन्ति मूल्यैः वणिजो विक्रीणन्ति, क्रीत्वा आनयन्ति वर्ब्वराः ॥ 23 ॥

उद्यम में लक्ष्मी अवश्य वसती है, साहस से सिद्धि अवश्य मिलती है, चतुर पुरुष जहाँ जहाँ जाते हैं, वहाँ वहाँ उन्हें सम्पत्ति मिलती है । (और कीर्त्तिसिंह चतुर उद्यमी और साहसी थे, इसीलिए उन्हें सब साधन प्राप्त होते गये) ।

इस नीति निरूपण से राजा में उत्कृष्टता प्रतीत हो रही है । अवश्य-अवस्स-अवसओ । लक्ष्मी-लच्छी-लच्छि ॥ 19 ॥

उसी काल में उसने इस नगर को देखा, जिसका नाम जौनपुर था, जो आँखों का प्रिय एवं लक्ष्मी का विश्राम-स्थल था । (अति सुन्दर एवं ऐश्वर्य से भरा था-यह व्यंग्यार्थ हुआ) ।

तत्क्षणे (सं०)- तक्खणे (प्रा०)- तं खणे (अब०)- तखने (मै०) । लोचन-लोअण-लोअन = आँख । 'केरा' सम्बध चिह्न है ।। 20 ।।

उन्होंने उस नगर को देखा जो सुन्दर कमरकस (के समान चारों ओर गोलाकार जलपूर्ण गड्ढे) से युक्त है, जल से सिंचित है, उसके भवन की भित्ति (दिवाल) के भीतर पत्थर का फर्श बना है और ऊपर चूना से पुता है, पल्लव, फूल एवं फल से भरे उपवन में आम एवं चम्पा के वृक्ष शोभित हैं जो फूलों के पराग से मँते हुए भौंरों के शब्द से मन को मोह रहे हैं ।

यो [सं०यः] - जो, जञोन [अव०] जौन [हि०] । प्रक्षालित [सं०] - पक्खालिद [प्रा०] - पक्खारिअ [अव०] - पखारिअ [मै०] । सुधा = छुहा = चूह = चूना । ढारिअ [मै०] = उड़ेलना ।। 21 ।।

वक्रद्वार, पोखरा, बाँध एवं सङ्क्रम (सेतु, पुल) से युक्त है, उत्तम जलगृहों से युक्त है, इसके वायें मुड़ने वाले एवं दायें मुड़ने वाले रास्ताओं में बड़ी-बड़ी बुद्धि भी भूल कर बैठती है, विभ्रान्त हो जाती है, सोपान (सीढ़ी), तोरण (बड़ा द्वार), यन्त्रनल (फब्बारा), जङला (जालीदार खिड़की) एवं खण्डिका (खिड़की, लघुद्वार) से युक्त है, वहाँ ध्वजा से युक्त एक धवलगृह (उजला राजप्रासाद) हजारों घरों के बीच स्वर्णकलस से शोभित है ।

वक्रद्वार [सं०]-बक्कदुआर [प्रा०]-वकबार [अव०] = टेढ़ा कर मन्दिर के आकार का प्रधानद्वार । पुष्करिणी [सं०] - पोक्खरि [प्रा०] -पोखरि [मै०] । संक्रम-संक्कम-साकम=पुल । नीक [मै०] = उत्तम । वर्त्म [सं०] - बट्ट [प्रा०] - बाट [मै०] = रास्ता । गवाक्ष [सं०] गाओख- झरोखा । धवलगृह-धवलहर-धओरहर [मै०] ।। 22 ।।

मतबाले हाथी सी चाल वाली झुण्ड के झुण्ड कामिनियाँ स्थल-कमल के पत्रों के आकार की आँखों से चौहटिया (चौक का बाजार, मुख्य

बाजार) की राह पर मुड़ कर देखती हैं । कपूर, कुंकुम, सुगन्धित द्रव्य, चँवर, आँखों का काजल और वस्त्रों को बनियाँ लोग व्यवहार-मूल्य (प्रचलित दर) पर बेचते हैं और गृहस्थ लोग खरीद लाते हैं ।

परिवृत्य [सं०] - पलट्ट [प्रा०] = पीछे मुड़ना या लौटना । हेरब [मै०] = देखना । सार्थ [सं०] - सत्थ [प्रा०] = झुण्ड । क्रीण (सं०)- कीन [मै०] = खरीदना । विक्रीण [सं० - विक्कण [प्रा०] - विकिनब [मै०] = बेचना । वर्वट (सं०)- वव्वट (प्रा०, अव०) - वावड़ (अव०) = गृहस्थ । उपमा अलंकार ॥ 23 ॥

सम्मान, दान, विवाह, उच्छब, गीअ नाटक कब्बही ।
आतित्त्थ विनअ विवेक कौतुक, समय पेल्लिअ सव्वही ॥
पञ्जटइ पेल्लइ हसइ हेरइ, सत्त्थ सत्त्थहि जाइआ ।
मातङ्ग तुङ्ग तुरङ्ग ठट्ठहि, उवटि बट्ट न पाइआ ॥ 24 ॥

(गद्य)

अवरु पुनु–

ताहि नगरन्हि करो परिठव ठवन्ते, शतसंख्य हाट-बाट भमन्ते, शाखानगर शृङ्गाटक आक्रीडन गोपुर वकहटी बलभी वीथी अटारी ओवारी रहट घाट कौसीस प्राकार प्रभृति पुर-विन्यास-कथा कहओ का, जनि दोसरी अमरावतीक अवतार भा, ॥ 25 ॥

हाट करेओ प्रथम प्रवेश, अष्टधातु-घटना टाङ्कार, कँसेरी पसराँ कांस्य-क्रेङ्कार, प्रचुर-पौरजन-पद-सम्भार-सम्भिन्न, धनहटा-सोनहटा-पनहटा- पक्वान्नहटा-मछहटा करेओ मुखरव-कथा कहन्ते होइअ झूठ, जनि गम्भीर-गुर्गुरावर्त्तकल्लोल-कोलाहल कान भरन्ते मर्यादा छाड़ि महार्णव ऊठ ॥ 26 ॥

सम्मान-दान-विवाहोत्सव-गीत-नाटक-काव्यैः ।
आतिथ्य-विनय विवेक कौतुकैः समयं प्रेरयन्ति सर्वे ।।
पर्यटन्ति प्रेरयन्ति हसन्ति प्रेक्षन्ते सार्थं सार्थं गच्छन्ति ।
मातङ्ग तुङ्गतुरङ्ग संघट्टैः उद्वर्त्मनि वर्त्म न प्राप्नुवन्ति ।। 24 ।।

अपरं पुनः-

तस्य नगरस्य प्रतिष्ठापनं स्तुवतां, शतसंख्य-जनानां हट्ट- वाटेषु भ्रमतां संघं, शाखानगर-शृङ्गाटकाक्रीड़न-गोपुर-गोहट्ट-गोपुर-वक्रहट्ट-वलभी-वीथी- अट्टालिकाऽपवरकाऽरघट्ट-घट्ट कम्बुशीर्ष प्राकार प्रभृति-पुरविन्यास-कथां कथयानि काम् ? मन्ये, द्वितीयाया अमरावत्या अवतारोऽभूत् ।। 25 ।।

अपि च-

हट्टे कृतः प्रथमं प्रवेशः । अष्टधातु-घटना-टाङ्कारः, कांस्यकार-प्रसारे कांस्य-क्रेङ्कारः, प्रचुर-पौर-जन-पदसम्भार-सम्भिन्न- धान्यहट्ट-शणहट्ट-पर्णहट्ट-पक्वान्नहट्ट-मत्स्यहट्टानां मुखरव- कथाश्च कथ्यमानाः भवन्ति यथा मिथ्या, मन्ये, गम्भीर-गुर्गुरावर्त्त- कल्लोल-कोलाहलं कर्णे भरन् मर्यादां छित्वा महार्णव उत्थितः ।। 26 ।।

सब लोग सम्मान, दान, विवाह, उत्सव, गीत, नाटक और काव्य से तथा अतिथि सत्कार, विनय, विवेक और खेल-तमाशे से समय बिताते हैं, झुण्ड के झुण्ड लोग भ्रमण करते, खेलते, हँसते, देखते जाते हैं । बहुत उँचे हाथी एवं घोड़ों की भीड़ में उल्टा रास्ता पकड़े जाने पर सही रास्ता को नहीं पा सकते हैं (भुतला जाते हैं) । प्रेर्य (सं०) = पेल्ल (प्रा०)-पेल (प्रा०मै०) = प्रेरित करना । सार्थ (सं०) - सत्त्थ = झुण्ड । ठट्ठ (अव०मै०) = झुण्ड, एकत्रित । उद्वर्त्म (सं०) - उबट्ट (प्रा०) - उवट (मै०) = उल्टा रास्ता, बेरास्ता । उबटि (मै०) = बेरास्ता होकर ।। 24 ।।

और भी, नगर (जिसे राजाने देखा) का वर्णन है- उस नगर (जौनपुर) की संरचना की प्रशंसा (स्तुति) करते हुए सैकड़ों संख्या में

लोग हाटों की राह पर घूम रहे हैं, शाखानगर (उपनगर, मुहल्ला), चौराहा, अखाड़ा, नगरद्वार, गोल बाजार, गली, बलभी (छत पर बना छोटा प्रकोष्ठ), अनेक महल के भवन (अट्टालिका), कोहवर घर (दम्पति शयन कक्ष), रहट [कूप से पानी निकालने का चरखानुमा यन्त्र], घाट, कँगूरा, चहारदिवाली आदि नगर वसाने की रीति (वर्णन) क्या कहूँ, जैसे (इस नगर के रूप में) दूसरी अमरावती इन्द्रनगरी का ही अवतार हुआ हो ।

'ठव' की आवृत्ति से यमक । अर्थापत्ति एवं उत्प्रेक्षा अलंकार । प्रतिष्ठापन [सं०-प्रति+स्थापन]-परिठ्ठवणा [प्रा०]- परिठव वा परिठम [अब०] = सुव्यवस्थित रूप से स्थापित होना । स्थाप्यमान-ठबन्त [प्रा०, अव०] । 'शत-संख्य' शब्द लोगों के लिए आया है, हाटों पर प्रथम प्रवेश राजकुमार आगे करेंगे, अत: 'भमन्ते' का अन्वय लोगों से करना ही उचित है । शृंगाटक=वह स्थान जहाँ से तीन रास्ते निकलते हैं । बकहट्टी=टेढ़ी गोलाकार हटिया । अपवरक [सं०]- अववर [प्रा०] । रहट [अव०, हि०, मै०] । घट्ट [सं०, प्रा०] = घाट [मै०], तालाब के किनारे नहाने का चबूचरा या काष्ठ । कपिशीर्ष [सं०] कविसीस [प्रा०]- कञुसिस वा कौसीस [अव०] = दीवाल के उपर बनी बुर्जियाँ । कथा = वर्णन । अमरावती = इन्द्र की नगरी । अभूत् [सं०]- भा [अव०] हुआ ।। 25 ।।

और भी- सबसे पहले दल सहित राजकुमार ने उस नगर के हाट पर प्रवेश किया । वहाँ आठों धातुओं (सोना, चान्दी, ताम्बा आदि) के सामान बनाने से टन-टन शब्द हो रहे थे, कँसेरी [कांस्यकार] के कार्यस्थल पर कांसे के बर्त्तन बनने का क्रें क्रें शब्द हो रहा था, अत्यधिक पुरवासीजनों के पैरों के भार से युक्त, धान के हाट, पटसन के हाट, पान के हाट, पकमान के हाट और मछली के हाटों के मुखशब्द एवं कहे जाने वाले जोरदार शोरगुल (हाटों पर असंख्य लोगों के जोर जोर से बोलने के शब्द) जो हो रहे थे, लगते थे झूठ ही है (यह लोगों के शब्द नहीं हैं), शायद गम्भीर गुर्गुर शब्द, भँवर एवं तरंग भरे कोलाहल से कानों को भरते हुए, अपनी मर्यादा (तट से ऊपर न उठने) को छोड़कर महासागर उछल पड़ा हो ।

अपह्नुति एवं उत्प्रेक्षा अलंकार का संकर है । करेओ=कृतः, किया । घटना (सं०)=निर्माण, घड़ना, गढ़ना । टांकार=टां शब्द । कांस्यकार–कँसआर–कंसार–कँसार–कँसेरी [मै०] । प्रसर [सं०]– पसर [प्रा०, अव०]– पसार, पसरा [मै०]=गृहस्थोपयोगी वस्तुओं एवं उनके बनाने के औजारों को पसार (फैला) कर काम करने का स्थान । पसारी (मै०)=ऐसे व्यवसायी यथा–कुम्हार, बढ़ई, धोबी, कँसेरा आदि । सम्भिन्न (सं०) = मिला हुआ ।

अभी भी मैथिली में बहुत जोर से ज्यादा वोलने वाले को 'माछ बेचने वाला' कहकर व्यंग्य किया जाता है । इन्हीं हाटों पर शोरगुल होता है । 'सोनहट्टा, = पटसन की हटिया, न कि स्वर्ण का हाट, क्योंकि सोना बाजार की अपेक्षा पटसन की हाट पर अधिक शोरगुल होता है । मुखरव (सं०) = मुखों से निकले शब्द । कथा (सं०, मै०) = वर्णन । जनि (मै०) = शायद । गुर्गुर (ऐसा ध्वनि) आवर्त = भँवर ॥ 26 ॥

मध्याह्ने करी बेला सम्मद्द साज, सकल पृथ्वीचक्र करेओ वस्तु बिकाए आए बाज । मानुस करी मीसि पीसि चर, आँगे आँग उँगर । आनक तिलक आन काँ लाग, पात्रहु तह परस्त्रीक बलया भाँग, ब्राह्मणक यज्ञोपवीत चाण्डाल–हृदय लूर, वेश्यान्हि करो पयोधर जतीक हृदय चूर ॥ 27 ॥

(वाली छन्द)

घने सञ्चर घोर–हाथि । बहुल बापुर चूरि जाथि ।
आवर्त्त–विवर्त्त रोल हो । नअर नहि नरसमुद्र ओ ॥ 28 ॥

(षट्पद छन्द)

बहुले भाँति बनिजार, हाट हिण्डए जबे आबथि ।
खने एके सबे विक्कणथि, सबे किछु किनइते पाबथि ॥
सब दिस पसरु पसार, रूप जोबण गुणे आगरि ।
वाणिनि बीथी माँडि बइस, सए–सहसहि नागरि ॥

सम्भासणे किच्छु बेआज कइ, ता सञो कहिनी सब्बे कह ।
बिक्किणइ बेसाहइ अप्पसुखे, डिट्ठि कुतूहल लाभ रह ॥ 29 ॥

मध्याह्नस्य बेलायां सम्मर्दः सज्जितः, सकल-पृथ्वीचस्य वस्तूनि विक्रेतुम् आगत्य (विक्रेतारः) वदन्ति । मानुषस्य मिश्रणं (मेलनं) संपिष्य चरति, अङ्गैः अङ्गानि उद्वर्त्तितानि भवन्ति । अन्यस्य तिलकम् अन्यस्य (अङ्गे) लगति । सुपात्रेणापि परस्त्रीणां वलया भग्नाः । ब्राह्मणस्य यज्ञोपवीतं चाण्डालस्य हृदये लुठति । वेश्यानां पयोधरः यतेः हृदयं चूर्णयति ॥ 27 ॥

घने (सम्मर्दे) सञ्चरन्ति घोटक-हस्तिनः । बहुला वराकाः चूर्णिता जायन्ते ।
आवर्त्त-विवर्तैः कौलाहलो भवति । नगरो नहि, नरसमुद्र एषः ॥ 28 ॥

बहुल-प्रकारका वाणिज्यकराः, हट्टं हिण्डितुं यदा आयान्ति ।
क्षणेनैकेन सर्वं विक्रीणन्ति, सर्वे किञ्चित् क्रेतुं प्राप्नुवन्ति ॥
सर्वदिक्षु प्रसृतः प्रसारः, रूप-यौवन-गुणागाराः ।
वाणिन्यः वीथीं संमण्ड्य उपविष्टाः शत-सहस्रं नागर्यः ॥
सम्भाषणे किञ्चिदपि व्याजं कृत्वा, तया सह कथां सर्वः कथयति ।
विक्रीणाति क्रीणाति वा आत्मसुखेन, दृष्टिकुतूहलं लाभस्तिष्ठति ॥ 29 ॥

मध्याह्न (दिन के दोपहर, मध्य दिन)के समय में भीड़ सज्जित हो जाती है, पृथ्वी मण्डल के सभी वस्तुओं की विक्री के लिए आकर बेचनेवाले जोर से बोलते हैं (धनियाँ लो, जीरा लो), मनुष्यों के झुण्ड एक दूसरे को पीसते चलते हैं, (भीड़ में) एक दूसरे के अङ्ग से अङ्ग मले जाते हैं, दूसरे (अन्य) का तिलक दूसरे को लग जाता है, सच्चरित्र (सुपात्र) के द्वारा भी परायी स्त्री का बाला टूट जाता है, ब्रह्मण का जनेउ चण्डाल के हृदय पर लोटता है और वेश्याओं के स्तन संन्यासियों के हृदय पर दब जाते हैं [भीड़ में ऐसा होना स्वाभाविक है] ।

स्वभावोक्ति एवं विरोधाभास अलंकार । मानुष [सं०] - मानुस [प्रा०] = मनुष्य । मिश्रिति [सं०] - मिस्सि- [प्रा०]- मीसि [अव०, मै०] = मेला, [लोकक मीसि पड़ैत अछि'- मै०] । पिष् [सं०] पिस

[प्रा०, मै०] । चर=चलना । अङ्ग (सं०)- आङ्ग (मै०), 'आङ उङारब' (मै०)- देह में उबटन लगाना । अन्य (सं०)- अण्ण (प्रा०)- आन (मै०) । पात्र (सं०) = उत्तम व्यक्ति । पात्रहु तह (मै०) = सभ्य व्यक्ति से भी । लुठ (सं०)- लुड (प्रा०)- लूर (अव०)- नुरिआएब (मै०) । यह अंश मैथिली का है । करी, सम्मद, करेओ, वेश्यान्हि शब्द अवहट्ठ के हैं ।। 27 ।।

सघन लोगों के बीच घोड़े और हाथी चलने लगते हैं, जिनसे बहुतों दुर्बल व्यक्ति कुचले जाते हैं । लोगों के जाने एवं लौटने के कारण कोलाहल होता है, जिससे लगता है कि यह नगर नहीं, अपितु मनुष्यों का समुद्र ही है ।

स्वभावोक्ति एवं अपह्नुति अलंकार । घोट [सं०] - घोड़ [प्रा०] - घोर [अव०] । व्याकुल [सं०] वाउल [प्रा०] - बाउर, बापुर [अव०] अथवा व्यापृत [सं०] - वप्पुड़ [प्रा०]- बापुर [अव०] = बेचारा । आवर्त्त-विवर्त्त [सं०] = दायें-वायें आना जाना । रोल [अव०] - घोल [मै०] = हल्ला । यह अंश मैथिली में है ।। 28 ।।

बहुतों तरह के बनियें लोग जब हाट घूमने आते हैं, तो एक ही क्षण में अपने सभी सामानों को बेच लेते हैं और वे सभी कुछ सामान खरीद भी पाते हैं । वहाँ सभी ओर पसार (बेचने के लिए सामानों को क्रमबद्ध हटा हटा कर रखना) फैल गये हैं । रूप, यौवन और गुणों से भरी हुई सैकड़ों हजारों बनियाइन (बेचनेवाली) नागरियाँ बाजार की गली को मण्डित (शोभित) करती हुई बैठती हैं । बातें करने के लिए कुछ बहाना बनाकर उन नागरियों से सभी लोग गप-शप करते हैं । वे बेचते और खरीदते तो अपनी सुविधा के अनुसार हैं, पर उन्हें दृष्टि कुतूहल (दर्शन-सुख) मुनाफा में प्राप्त होता है ।

औत्सुक्य भावध्वनि । शृङ्गार रस । हाट की चलती, नारियों की वाणिज्यपटुता एवं लोगों का मोहित होकर उसी की दूकान से सामान लेने का स्वाभाविक वर्णन । भाँति [अव०] = तरह । हिण्ड [सं०] = घूमना, भ्रमण करना । विक्रीण [सं०] - विक्किण (प्रा०)- विक्कण (अव०) - विकिनथि [मै०] = बेचना । क्रीणाति [सं०] - किणइ [प्रा०] - किनइत

[मै०] = खरीदना। गुण आगरि (मै०) = गुणों का खजाना। मण्ड (सं०) – माण्डि (अव०) = मण्डित कर। शत (सं०) – सअ (प्रा०) – सए (मै०) = सौ। व्याज (सं०) – बेआज (अव०, मै०) = बहाना करना। तया समं (सं०) – ता सञो (मै०) = उसके साथ। यह अंश मैथिली में है, हिण्डए, माँडि, अप्प शब्द अवहट्ठ के हैं ॥ 29 ॥

(दोहा)

सब्बउँ के वारिज-नयन, तरुणी हेरहि वङ्क ।
चोरी पेम पिआरिओ, अपने दोस ससङ्क ॥ 30 ॥

(रड्डा छन्द)

बहुल बम्हण बहुल काअत्थ ॥
राजपुत्त-कुल बहुल, बहुल जाति मिलि बसइ चप्परि ।
सब्बे सुअन, सबे सधन, नअर राअ, सबे नअर उप्परि ॥
जं सबे मन्दिर देहली, धनि पेक्खिअ सानन्द ।
तसु केरा मुखमण्डलहि, घरे घरे उग्गहि चन्द ॥ 31 ॥

(गद्य)

एक हाट करेओ ओल, औकी हाट करेओ कोल । राजपथक सन्निधान चञ्चरन्ते अनेक देखिअ वेश्यान्हि करो निवास, जन्हि के निर्माणे विश्वकर्महु भेल बड़ प्रयास ।

अवरु वैचित्री कहञो का ? जन्हिक केशधूप-धूम करी रेखा ध्रुवहु उप्पर जा। काहु काहु अइसनेञो सङ्क, तकरे काजरे चान्द कलङ्क ॥ 32 ॥

(रड्डा)

लज्ज कित्तिम, कपट तारुन्न ॥

धननिमित्ते धर पेम, लोभेँ विनअ, सोभागे कामन ।
विनु सामिञ सिन्दूर, परामरिस परिचय अपामन ॥
जं गुणमन्ता अलहना, गौरव लहइ भुअङ्ग ।
वेसा- मन्दिर धुअ बसइ, धुत्तह रूअ अनङ्ग ॥ 33 ॥

सर्वमपि वारिजनयनाभ्यां तरुणी प्रेक्षते वक्रम् ।
चौर्यप्रेमप्रियापि स्वकेन दोषेण सशङ्का ॥ 30 ॥
बहुला ब्राह्मणाः, बहुलाः कायस्थाः ॥
राजपुत्रकुलानि बहुलानि, बहुलजातिभि र्मिलित्वा वसन्ति तत्परतया।
सर्वे सुजानाः, सर्वे सधनाः, नगरे राजन्ते, सर्वे, नगरे उपरि ॥
यत्र सर्वमन्दिरदेहल्यां धन्याः प्रेक्षिताः सानन्दाः ।
तासां मुखमण्डलेन गृहे-गृहे उदेति चन्द्रः ॥ 31 ॥

एकस्या हट्टाया अवतरः, अवरस्या हट्टायाः क्रोडः (प्राप्तः) । राजपथस्य सन्निधाने सञ्चरन्तौ अनेकान् दृष्टवन्तौ वेश्यानां निवासान्, येषां निर्माणे विश्वकर्मणोऽपि अभूत् बृहत् प्रयासः ।

अवरां वैचित्रीं कथयानि काम् ? यासां केशधूप-धूमस्य रेखा ध्रुवादपि उपरि याता । कोऽपि कोऽपि एतादृशमपि शङ्कते-तस्या एव कज्जलेन चन्द्रे कलङ्कः ॥ 32 ॥

लज्जां कृत्रिमां, कपटतारुण्यम् ॥
धननिमित्तं धरति प्रेम, लोभेन विनयं, सौभाग्यं कामनया ।
विना स्वामिसिन्दूरं परामृशति परिचयेन अपावनी ॥
यत्र गुणवन्तः अलभमानाः गौरवं लभते भुजङ्गः ।
वेश्यामन्दिरे ध्रुवं वसति धूर्त्तस्य रूपे अनङ्गः ॥ 33 ॥

वहाँ युवती, सबों को अपने कमल के समान आँखों से तिरछी (कटाक्ष कर) देखती है, गुप्त प्रेम को चाहने पर भी अपने ही दोष से वह चौंकी रहती है (कि कहीं कोई नजर मिलाते देख न ले) ।

सब्बउँ के = सबहुँ केँ [मै०] = सबों को । वारिजनयन = कमल सदृश आँखों से । वक्र [सं०] - वंक (प्रा०) - बाँक [मै०] । प्रियतरा [सं०] - पिआरी [प्रा०] । रूपक अलंकार । यह अंश भी मैथिली है ॥ 30 ॥

अब नगर के हिन्दू-मुहल्ले का वर्णन करते हैं- बहुतों ब्राह्मण, बहुतों कायथ, बहुतों राजपूत वंश के लोग और बहुत से अन्य जाति के लोग भी मिलकर तत्परता पूर्वक (या जगह को आक्रान्त कर या भरकर) बसे हुए हैं । सभी सज्जन हैं, सभी धनवान् हैं, सभी नगर में शोभित हो रहे हैं और सभी नगर में ऊपर ही हैं (कोई किसी से नीचा नहीं है) । जहाँ सभी भवनों के द्वार पर स्त्रियाँ सानन्द दीख पड़ती हैं, उन सबों के मुखमण्डल से घर-घर चन्द्रमा उगे हुए हैं ।

परिणाम अलंकार । यवनराज्य में जातिगत ऊँचे-नीचे का भेदभाव नहीं था । आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी, सभी सभ्य थे एवं स्त्रियाँ परम सुन्दरी थीं । ब्राह्मण-बम्भण-बम्हण-बम्भन बाभन [मै०] । वसति [सं०]-बसइ [मै०], बइस (बैठना) पाठान्तर है, पर यहाँ बसना ही उपयुक्त है । तत्पर [सं०]- तप्पर [प्रा०]- चप्पर [अव०] अथवा चप्प (प्रा०)-चापना, दबाना, आक्रमण करना, पास जाना । केरा (अव०)- केर (मै०) = का ॥ 31 ॥

एक हाट का अन्त (पार) कर दूसरी हाट में प्रवेश किया । राजमार्ग के समीप चलते हुए उनलोगों ने वेश्याओं के अनेक निवास-भवनों को देखा, जिनके निर्माण में विश्वकर्मा (भवननिर्माण आदि में निपुणतम एक देवता) को भी बड़ा प्रयत्न करना पड़ा होगा ।

और अधिक विचित्रता (आश्चर्य की बात) क्या कहूँ ? जिन वेश्याओं के केश-संस्कार हेतु किये गये धूप के धुआँ की रेखा ध्रुवतारे से भी ऊपर जाती है, कोई-कोई तो ऐसी भी शङ्का करते हैं कि उसी धूप की काजल लगने से चन्द्रमा में काला धब्बा है ।

अतिशयोक्ति एवं उत्प्रेक्षा अलंकार । करेओ=(सम्बन्ध चिह्न)- अवतर (सं०)=उतार,-अवअर (प्रा०)-ओर (मै०)=अन्त, छोड़=ओल [अव०]

। अवरक=अवर [सं०]-अओका, अओकी, औकी [अव०, स्त्री०]=दूसरी, "अओका दिस जमराअ चरू" विद्यापति के अवहट्ठ गीत। क्रोड [सं०]-क्कोड [प्रा०]-कोल [अव०]-कोर, कोरा [मै०]=गोद । यह अंश मैथिली में है । करेओ, औकी शब्द अवहट्ठ के हैं । एतत्सम [सं०]-अइसन [अव०, मै०], अइसनेञो= ऐसा भी, ओ [ञे] का अर्थ मैथिली में होता है-'भी' ।

उस नगर में एक हाट समाप्त होता था कि दूसरा हाट शुरू हो जाता था, वेश्याओं की मुहल्ला में उनके भवन इतने कलात्मक थे कि उनका निर्माण मनुष्य से होना असम्भव लगता था, अतः मानना पड़ता है कि ये विश्वकर्मा के द्वारा बनाये गये होंगे, जिसमें उन्हें भी बहुत परिश्रम पड़ा होगा।

केश को कलात्मक बनाने के लिए धूमन के धूप का सघन धुआँ लगाया जाता था । मानिए कि उसी धूप की धुआँओं के टकराने से चन्द्रमा पर काजल बन गया, अतएव उस पर आज भी काजल का काला दाग दिखायी पड़ता है ।। 32 ।।

उन वेश्याओं की लज्जा बनावटी और जवानी (यौवन) कपटपूर्ण (ढली-हुई-जवानी में भी रंग ढंग देकर नयी नवेली बनी हुई) है । धन के लिए ही परपुरुष से प्रेम करती है, लोभ से विनय और धन की कामना को ही सौभाग्य मानती है, स्वामी के बिना ही शोभा हेतु सिन्दूर लगाती है और परिचय होने पर ही अपवित्र समझी जाती है (विवाहिता न रहने पर भी सिन्दूर लगाती है और अत्यन्त साफ सुथरा रहने से देखने में परम पवित्र रहने पर भी यह वेश्या है ऐसा जानने पर ही सामान्य जनों के लिए अपवित्र हो जाती है) ।।

जहाँ गुणवान् उपेक्षित एवं व्यभिचारी (लम्पट) गौरव पाते हैं, ऐसे वेश्यालय में कामदेव निश्चय ही धूर्त्त के रूप में रहता है ।

स्वभावोक्ति, विरोधाभास एवं रूपक अलंकार । अलभमाना [सं०]-अलहना [अव०]=लाभ न पानेवाले । भुजङ्ग [सं०]-भुजंग [प्रा०]= लम्पट, विट ।। 33 ।।

(गद्य)

तान्हि वेश्यान्हि करो सुखसार मण्डन्ते, अलका-तिलका-पत्रावली खण्डन्ते, दिव्यम्बर पिन्धन्ते, उभारि-उभारि केसपास बन्धन्ते, सखिजन प्रेरन्ते, हसि हेरन्ते, सआनी, लोनुमी, पातरी, पतोहरी, तरुणी, तरट्टी, बेन्ही, बिअक्खणी, परिहास-पेसली सुन्दरी सार्थ जबे देक्खिअ, तबे मन कर चारि पुरुषार्थहिं तेसराँ लागि तीनू उपेक्खिअ ॥ 34 ॥

तन्हिक केस कुसुम बस, जानि मान्यजनक लज्जावलम्बित मुखचन्द्र-चन्द्रिका करी अधओ-गति देखि अन्धकार हस । नअनाञ्चल सञ्चारे भ्रूलता भङ्ग, जनि कज्जल-कल्लोलिनी करी वीची विवर्त्त बड़ी बड़ी सफरी तरङ्ग । अतिसूक्ष्म सिन्दूर-रेखा निन्दन्ते पाप, जनि पञ्चसर करो पहिल प्रताप । दोखे हीनि, माझे खीनि, रसिके आनलि जूआँ जीनि । पयोधर केर भारेँ भाँगए चाह, नेत्र करे तितीयभागे तीनू भुवन साह । सँसरे बाज, राअन्हि छाज । काहु होअ अइसनो आस, कइसे लागत आँचर बतास । तान्हि करी कुटिल-पटाक्षच्छटा सदर्प-कन्दर्प- शरश्रेणी जञो नागरन्हि काँ मन गाड़, गोबोलि गमारन्हि छाड़ ॥ 35 ॥

तासां वेश्यानां (मध्ये) सुखशालां मण्डयन् आलक्तका- तिलक-पत्रावली: खण्डयन् दिव्याम्बारं पिन्धन्, उद्धार्य उद्धार्य केशपाशं बध्नन्, सखीजनं प्रेरयन्, हसित्वा पश्यन्, सज्ञाना लावण्यमयी-पत्रला (सुकृशा) पत्रोदरी-तरुणी-तरंगिता-विन्ना-विचक्षणा-परिहासपेशला- सुन्दरी-सार्थो यदा प्रेक्षित: तदा मन: करोति (विचारयति) चतु:पुरुषार्थेषु तृतीये लगित्वा त्रयोऽपि उपेक्ष्या: ।। 34 ।।

तासां केशे कुसुमानि वसन्ति, मन्ये मान्य-जनस्य लज्जयावलम्बित-मुखचन्द्र-चन्द्रिकाया अधोगतिं दृष्ट्वा अन्धकारो हसति । नयनाञ्चल- सञ्चारेण

भ्रूलता-भङ्गः, मन्ये कज्जल- कल्लोलिन्या वीची-विवर्त्तेषु बृहती बृहती शफरी तरङ्गायिता । अतिसूक्ष्म-सिन्दूररेखा निन्दन्ती पापं, मन्ये पञ्चशरस्य प्रथमः प्रतापः । दोषेण हीना, मध्ये क्षीणा, रसिकेन आनीता द्यूते जित्वा । पयोधरस्य भारेण भग्ना भवितुम् इच्छति, नेत्रस्य तृतीयभागेन त्रीणि अपि भुवनानि साधयति । सस्वरं वदति, रागान् सज्जयति । कस्यापि भवति एतादृशी अपि आशा, कथं लगिष्यति अञ्चलस्य वातः । तासां कुटिल-कटाक्षच्छटा-सर्दप-कन्दर्प-शरश्रेणी यथा नागराणां मनसि निमग्ना, गामुक्त्वा (तथैव) गो-वादीन् ग्राम्यान् त्यक्तवती ।। 35 ।।

उन वेश्याओं के झुण्ड (सार्थ) को जभी कोई देखते हैं तो उनके मनमें विचार आता है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में तीसरे (काम) के पीछे लग कर शेष तीनों की उपेक्षा कर दूँ (इन पर कोई विचार न करूँ) । इस झुण्ड में कोई अपनी सुखनिवास को सजा रही हैं, कोई आलते (महावर) के तिलक (शरीर पर अंकित) को काट छाँट कर पत्तियां (आकृतियाँ) बना रही हैं, दिव्य वस्त्र पहन रहीं हैं, खोल-खोल कर या कंघी से सँवार कर केशपाश को बाँध रही हैं, सखियों को काम करने में लगा (प्रेरित कर) रहीं हैं, हँसकर देख रहीं हैं, सयानी (कामकला सम्बन्धी पूर्णज्ञान से युक्त), लावण्यमयी (सौन्दर्यमयी), पत्रली (पतले पेटवाली), तरुणी, तरङ्गिता (चञ्चला), विवाहिता या अधिकृता, विदुषी, परिहासनिपुणा सुन्दरी के दल को जब कामी पुरुष देखते हैं तो उनका मन करता है कि चारों पुरुषार्थों (धन अर्थ काम मोक्ष) में तीसरे में लगकर शेष तीनों की उपेक्षा (त्याग) कर दूँ ।

उल्लेख एवं व्यतिरेक अलंकार । सुखशाला-सुखसार ('बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे'-विद्यापति) । अलक्तक-अलक्कअ-अलका । गाल, हाथ, पैर आदि पर आलते से फूल-पत्ती की आकृति पत्रावली कही जाती है । पिनद्ध (सं०)-पेन्ह (प्रा०)-पिन्ध [अव०] । कृत्तिवासी रामायण, किष्किन्धा-200 में 'अलका-तिलका' शब्द आया है- **अग्रवालजी** । सआनी आदि वेश्याओं के प्रकार वर्णरत्नाकर में भी इसी रूप में आये हैं। लावण्यमयी [सं०]-लोनुमी [अव०]-लोनुत्र [प्रा०मै०] । पातरि [मै०] = पतली । विन्ना [सं०-वेण्णा [प्रा०]-बेन्ही [अव०] । पेशल [सं०]-पेसल [प्रा०] = निपुण ।। 34 ।।

उन वश्याओं के केशों में फूल बसते (लगे हुए) हैं, लगता है कि मान्य परुषों के लज्जा से झुके हुए मुख रूपी चन्द्र की चान्दनी की अवनति देखकर अन्धकार हँस रहे हो (यहाँ मुख को चन्द्र, केश को अन्धकार एवं उजले फूल को हास के रूप में वर्णित किया गया है । वेश्याओं की अति शृङ्गार एवं लज्जाहीनता से शिष्टजन स्वयं लज्जित होते हैं । चान्दनी फीके पड़ने से अन्धकार का बढ़ना स्वाभाविक है ।) उनके पलकों (कटाक्षों) के चलने से भौँह रूपी लता मुड़ जाती है, सो लगता है कि काजल की नदी की लहरों एवं भँवरों में बड़ी बड़ी शफरी (पोठी) मछलियाँ उछल रही हों (यहाँ भौँह को काजल की नदी, पलकों एवं पुतलियों के छिटकने को वीची एवं विवर्त तथा आँख के उजले भाग को छोटी जाति की उजली मछली कहा गया है । 'बड़ी' शब्द से आँखों का विस्तार सूचित हुआ है ।) अत्यन्त पतली सिन्दूर की रेखा पाप (वेश्यावृत्ति) की निन्दा करती है (लालरंग क्रोध का सूचक है), लगता है कि कामदेव का यह प्रथम पराक्रम हो । वे दोष से हीन और मध्य [कमर] में क्षीण [पतली] हैं, लगता है कि रसिक व्यक्ति ने इसे जूआ में [अपना सर्वस्व दाँव पर लगाकर] जीतकर रखा है [इसीलिए दुबली है, लगता है कि गिर-जाएगी], आँख के तृतीयांश [कोण] से [कटाक्ष से] तीनों लोकों को वश में कर लेती है । सुरीली आवाज में बोलती है, रागों [गीतों] की साधना करती है अथवा राजाओं को भी वश में कर लेती है । किसी रसिक को तो ऐसी भी आशा [अभिलाषा] रहती है कि किस तरह मुझे इसकी आँचल की हवा लगेगी । उन वेश्याओं की कुटिल कटाक्ष की पंक्ति रूपी रोबदाब सहित कामदेव के बाणों की पंक्तियाँ जिस तरह चतुर युवकों के मन में गड़ (घुस) जाती हैं, वैसे ही गाय चरानेवाले (के तुल्य) गँवारों को छोड़ देती हैं ।।

उत्प्रेक्षा और रूपक अलङ्कार का संकर । यह अंश मैथिली भाषा में है । तन्हिक [अब०]- तन्हिक, तनिक (मै०) = उनके । आनलि [मै०] = लायी हुई । द्यूत [सं०]-जूआ [प्रा०, अव०, मै०] । जीनि [प्रा० मै०] = जीतकर । बात [सं०]- बतास [अव०]-बसात [मै०] = हवा । नागर = नगर का चतुर चालाक युवक । गमार = गाँव का वह व्यक्ति जो

काम-कला में अपटु हो । गोबोलि [अब०]- गैवार [मै०] = गाय चराने वाला, तत्सदृश भोलाभाला ।। 35 ।।

(दोहा)

सब्बउ नारि विअक्खणी, सब्बउ सुस्थित लोक ।
सिरि इबराहिम साह गुणे, नहि चिन्ता, नहि शोक ।। 36 ।।

(चौपाई छन्द)

सबतहु हेरि सुहित होअ लोअण ।
सबतहु मिलए सुठाम सुभोअण ।।
खनएक मन दए सुनओ विअक्खण ।
किछु बोलओ तुरुकाणओ लक्खण ।। 37 ।।

छन्द (भुजङ्गप्रयात)

तदो बे कुमारो पइट्ठे बजारो ।
जहीं लक्ख घोरा, मअङ्गा हजारो ।।
कहीं चेटि गन्दा, कहीं बाँदि-बन्दा ।
कहीं दूर निक्कारिए हिन्दु गन्दा ।। 38 ।।
कहीं तत्त्थ कूजा तबेल्ला पसारा ।
कहीं तीर कम्माण दोक्काण-दारा ।।
सराफे सराफे भरे बेबि वाजू ।
तउल्लन्ति हेरा लसूना-पेआजू ।। 39 ।।
खरीदे खरीदे बहूतो गुलामो ।
तुरुक्कें तुरुक्कें अनेको सलामो ।।
बेसाहन्त खीसा पइज्जल्ल मोजा ।

भमे मीर वल्ली सइल्लार खोजा ॥ 40 ॥
अबे बे भणन्ता सराबा पिअन्ता ।
कलीमा कहन्ता कलामे जिअन्ता ॥
कसीदा कढ़न्ता मसीदा भरन्ता ।
कितेबा पढ़न्ता तुरुक्का अनन्ता ॥ 41 ॥

सर्वापि नारी विचक्षणा, सर्वोऽपि सुस्थितो लोकः ।
श्रीइब्राहिम शाह-गुणेन, नहि चिन्ता, नहि शोकः ॥ 36 ॥
सर्वतोऽपि दृष्ट्वा सुखितं भवति लोचनम् ।
सर्वतोऽपि मिलति सुस्थानं सुभोजनम् ।
क्षणमेकं मनो दत्त्वा श्रृणोतु विचक्षणः ।
किमपि वदामि तुरुष्काणां लक्षणम् ॥ 37 ॥
ततो द्वौ कुमारौ प्रविष्टौ वाणिज्यालये ।
तत्रैव लक्ष-घोटकाः मतङ्गाः सहस्राणि ।
क्वापि चेटि-गणेरुकाः क्वापि दासी-दासम् ।
क्वापि दूरं न्यक्क्रियन्ते हिन्दवो मन्दाः ॥ 38 ॥
क्वापि स्थालानि चषकानि भाण्डानि प्रसारितानि ।
क्वापि शर-सायकानाम् आपणिकाः ।
स्वर्णशालया स्वर्णशालया भरिते द्वे अपि पार्श्वे ।
तोलयन्तो व्यापारिणः (हीरकं वा) लशुनानि पलाण्डून् ॥ 39 ॥
क्रीत्वा क्रीत्वा बहून् दासान् ।
तुरुष्केषु तुरुष्केष्वनेके प्रणामाः ॥
क्रीणन्तः कोशिकाम् उपानहम् पादवस्त्रम् ।
भ्रमन्ति मीर-वल्ली-सइल्लार-खोजाकाः ॥ 40 ॥
'अबे बे'- भणन्तः सुरां पिबन्तः ।
कुरानकथां कथयन्तः, कुरानेन जीवन्तः ॥

वस्त्रचित्रं रचयन्तः, मस्जिदं भरन्तः ।
पुस्तकं पठन्तः तुरुष्का अनन्ताः ।। 41 ।।

उस नगर में सभी नारियाँ कार्य में पटु हैं, सभी लोग सुखी [धनी] हैं, श्री इब्राहिमशाह के गुण से, न तो वहाँ चिन्ता है और न शोक ही है ।।

बिअक्खणी [प्रा०] = विदुषी । सुस्थित [मै०], सुभ्यस्त [मै०] = अच्छी आर्थिक दशा में । स्थिति [मै०] = धन । लोक [मै०] = लोग, आदमी । नहि [सं०, मै०] = नहीं ।। 36 ।।

सभी ओर देखकर आँखें सुखी होती हैं, सभी जगह सुन्दर स्थान (रहने के लिए) एवं सुभोजन मिलता है । एक क्षण मन देकर विद्वान् लोग सुनें, मैं तुर्कों (यवनों) का कुछ लक्षण (पहचान, रीति) बोलता हूँ । खन एक, खनेक (मै०) । मन दए सुनओ (मै०) । किछु (मै०)=कुछ ।। 37 ।।

तब दोनों राजकुमारों ने बाजार में प्रवेश किया, जहाँ लाखों घोड़े एवं हजारों हाथी थे । वहाँ कहीं पर (एक ओर हिन्दू) दासी-दास तो कहीं पर बाँदी-बन्दा (मुस्लिम दासी-दास) थे (बिक रहे थे), कहीं पर नीच हिन्दू निकाले जा रहे थे अथवा धिक्कारे जाते थे ।

द्वे (सं०)-बे [प्रा०,अ०] । चेटी [सं०]=दासी । गणेरुक [सं०]-गन्दा [अव०]=सेवक । कस्मिन् [सं०]- कस्सिं [प्रा०]-कहि [अव०] –कहीं [हिन्दी] । यस्मिन्-जिस्सिं-जहिं । निष्कार्यते [सं०]- निक्कारिए [अव०]=निकाला जाता है । न्यक्रियते [सं०]-निक्कारिए [अव०]= धिक्कारा जाता है । हीनेन्दु [सं०]=हीन इन्दुवंशी [पूर्वजों से कम गुण वाले चन्द्रवंशी लोग]-हिन्दु [अव०]=भारतीय [मुस्लिम भिन्न सभी जाति] ।। 38 ।।

कहीं तश्तरियाँ [थालियाँ], प्याले और तबेले [मिट्टी के बर्त्तन], प्रसारित [बेचने के लिए फैलाकर रखे हुए] थे, कहीं पर तीर-कमान [बाण और धनुष] के दूकानदार थे । सड़क के दोनों ओर सर्राफा ही

सर्राफा [आभूषणालय] भरे थे, जहाँ पर हीरा, लहसुनियाँ और फीरोजा आदि रत्नों को तौल रहे थे या कहीं पर आगे बाजार में यवन सौदागर लहसुन और प्याज तौल रहे थे ।

तश्त [फारसी]-तत्त्थ [अव०] । कूजा [फा०]=प्याला । तप्तपात्री [सं०]- तवेल्ला [अब०]-तौला [मै०]=भात पकाने के लिए मिट्टी का वर्त्तन । प्रसारित [सं०]-पसारिअ [प्रा०]- पसारा [अव०]-पसारल (मै०] । दोक्कानदारो [अव०]- दोकानदार [मै०]=दूकानदार । सराफा (फा०)= आभूषण बाजार । बेबि [द्वे अपि]= दोनों । बाजू [फा०]- तरफ । हेरा=हीरकं [सं०]= हीरा । हेरा=फेरा (ढूँढ़ ढूँढ़कर दूर से सामान लाकर बेचने वाला व्यापारी) । हेर (मै०)=देखना । 'हेरा-लसूना-पेयाजू' शब्दों में दो अर्थ रहने के कारण श्लेष अलंकार हुआ ।। 39 ।।

अनेकों गुलामों (नौकरों) को खरीद खरीद कर तुर्क लोग तुर्कों को अनेक बार सलाम करते थे । बटुआ (मनी बेग), जूता और मौजा खरीदते मीर, बल्ली, सालार और ख्वाजा (यवन उच्चाधिकारीगण) घूमते थे । खरीद (फा०)=खरीदना । विसाधयन्त: (सं०)- बेसाहन्त (अव०)- बेसाहैत (मै०)= दूकान से लेते हुए । खीसा आदि फारसी शब्द हैं ।। 40 ।।

वहाँ कितने ही तुर्क 'अबे बे' कहते शराब पी रहे थे, कलीमा (कुरान कथा) कहते थे, कुरान सुनकर जीवन-यापन करते थे, नकाशी करते थे या कविता करते थे, मस्जिद को भरते (उसमें) जाते थे और किताब पढ़ते हुए असंख्य तुर्क अपने अपने कामों में लगे थे ।

कसीदा [फा०]=कविता, नक्काशी । मैथिली में कपड़े पर नक्काशी करने को 'कसीदा कढ़ब' कहा जाता है । यहाँ दोनों अर्थ ले लेने पर श्लेष अलंकार हो जाता है ।। 41 ।।

(षट्पद छन्द)

अति गह सुमरु खोदाए, खाए लेअ भाङ्गक गुण्डा ।
विनु कारणहि कोहाए, बएन तातल तमकुण्डा ।।

तुरुक तोषारेहिं चलल, हाट भमि हेडा चाहइ ।
आडी डीठि निहारि, दबरि दाढ़ी थुक वाहइ ॥
सब्बस्स सराब खराब कइ, तपत कबाबा खा दिरम ।
अविवेक फरीबी कहञो का, पाछा पएदा लेले भम ॥ 42 ॥
जमण खाइ ले भाँग, भाँग रिसिआइ खाण हए ।
दौरि चीरि जिउ धरिअ, समिण सालण अणए भणए ॥
पहिल नेबाला खाइ, जाइ मुह भीतर जबहीं ।
खण एक चुप भए रहइ, गारि गाडू दे तबहीं ॥
पुनु ताकि रहए तसु तीर लए, बैठाब मुकद्दम बाँहि धए ।
जञो आनिञ आन कपूर सम, तबहु पिआजु पिआजु पए ॥ 43 ॥
गीति-गरुवि जाखरी, मत्त भए मतरुफ गावइ ।
चरख नाच तुरुकिनी, आन किछु काहु न भावइ ॥
सइद सेरणी बिलह, सब्बको जूठ सब्बे खा ।
दोआ दे दरबेस, पाब नहि, गारि पारि जा ॥
मखदूम नवाबइ दोम जञो, हाथ ददस दस नारिओ ।
खुँदकारी हुक्कुम कहञो का, अपनेञो जोए परारि हो ॥ 44 ॥

अतिग्रहं स्मृतवान् खोदाकं, खादति स्म भङ्गस्य चूर्णम् ।
विना कारणेनैव क्रुद्धः, वदनं तप्तं ताम्रकुण्डमिव ॥
तुरुष्कः तुषाराश्वे चलितः, हट्टे परिभ्रम्य हेडां वाञ्छति ।
तिर्यग् दृष्ट्या निभाल्य धावित्वा कूर्चे थूत्कं वाहयति ॥
सर्वस्वं सुरायां नष्टं कृत्वा, तप्तचर्पटिकायामखादत् द्रव्यम् ।
अविवेकस्य कपटं कथयानि किं, पश्चात् पदातिं नयन् भ्रमति ॥ 42 ॥
यतमः खादति भङ्गं भग्नो रुष्टः खानो भवति ।
धावित्वा विदार्य जीवं धृत्वा समीनं मांसम् आनेतुं भणति ॥

प्रथमं कवलं खादति, याति मुखाभ्यन्तरं यदैव ।

क्षणमेकं तूष्णीं तिष्ठति, निगार्य गण्डूषं ददाति तदैव ।।

पुनः वीक्षमाणस्तिष्ठति तं शरं गृहीत्वा, उपवेशयति मुकद्दमः बाहुं धृत्वा ।

यदि आनीयते अन्नं कर्पूरसमं, तदापि पलाण्डुं पलाण्डुं प्रति ।। 43 ।।

गीतिगुर्वी नर्त्तकी मत्तीभूय प्रशंसागीतं गायति ।

चक्रं नृत्यति तुरुष्किणी, अन्यत् कस्यापि न भावयति ।।

सैयदः प्रसादं विलभते, सर्वस्य जुष्टं सर्वः खादति ।

आशी र्ददाति द्वारवेशः, प्राप्य नहि, गलिं पारयित्वा याति ।।

मखदूमः नबावीयति डोम्बो यथा, हस्तं दर्शयति दशसु नारीषु ।

न्यायकारिण आदेशं कथयामि किं आत्मनोऽपि योषित् परदारा भवति ।। 44 ।।

(कोई तुर्क) अति हठ पूर्वक खुदा का स्मरण कर भाँग का चूर्ण खा लेता है, तब विना कारण ही क्रोधित हो जाता है और उसका मुँह तपाये हुए तमकुण्डा (ताम्बे के छोटे घड़े) के समान हो जाता है । तुर्क वर्फ के समान (उजले) घोड़े पर चला, हाट पर घूम कर हेड़ा (पशुओं के दल पर लगने वाला शुल्क) लेना चाहता है । (कर वसूली के अधिकारी न रहने पर भी जबरन वसूलता है और उस व्यापारी को इस प्रकार अनेक वार कर देना पड़ता है ।) कड़ी नजर से देख एवं डाँट कर अपने दाढ़ी पर थूक बहाता है (कर नहीं मिलने पर आरा-जबर्दस्ती 'कर' लेने के लिए उसे जोर से डांटने के समय मुँह से थूक बह जाता है) । अपने सर्वस्व (स्वास्थ्य) को बरबाद कर गरम कबाब खाने में दिरम (फा०) = सम्पत्ति को खा जाता है । उस विवेकहीन एवं जालफरेब करने वाले का हाल क्या कहूँ ? विना प्रयोजन ही पीछे सिपाही लेकर चलता है ।

'तड़कइ तकरा बाद बम'-ऐसे पाठ का अर्थ होगा कि शराव पीकर जोर-जोर से गरजता है और उसके बाद वमन करता है । शराब से मत्त की यह दशा प्रसिद्ध ही है ।

ग्रहः [सं०]-गह [अव०] = हठ । क्रोधित [सं०]- कोहाए [अव०] । वदन-वअण-वएन । तप्त-तत्त-तातल=तपा हुआ । ताम्रकुण्ड

[सं०]–तमकुण्डा=तमघैल [मै०], कुड़नी [मै०] = छोटा घड़ा । तुषार=हिम, वर्फ, उजला घोड़ा । हेँड़ [मै०] = पशु का झुण्ड । हेड़ा = पशुदल पर लगने बाला कर । आड़ी डीठि = अड़ी हुई दृष्टि । अड़ब [मै०] = भिड़ना, सामना करना । निहारि [मै०] = गौड़ से देखकर । दवरि [अ०] - दबारि [मै०] = डाँट कर । दवरि [अव०] - दउड़ि [मै०] = दौड़कर । दवरि- दरबरि [प्रा० मै०] = झट से । धवल [सं०] - दवल (अव०)= उजला, दाढ़ी का विशेषण, स्त्रीलिङ्ग दवलि । थूत्क [सं०] - थूक । सब्बस्स'-सर्वस्व, छन्द के अनुरोध से यही पाठ उचित है, 'सवे' नहीं । तपत (मै०) = गरम । कबाबा (फा०)- चखना, तीखाचोखा तला खाना । बाँदि= यवन-दासी । पदाति (सं०)- प्यादा (फा०)- पएदा (अव०) = पैदल सैनिक । लेलेँ, लेने (मै०) = लेते हुए । वएन (वदन) = मुख । वदन-तमकुण्डा में रूपक अलंकार । स्वभावोक्ति अलंकार ।। 42 ।।

जो खाँ (यवन सरदार) भाँग खा लेता है तो नशे में भग्न (झुका हुआ) हो जाता है और विगड़ जाता है, तब 'दौड़ कर मँछली सहित सालन (मसालायुक्त चटपटीदार मांस) चीर कर जीभ पर रखता है और अनीतिवाली बात बोलता है । पहला कौर (ग्रास) खाता है और जभी वह ग्रास मुँह में जाता है कि एक क्षण चुप रह कर बधना (टोंटीवाला जलपात्र) से मुँह में पानी गाड़ (चुआ) देता है (जिससे पानी के साथ वह ग्रास पेट में चला जाता है) या गाली देता है, ऐसा दूसरा अर्थ (व्यंग्य) हुआ । फिर उसी को (जिसे गाली दिया था) तीर लेकर (मारने हेतु) ताक (घूर कर देख) रहा है, (व्यर्थ बिगड़े हुए इस यवन को) मखदूम (उपदेशक यवन) बाँह पकड़ कर बैठाता है । यदि कपूर के समान (स्वच्छ सुगन्धित) अन्न भी उसके आगे लाया जाता है तो भी प्याज-प्याज चिल्लाकर उसीके प्रति (या पर ही) रुचि व्यक्त करता है ।

यतम-सं०- जमण-अव०-जौन-हिं०=जो । कतम=कौन । दौड़ि (मै०) = दौड़ कर । चीरि (मै०) = चीर कर । जिउ (अव०) = जीव या जीभ । समीन (सं०)- समिण (अव०) = मछली सहित । अणए

(अव०)- अनीति, अनुचित । पहिल (मै०)= पहला । नेवाला (फा०) = कवल (सं०) = कओर (मै०)= कौर । गण्डूष (सं०)-गाडू (फा०)- मुसलमानों का पानी पीने का टोटी-वाला पात्र (बधना) । ताकि रहए (मै०) = देख रहा है । मुकदम (फा०) = नीतिवक्ता मान्य यवन । जञो आनिञ (मै०) । आन = अन्न । 'भाँग-भाँग' में यमक अलंकार । स्वाभावोक्ति अलंकार ।। 43 ।।

गाने में श्रेष्ठ नर्त्तकी या गायिका सुध-बुध खोकर प्रशंसा-गीत गाती है और तुर्क की स्त्री चक्कर मार कर नाचती है, जिसे देखते हुए किसी को इसके अलावे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है । सैयद प्रसाद बाँटता है और वहाँ सभी का जूठ सभी खाते हैं । फकीर दुआ देता है, जहाँ वह कुछ पाता नहीं है, वहाँ से गाली देकर चला जाता है । मखदूम [झाड़-फूँक करनेवाला यवन] नबाबी [नबाब से समान आदेश देना] करता है, वह डोम जैसा लगता है और दस औरतों को उनके हाथ में अदृश्य वस्तु दिखाता है [अधिक श्रद्धालु होने से नारीगण उत्सुकता से अवश्य दान देनेवाली होती है] । वहाँ न्यायाधीश के आदेश का हाल क्या कहा जाय ? उसकी अपनी भी पत्नी परनारी हो जाती है ।

गुर्वी-गरुवि । यक्ष-जक्ख जक्खर-जाखरी- यक्षिणी, नर्त्तकी, गायिका ['जाखड़' एक उपनाम के रूप में राजस्थान में प्रसिद्ध है- उससे 'जाखरी' शब्द तुलनीय है ।] मतरुफ (फा०) । चक्र-चरख=चक्राकार (चरखी के समान) । अन्न-अण्ण-आन [मै०] । सेरणी-शीरीनी [फा०] = मिठाई । बिलह [मै०]- बाँटना । जुष्ट-जुट्ठ- जूठ । दुआ [फा०]- दोआ [अव] । दरवेश [फा०]=फकीर । गारि पारि [मै०] । डोम्ब-दोम=डोम, एक जाति । हदस [फा०]- ददस [अव०]- अदृश्य प्रेतादि को शीघ्रता से दिखाता है । दस नारिओ=दस [अनेक] नारियों को हाथ में अदृश्य वस्तु दिखाकर धन बटोरता है । मूलपाठ 'षुन्द एवं 'हुकुम' को छन्द के अनुरोध से बदलना पड़ा, ये शब्द फारसी के हैं । योषित्-जोइअ -जोए-जोइ=स्त्री । परदारा-परआरा-परारि ।। 44 ।।

किञ्च–

(वाली छन्द)

हिन्दू तुरुके मिलल वास । एकक धम्मे अओका उपहास ।
कतहु बाँग, कतहु वेद । कतहुँ बिसमिल, कतहु छेद ॥ 45 ॥
कतहु ओझा, कतहु खोजा । कतहु नकत, कतहु रोजा ॥
कतहु तम्बारु, कतहु कूजा । कतहु निमाज, कतहु पूजा ॥ 46 ॥
कतहु तुरुका बरकर कर । वाट जाइते बेगार धर ।
धरि आनए बाभन बडुआ । मथाँ चढ़ाबए गाइक चुडुआ ॥ 47 ॥
फोट चाट, जनौअ तोड़ । उपर चढ़ाबए चाह घोड़ ।
धोआउरि धाने मदिरा साँध । देउर भाँगि मसीद बाँध ॥ 48 ॥
गोरि गोमठ पुरलि मही । पएरहु देमएक ठाम नहीं ॥
हिन्दू बोलि दुरहि निकार । छोटेओ तुरुका भभकी मार ॥ 49 ॥

हिन्दू–तुरुष्कयोः मिलितो वासः । एकस्य धर्मेण अपरस्य उपहासः ॥
कुत्रापि बाँगः, कुत्रापि वेदः । कुत्रापि विस्मिलः, कुत्रापि छेदः ॥ 45 ॥
कुत्रापि उपाध्यायः, कुत्रापि खोजाकः । कुत्रापि नक्तं, कुत्रापि रोजा–व्रतम् ॥
कुत्रापि ताम्रं, कुत्रापि कूजा–पात्रम् । कुत्रापि निमाजः, कुत्रापि पूजा ॥ 46 ॥
कुत्रापि तुरुष्कः बलात् करोति । वर्त्मनि यान्तं विष्टिकरं धरति ॥
धृत्वा आनयति ब्राह्मण–बटुकम् । मस्तके चारयति गोः चर्मकम् ॥ 47 ॥
स्फोटं लेढि, यज्ञोपवीतं त्रोटयति । उपरि चारयितुम् इच्छति घोटम् ॥
धौत–धान्येन मदिरां सन्धत्ते । देवकुलं भङ्क्त्वा मस्जिदं बध्नाति ॥ 48 ॥
शव–गर्त्तेन गोमठेन पूर्णा मही । पदमपि दातुं स्थानं नहि ॥
हिन्दूम् उक्त्वा दूर एव न्यक्करोति । क्षुद्रोऽपि तुरुष्कः भीषयितुं चेष्टते ॥ 49 ॥

हिन्दू और तुर्कों का निवास [घर] सटा हुआ एक ही जगह है और उनमें एक का धर्म दूसरे का उपहास बन जाता है । वहाँ कहीं पर बाँग [अजान] होता है तो कहीं वेद पढ़ा जाता है, कहीं विसमिल्ला [मुसलमान द्वारा पशुवध] होता है तो कहीं पर [बलि के लिए पशु को] काटा जाता है । कहीं ओझा-गुणी बैठे हैं तो कहीं मुल्ला देखे जाते हैं। कहीं नक्तव्रत [दिन भर के हिन्दुओं का उपवास] होता है तो कहीं पर रोजा [मुसलमानों का ऐसा ही उपवास] होता है । कहीं ताम्बे का पूजापात्र है तो कहीं पर प्याला है । कहीं पर पूजा होती है तो कहीं पर नमाज पढ़ा जाता है । यहाँ एक हिन्दुओं की विशेषता है तो दूसरी मुसलमानों की ।

अवरक-अउरक अओका=अन्य का । बाँग [फा०]=मस्जिद में अजान देना । बिसिमिल [फा०]= इस शब्द का उच्चरण कर पशुवध ।

उपाध्याय-उबज्झा-ओझा=मन्त्र द्वारा झाड़-फूँक करने वाला हिन्दू । ख्वाजा [फा०]= मुसलमान धार्मिक, झाड़नेवाला । रोजा [फा०] = यवनों का एक मासभर का व्रत । कूजा [फा०]=प्याला ।। 46 ।।

कहीं पर तुर्क जबर्दश्ती करता है, राह पर चलते हुए किसी व्यक्ति को बेगार (बिना वेतन के कार्य) हेतु पकड़ लेता है । ब्राह्मण-वटुक को पकड़ लाता है और उसके माँथे पर गाय का खाल (चमड़े का मोटा) लाद देता है ।। 47 ।।

उनके ठोप (तिलक-बिन्दु) को चाट लेता है, जनेऊ को तोड़ देता है और देह पर घोड़ा चढ़ाना चाहता है । उनके धोये हुए ओइरी-धान से मदिरा बनाता है और मन्दिर को तोड़कर मस्जिद बनाता है ।। 48 ।।

वहाँ गोरि (कबुर्गाह) और मकबरे से धरती भर गयी, पैर भी देने का स्थान न रहा । तुर्क हिन्दुओं को 'हिन्दू' कह कर दूर ही निकाल देता है या अपमानित करता है । वहाँ छोटा-सा भी तुर्क व्यक्ति बहुत अधिक तड़क-भड़क दिखाकर डराता है ।

बलात्कार-बलक्कार-बरकर=जबर्दस्ती । बलकर [सं०]-बलगर [मै०]=बलशाली । विष्टि: [सं०]-बेगार [मै०]=विना पारिश्रमिक दिये ही

काम कराना । चुडुप्प [प्रा०]-चुडुआ=खाल । स्फोट-फोट-ठोप [मै०] । घोट-घोड़ । वरकधान्य-सं०-उरिधान- ओइरी धान=यज्ञोपयोगी जंगली धान्य [यह अष्टादश धान्य में एक है] । देवकुल-देउर । गोर [फा०]-गोरि (मै०)=कब्र । गूमठ [फा०]=गुम्बजों से युक्त भवन । पुरलि [मै०]=भरी हुई । देमएक [मै०]=देने का, देमए+क [सम्बन्ध चिह्न] । स्थान-ठाम । भापयति=डराता है, भापकीय-भभकी [निर्बल होते हुए भी डराने की क्रिया], यथा-वनरभौकी [मै०] । मार [मै०]=झट से उपस्थापित करना । अनुच्छेद 45 से 50 तक मैथिली है ॥ 49 ॥

(दोहा)

हिन्दुहि गोट्टेओ गिलिअ हल, तुरुक देखि होअ भान ।
अइसेओ जसु परतापे रह, चिरे जीबओ सुरतान ॥ 50 ॥
हट्टहिँ हट्ट भमन्तओ, दूअओ राजकुमार ।
दिट्ठि कुतूहल कज्ज-रसे, तो पइट्ठ दरबार ॥ 51 ॥

त्रिभङ्गी (पद्मावती) छन्दः

लोअह सम्मद्दे, बहु विह बद्दे, अम्बर-मण्डल पूरीआ ।
आबन्त तुलुक्का, खाण मुलुक्का, पअ-भरे पत्थर चूरीआ ॥
दुरुहुन्ते आआ, बड़ बड़ राआ, दवलि दोआरिहिं वारीआ ।
चाहन्ते ठाहर, आबहि बाहर, गालिम गणए न पारीआ ॥ 52 ॥

हिन्दून् सकलान् गिलिष्यति, तुरुष्कान् दृष्ट्वा भवति भानम् ।
एतादृशा अपि यस्य प्रतापेन वसन्ति, चिरं जीवतु सुरत्राणः ॥
हट्टतो हट्टं भ्रमन्तौ, द्वावपि राजकुमारौ ।
दृष्टिकुतूहलेन कार्यरसेन, तदा प्रविष्टौ राजद्वारम् ॥ 51 ॥

लोकानां सम्मर्दैः, बहुविधवाद्यैः, अम्बरमण्डलं पूरितम् ।
आयान्तः तुरुष्काः, खाण-मुलुकाः, पदभरैः पाषाणं चूर्णितम् ।।
दूरादपि आयाता, बृहद्बृहद्राजानः, त्वरितं द्वार एव वारिताः ।
इच्छन्तः आश्रयम्, आयान्ति बहिः, तरुणभटाः गणयितुं न पार्यन्ते ।। 52 ।।

तुर्कों को देखकर, लगता है कि वे एक एक कर हिन्दुओं को निगल जायेंगे, ऐसे भी हिन्दू वहाँ जिनके प्रताप से सुरक्षित रहते हैं, वह सुलतान चिरजीवी होवें ।

गोष्ठ-गोट्ठ-गोट्ट-गोट [मै०]=वस्तु की संख्या । गिलिअ हल-गिरत हनि [मै०]=आकर निगलेगा ।। 50 ।।

एक हाट से दूसरे हाट पर घूमते हुए दोनों राजकुमार आँखों की उत्सुकता एवं कार्य में अनुराग (तन्मयता) के कारण तब राजदरबार में प्रवेश कर गये । दीपक अलंकार ।। 51 ।।

लोगों के भीड़भाड़ और बहुत प्रकार के बाजे से आकाश मण्डल या कपड़े का बड़ा गोलघर भर गया था । आते हुए तुर्कों, खानों और मलीकों के पैरों के दबाव से फर्श के पत्थर भी चूर्ण हो जाते थे । दूर से भी आये हुए बड़े-बड़े राजालोग द्वारपाल के द्वारा दौड़कर द्वार पर ही रोक दिये जाते थे । आश्रय चाहनेवाले तरुण-यवन वीर बाहर में आये हुए थे, जिन्हें गिना नहीं जा सकता था ।

दूरहुँ ते [प्रा०मै०], दूरहु सँ [न०मै०] । दवलि-दउड़ि [मै०] या दरबरि [मै०]=शीघ्र । ठाहर=ठौर । गिलमान [फा०]- गालिम [अव०]-नवयुवक दल । 'पत्थर चूरीआ' से अनन्त व्यक्तियों का आवागमन रूप वस्तुध्वनि हो रहा है ।। 52 ।।

सब सइअदगारे, वित्त विथारे, पुहबीपाला आबन्ता ।
दरबार बइट्ठे, दिवस भइट्ठे बरिसहु भेट्ट न पाबन्ता ।।
उत्तम परिवारा, खाण उमारा, महल-मजेदे जाबन्ता ।

सुरतान सलामे, लहिअ इनामे, आपे रहि रहि आबन्ता ॥ 53 ॥
साअर गिरि अन्तर, दीप दिगन्तर, जासु निमित्ते जाईआ ।
सब्बओ बटुराणा, राउत राणा, तत्थि दुअरहिं पाईआ ।
इअ रहहि गणन्ता, विरुद भणन्ता, भट्टा ठट्ठा पेक्खीआ ।
आबन्ता जन्ता, कज्ज करन्ता, मानव कमने लेक्खीआ ॥ 54 ॥
तेलङ्गा बङ्गा, चोल कलिङ्गा, राआ पुत्ते मण्डीआ ।
निञ भासा जम्पइ, साहस कम्पइ, जइ सूरा जइ पण्डीआ ॥
राउत्ता पुत्ता, चलइ बहुत्ता, अन्तरे पन्तरे सोहन्ता ।
सङ्गाम सुहव्वा, जनि गन्धव्वा, रूएँ पर मन मोहन्ता ॥ 55 ॥

(षट्पद छन्द)

ओहु खास-दरबार, सएल महिमण्डल उप्परि ।
उत्त्थि अपन बेबहार, रङ्क ले राअहु चप्परि ॥
उत्त्थि सत्तु उथि मित्त, उत्त्थि सिर नबइ सब्ब कइ ।
उत्त्थि साति परसाद, उत्त्थि भए जाए भव्व कइ ॥
निज भाग अभाग विभाग बल, ओठमाहि जानिञ सब्बे गए ।
एहु पातिसाह सब उप्परहि, तसु उप्परि करतार पए ॥ 56 ॥

(गद्य)

अहो अहो !! आश्चर्य !! ताहि दारखोलहि करो दबाल दरवाल, औअलदर, मेञानदर, स्यालदर, खासदर, दारिगह, वारिगह, निमाजगह, खोआरगह, खोरमगह करेओ विचित्त चमत्कार देखन्ते सबे बोल भल, जनि अद्यपर्यन्त विश्वकर्मा इथिहि कार्य छल ! ॥ 57 ॥

सर्वे सैअदागारे वित्तं विस्तारयन्तः, पृथ्वीपाला आयान्ति ।
मुख्यद्वारे उपविष्टा दिवसं प्रभ्रष्टं कुर्वन्तः, वर्षेणापि साक्षात्कारं न प्राप्नुवन्ति ।।
उत्तम-परिवाराः खान-उमाराकाः, प्रासादवरं यान्ति ।
सुरत्राण-प्रणामेन, लब्धवन्तः पुरस्कारं, आत्मना स्थित्वा-स्थित्वा आयान्ति ।। 53 ।।

सागरगिर्यन्तरं द्वीपदिगन्तरं, येषा निमित्तं गम्यते ।
सर्वेऽपि वर्तुलिताः, राजपुत्रा राजानः, तस्मिन् द्वारि प्राप्यन्ते ।।
इह तिष्ठन्ति गणयन्तः, विरुदं भणन्तः, भट्टाः स्थिता दृश्यन्ते ।
आयान्तो यान्तः, कार्यं कुर्वन्तः मानवाः कतमेन लिखिताः ।। 54 ।।
तैलङ्गाः बङ्गाः चोलाः कलिङ्गाः राजपुत्राः मण्डिताः ।
निजभाषां जल्पन्ति, साध्वसेन कम्पन्ते, यदि शूरा, यदि पण्डिताः ।।
राजपुत्र-पुत्राः, चलन्ति-प्रभूताः अन्तरे प्रान्तरे शोभमानाः ।
सङ्ग्राम-सुभव्याः, यथा गन्धर्वाः, रूपेण परमनो मोहयन्ति ।। 55 ।।
तेष्वपि प्रधानराजद्वारं सकल महिमण्डले उपरि ।
तत्र आत्मनो व्यवहारं रङ्कोऽपि लाति राजसमीपमपि त्वरितम् ।।
तत्र शत्रोः तत्र मित्रस्य, तत्र शिरो नमति सर्वेषाम् ।
तत्र शास्ति-प्रसादौ तत्र भवन्ति भव्यानि कति ।।
निज-भाग्याभाग्य-विभागबलं, तत्स्थान एव जानन्ति सर्वे गत्वा ।
अयं पातिशाहः सर्वस्य उपरि, तस्य उपरि कर्त्ता परः ।। 56 ।।

अहो अहो !! आश्चर्यम् !! तस्य द्वारकोष्ठस्य तरवारि, द्वारपाल, प्रथमद्वार, मध्यद्वार, तृतीयद्वार, प्रासादद्वार, द्वारगृह, सभागृह, पूजागृह, खादनगृह, प्रमदगृहाणां विचित्रं चमत्कारं प्रेक्षमाणाः सर्वे वदन्ति भद्रम् ! यथा अद्यपर्यन्तं विश्वकर्मा एतस्मिन्नेव कार्ये स्थितः ।। 57 ।।

सैयदों के कक्ष में अपने साथ लिये हुए रत्न आदि उपहार को विस्तृत करके राजालोग आते थे, वहाँ दरबार में बैठे हुए दिन बिता लेते थे या भर दिन राजदर्शन की प्रतीक्षा करते थे, पर इस तरह वर्ष भर प्रतीक्षा करने पर भी साक्षात्कार नहीं कर पाते थे । पर, बड़े खानदानी खाँ और

अमीर लोग शाही महल में सीधे जाते थे, वहाँ सुलतान को सलाम करके इनाम पाते थे और अपने मन के अनुसार कुछ देर रहकर आ जाते थे । (जहाँ हिन्दू राजा उपहार लाने पर भी सैयदगार में ही रह जाते थे, साधारण यवन भी बाहर ही रहते थे, राजा का दर्शन बहुत कठिन था, वहीं खाँ, अमीर आदि को किसी प्रकार का रोक-टोक नहीं था ।)

सैयद-फा०=सम्मान्य यवन । आगार-सं०-भवन । विथारव [मै०]=फैला कर रखना । पृथ्वी-पुहवी । भ्रष्ट-भइट्ठ=गँवाना, प्रतीक्षा में समय विताना । खाण-खाँ । उमरा-अमीर का बहुवचन । मजेदे=श्रेष्ठ । आत्मना-आपे= स्वेच्छानुसार ।। 53 ।।

जिनसे मिलने के लिए सागर और पर्वत के पार, द्वीपों और बहुत दूरा तक लोग जाते हैं, वे राउत (राजपुत्र) और राजालोग सभी इकट्ठा हुए वहीं द्वार पर ही मिल जाते हैं । यहाँ कौन कौन राजा आये इसकी गणना करते हुए, स्तुति कहते हुए भाँटों (राजस्तुति गायकों) का दल दिखाई देता है । आते, जाते और काम करते हुए मानवों की लेखा-जोखा कौन कर सकता है ?

जासु निमित्ते-जिनके कारण । वर्तुलित-बटुराणा=बटोरे हुए ।। 54 ।।

तैलंग, बंग, चोल, कलिंग आदि देश के राजपुत्रों से दरवार शोभित है । वे अपनी अपनी भाषा बोलते हैं, राजा के डर से काँपते हैं, भले ही वे शूर और विद्वान् ही क्यों न रहें । बहुतों राजपूतों के लड़के वहाँ लोगों के बीच तथा दूर पाँतर (निर्जन) स्थानों में शोभित होते हुए चल रहे हैं, वे संग्राम में सुभव्य हैं, जैसे गन्धर्व ही हों और अपने रूप से दूसरों के मन को मोह लेते हैं । निज-निञ । साध्वस (सं०)- साहस (अव०) = भय ।। 55 ।।

इन दरवारों में प्रधान दरवार सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर सब से ऊपर है । वहाँ दरिद्र भी अपना फरियाद बिना रोक टोक का राजा के पास भी ले जाता है । वहाँ शत्रु, मित्र सबों का सिर झुक जाता है, वहाँ दण्ड और पुरस्कार दोनों दिये जाते हैं, वहाँ लोगों के कितने ही कल्याण हो जाते हैं । अपना भाग्य, अभाग्य और विभाग के बल को वहीं जाकर सभी जानते

हैं । यह बादशाह सबों के ऊपर हैं और सब के ऊपर तो केवल संसार को बनाने वाला ही है ।

त्व-सं०=अन्य, त्वे-वे (हिन्दी), त्वत्र-उत्थि । व्यवहारः = न्यायालयीय अभियोग । उत्थि-उथि=वहाँ, छन्द के अनुरोध से तकार का लोप हुआ है । शास्ति-साति = शसन । ओठमाहि (मै०) । गए (मै०)=जाकर ।। 56 ।।

अहो अहो ! उस द्वार प्रकोष्ठ के द्वार पर द्वारपालगण, प्रथमद्वार, मध्यद्वार, तृतीयद्वार, प्रासादद्वार, द्वारगृह (के आगे का प्रांगण), सभागृह, पूजागृह, भोजनालय और विलास भवनों के विचित्र चमत्कार को देखते हुए सभी बोलने लगते थे- वाह ! मानो आज तक विश्वकर्मा (देवताओं के भवनादि निर्माता) इसी कार्य में लगे हुए थे ।

यहाँ दवाल से खोरमगह तक फारसी शब्द हैं, जिनमें बहुतों के रूप अवहट्ठ से प्रभावित हैं दुआल-दवाल, दरवान-दरवाल । अव्वलदर-औअलदर, म्यानदर-मेञानदर । दारगाह-दारिगह, वारगाह-वारिगह, नमाजगाह-निमाजगह । ख्वारगाह-खोआरगह, खुर्रमगाह-खोरमगह । अन्य अभिव्यक्ति मैथली की हैं । उत्प्रेक्षा अलंकार ।। 57 ।।

ताहि प्रासादन्हि करो उपरि वज्रमणि-खचित- काञ्चन कलस छाज, जाहि करो माथे सूर्यरथ-वहन-पर्यटन्त सात घोलाक अट्ठाइसओ टाप बाज ।। 58 ।।

प्रमदवन, पुष्पवाटिका, कृत्रिमनदी क्रीडाशैल धारागृह यन्त्रव्यजन शृङ्गारसंकेत माधवीमण्डप विश्रामचौरा चित्रशाली खट्वाहिण्डोल कुसुमशय्या प्रदीपमाणिक्य चन्द्रकान्तशिला चतुस्सम-पल्वल करो परमार्थ पुच्छिहि सिआन, ए बाप ! अभ्यन्तर करी वार्ता के जान ? ।। 59 ।।

(रड्डा छन्द)

एम पेक्खिअ दूर दरखोल ।।

खन मुहुत्त विस्समिअ, सिट्ठपदिक परिचअ पमानिअ ।
गुने अनुरञ्जिअ लोअ, सब्ब महल को मम्म जानिअ ॥
सगुण सआना पुच्छिअउ, तं पल्लविअउ आस ।
तो उअ-सञ्झहि मज्झपुर, विप्पघरहि करु वास ॥ 60 ॥

तस्य प्रासादस्योपरि वज्रमणि-खचित-काञ्चनकलसः सज्जितः, यस्य मस्तके सूर्यरथवहन-पर्यटतां सप्तानां घोटानाम् अष्टाविंशतिरपि खुरस्थाप्या वदन्ति ।। 58 ।।

प्रमदवन-पुष्पवाटिका-कृत्रिमनदी-क्रीड़ाशैल-धारागृह-यन्त्रव्यजनश्रृङ्गारसङ्केत माधवीमण्डप-विश्रामचत्वर-चित्रशाला- खट्वाहिण्डोल-कुसुमशय्या-प्रदीपमाणिक्य- चन्द्रकान्तशिला- चतुस्समपल्वलानां परमार्थं पृच्छ सज्ञानम्, ए वाव ! अभ्यन्तरस्य वार्तां को जानाति ? ।। 59 ।।

एवं प्रेक्षितो दूरप्रसृतो द्वारकोष्ठः ।
क्षणं मुहूर्तं विश्रान्तः, शिष्टपदिकेन परिचयः प्रमाणितः ।
गुणेन अनुरञ्जितो लोकः, सर्व-भवनस्य मर्म ज्ञातम् ।।
सगुणाः सज्ञानाः पृष्टाः, तेन पल्लविता आशा ।
तत उपसन्ध्यं मध्येपुरं, विप्रगृहे कृतो वासः ।। 60 ।।

उस राजभवन के ऊपर हीरा से खचित (जड़े हुए) सोना का घड़ा शोभित हो रहा था, जिस घड़े के माथे पर सूर्य के रथ में जुते दौड़ते हुए सातों घोड़ों के अट्‌टाइसों टाप (खुर का आघात) आवाज कर उठते थे ।

अतिशयोक्ति अलंकार । 'भवन का उच्च होना' कथ्य । सज्ज-छज्ज-छाज । वहन (सं०) = खीचँना । सूर्य के रथ में सात घोड़े होते हैं- यह पुराणों में प्रसिद्ध है । स्थाप्य-ठप्प-टाप (मै०) ।। 58 ।।

(उस महल के पास) आनन्द वन (विलास वन), फुलवाड़ी, बनायी हुई नदी, खेलने हेतु रचित पर्वत, जलधारा युक्त घर, यन्त्र का पंखा,

शृंगार लीला हेतु संकेतित स्थान, माधवीलता से बना मण्डप, विश्राम का चबूतरा, चित्रों से अलंकृत घर, माधवीलता से बना मण्डप, विश्राम का चबूतरा, चित्रों से अलंकृत घर, खटिये का झूला, फूलों का बिछावन, प्रदीप का काम करता हुआ हीरा, चन्द्रकान्त पत्थर (मणि) और चार सुगन्धित वस्तु मिला छोटा जलाशय इन सबों का असली परिचय (परमार्थ) जानने के लिए चतुर व्यक्ति को ही पूछिये । अरे बाप ! भीतर महल की हाल कौन जाने ?

'चन्दनागुरु कस्तूरी कुंकुमैस्तु चतुस्समम्' (अभिधान चिन्तामणि), चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम को समान मात्रा में मिलाने से चतुस्सम बनता है । सज्ञान-सयाण-सिआन (मै०) ।। 59 ।।

इस तरह उस द्वारप्रकोष्ठ को दूर तक फैला हुआ देखा । वहाँ (राजा कीर्त्ति सिंह ने सदलबल) कुछ देर तक विश्राम किया, (द्वार पर नियुक्त) प्रधान सिपाही से अपना परिचय प्रमाणित कराया, अपने गुणों से वहाँ के लोगों को प्रसन्न किया, सभी महलों के रहस्य को जाना । गुणवान् चतुर व्यक्तियों से पूछताछ की, जिससे आशा पल्लवित हुई, उसके बाद साँझ से कुछ पहले ही मध्यनगर में ही एक ब्राह्मण के घर में वास किया।

एवं-एम ।'क्षण मुहूर्त्त' युग्मशब्द कालविशेषवाचक हैं- क्षण=चौथाई सेकेंड, मुहूर्त्त=24 मिनट । शिष्ट-सिट्ठ=प्रधान, मान्य । पदिक = सिपाही, पदाधिकारी ।। 60 ।।

(स्रग्धरा छन्दः)

सीदत्प्रत्यर्थिकान्ता-मुखमलिनरुचां वीक्षणैः पङ्कजानां
त्यागै र्बद्धाञ्जलीनां तरणिपरिचितै र्भक्तिसम्पादितानाम् ।
अन्यद्वारा-कृतार्थ-द्विज-निकरकरस्थूल-भिक्षाप्रदानैः
कुर्वन् सन्ध्यामसन्ध्यां चिरमवतु महीं कीर्त्तिसिंहो नरेन्द्रः ॥ 61 ॥

इति श्रीमट्ठक्कुर विद्यापतिविरचितायां कीर्त्तिलतायां द्वितीयः पल्लवः ॥

राजा कीर्त्ति सिंह सन्ध्या को असन्ध्या (मध्याह्न) बनाते हुए चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करें । सन्ध्या को असन्ध्या इन कारणों से बनाते हैं- (1) सीदित होती हई शत्रुपत्नियों के मुखों की मलिन शोभावाले कमलों को देखने से (कमल की रुचि मध्याह्न काल में ही धूप लगने से मलिन होती है, पर शत्रुपत्नी के मुख कमल अभी सायंकाल में रुचिहीन हो गये, क्योंकि रात्रिविश्राम की चिन्ता है अर्थात् इन्होंने शत्रुओं को परास्त कर दिया ।) (2) भक्तिपूर्वक किये गये अपने बद्धाञ्जलियों के त्याग के द्वारा, जो त्याग सूर्य के पूर्ण परिचित है (प्रति सन्ध्याकाल अपनी अञ्जलि में जल पुष्पादि भर कर सूर्य को देते हैं जिसे सूर्य जानते ही हैं)–फिर दूसरे पक्ष में- कर्त्ति सिंह में भक्ति करने वाले शत्रु, जिनके हाथ बन्धे हैं, उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर ये उन्हें असन्ध्या में ही त्याग देते हैं, बन्धन मुक्त कर देते हैं) जिनके त्याग सूर्य से परिचित ही हैं । (3) दूसरों द्वारा अकृतार्थ (धन न पा सकने वाले) ब्राह्मणों के हाथों में पुष्ट भिक्षा देकर (दिन में ही), पक्षान्तर में दूसरों (नौकर आदि) के द्वारा कृतार्थ (भोजन पा चुकने वाले) द्विजों (पक्षियों) के समूह के मुखों में प्रचुर दाना सन्ध्या काल में ही राजा लोग देते हैं ।

तात्पर्य यह कि कीर्त्ति सिंह दिन में ही शत्रु नारी के मुखकमल को मलिन कर देते हैं जब कि कमल शाम को मौलता है, हथकड़ी लगे शत्रु को भक्तियुक्त देखकर दिन में ही खोल देते हैं जब कि बद्धाञ्जलि को सन्ध्या के समय अर्घ्य देकर खोला जाता है और द्विजों [ब्राह्मणों] को दिन में ही दान देते हैं, जब कि राजा लोग द्विजों [पक्षियों] को सन्ध्या में ही दाना देते हैं ।

द्विज, अकृतार्थ–कृतार्थ, बद्धञ्जलि आदि के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार एवं सन्ध्या को असन्ध्या बनाने में विरोधाभास अलंकार है । कीर्त्ति सिंह के भावी विजय एवं प्रतापातिशय की सूचना यहाँ वर्णित है ।। 61 ।।

इति कीर्तिलता में दूसरा पल्लव।

अथ तृतीयः पल्लवः

अथ भृङ्गी पुनः पृच्छति–

[दोहा छन्द]

कण्ण समाइअ अमिअ-रस, तुज्झु कहन्ते कन्त ।
कहहु विअक्खण पुनु कहहु, तो अग्गिम वित्तन्त ॥ 1 ॥

[भृङ्गः कथयति]–

(रड्डा छन्द)

रअणि विरमिअ हुअउ पच्चूस ॥
तरणि तिमिर संहरिअ, हसिअ भिङ्ग अरविन्द-कानन ।
निन्दे नअन परिहरिअ, उट्ठि राए पक्खारु आनन ॥
गए उज्जीर अराहिअउ, जम्पिअ सकलेओ कज्ज ।
जइ पहु बड़ओ पसन्न होअ, तओ सिट्ठाअत रज्ज ॥ 2 ॥
तब्बे मन्तिन्हि किअउ पत्थाब ॥
पातिसाह गोचरिअ, सुभ मुहुत्त सुखे राजे भेट्टिअ ।
हअ अम्बर वर लहिअ, हीअ दुःख बेराग मेट्टिअ ॥
खोदालम्ब सुपसन्न हुअ, पुच्छु कुसलमय वत्त ।
पुनु पुनु पुनु पन्नाम कए, कित्तिसिंह कह बुत्त ॥ 3 ॥
अज्ज उच्छव अज्ज कल्लान ॥
अज्ज सुदिन सुमहुत्त, अज्ज माए मझु पुत्त जाइअ ।
अज्ज पुण्ण पुरिसत्त्थ, पातिसाह-पापोस पाइअ ॥
अकुसल वेविहि एक्क पइ, अवर तुम्ह परताप ।
अरु लोअन्तर सग्ग गउ, गएन राय मझु बाप ॥ 4 ॥

(जयकरी छन्द)

फरमान भेल 'कञोन ताहि । तिरहुति लेल जन्हि साहि' ॥
'डरे कहिनी कहए न आन । ञेहाँ तोहेँ तहाँ असलान' ॥ 5 ॥

कर्णे समायितः अमृतरसः, तव कथयतः कान्त !
कथय विचक्षण ! पुनः कथय, ततोऽग्रिमवृत्तान्तम् ॥ 1 ॥
रजनी विरता, अभवत् प्रत्यूषः ॥
तरणिना तिमिरं संहृतं, हसितं भृङ्गेण अरविन्द-कानने ।
निद्रया नयनं परिहृतम् उत्त्थाय राज्ञा प्रक्षालितम् आननम् ॥
गत्वा सचिवः आराधितः, जल्पितं सकलमपि कार्यम् ।
यदि प्रभुः परमोऽपि प्रसन्नो भवति, तथापि शिष्टायत्तं राज्यम् ॥ 2 ॥
तदैव मन्त्रिणः कृतवन्तः प्रस्तावम् ॥
पातिसाहः गोचरीकृतः, शुभमुहूर्त्ते सुखेन राज्ञा मिलितः ।
हयाम्बरवरं लब्धं, हृदयस्य दुःखवैराग्ये मार्जिते ॥
खोदालम्बः सुप्रन्नोऽभूत्, अपृच्छत् कुशलमयीं वार्त्ताम् ।
पुनः पुनः पुनः प्रणामं कृत्वा, कीर्त्तिसिंहोऽकथयद् वृत्तम् ॥ 3 ॥
अद्य उत्सवः अद्य कल्याणम् ॥
अद्य सुदिनम्, अद्य सुमुहूर्त्तम्, अद्य माता मां पुत्रमजीजनत् ।
अद्य पूर्णः पुरुषार्थः, पातिसाह-पादाश्रयः प्राप्तः ॥
अकुशलं द्वयोरपि एकमेव, अवरः तव प्रतापः ।
अपरं लोकान्तरं स्वर्गं गतः गणेश्वरो राजा मम तातः ॥ 4 ॥
राजाज्ञाऽभूत्-"कश्चाऽसौ । तीरभुक्तिः गृहीता येन साधयित्वा" ।
"दरेण तथ्यं कथयति नान्यः । अत्र त्वं, तत्र असलानः" ॥ 5 ॥

इसके बाद भृंगी फिर पूछती है- हे कान्त ! तुम्हारे द्वारा कहे जाते यह कथामृतरस मेरे कानों में समा गया है । हे बुधवर ! आगे का वृत्तान्त [घटना] फिर फिर कहो ॥ 1 ॥

भौंरा कहता है- रात बीती, सबेरा हुआ, सूर्य ने अन्धेरे को भगाया, कमल के वन में आकर भौंरा हँसने लगा, निन्द ने आँखों को छोड़ दिया, और राजा कीर्ति सिंह ने उठकर मुँख को प्रक्षालित किया, जाकर मंत्री की अराधना की और अपना सभी काम बतला दिया, क्योंकि यदि राजा बहुत भी प्रसन्न हो जाय तो भी प्रधान पदाधिकारी के अधीन ही काम रहता है।

प्रत्यूष-पच्चूस । पखारु [मै०]=धो डाला । गए [मै०]- जाकर । वजीर [फा०]-उज्जीर=मन्त्री । शिष्टायत्त=शिष्टों [प्रधान कर्मचारियों] के अधीन । अर्थान्तरन्यास अलंकार ।। 2 ।।

तब मन्त्री ने बादशाह से प्रस्ताव किया [और बादशाह ने कीर्त्ति सिंह को तुरत बुलाया] । उन्होंने बादशाह को देखा, शुभ मुहूर्त्त में आसानी से उन से भेंट की, घोड़ा और उत्तम वस्त्र प्राप्त किया और हृदय के दुःख और वैराग्य को मिटाया । संसार के अधिपति सुप्रसन्न हुआ और कुशलमय बात पूछी । तब वार वार प्रणाम कर कीर्त्ति सिंह ने वार्ता कही ।

'पात्साहो नृपे प्रोक्तः'-पारसीक प्रकाश । खुदालम्ब [फा०]=संसार का शासक । वार्ता-वत्त । वृत्त-बुत्त ।। 3 ।।

मेरे लिए आज उत्सव है, आज कल्याण है, आज सुदिन है, शुभ मुहूर्त्त है, यथार्थ में आज ही मेरी माता ने मुझ पुत्र को जन्म दिया है, आज मेरा पुरुषार्थ [जीवन का लक्ष्य] पूर्ण हुआ है जो मैंने बादशाह की पादुका पायी है । पर हम दोनों [आप और मैं] का अकुशल एक ही विषय का है कि आप का प्रताप न्यून हुआ और मेरे पिता गणेश्वर राय परलोक स्वर्ग चल बसे ।।

अद्य-अज्ज-आज । जाइअ=जन्म दिया । पापोश [फा०] = जूता । गणेश का मुसलमानीय उच्चारण गएनेस या गएन ।। 4 ।।

राजादेश हुआ कि वह कौन है जिसने तिरहुत को दखल कर लिया है ? [राजा कीर्त्ति सिंह दबी आवाज में बोले]-डर के मारे यह हाल कोई नहीं कह रहा है । बात यह है कि जैसे आप यहाँ हैं, वैसे ही वहाँ [तिरहुत में] 'असलान' नाम का तुर्क है ।

पूर्णतः यह अंश मैथिली में है । फरमान [फा०]=आज्ञा । भेल [मै०] = हुआ । कतम-कञोन-कौन । ताहि [मै०]=वह । जन्हि [मै०]= जिन्होंने । साध [सं०] -साहि [मै०]=साधित कर ॥ 5 ॥

(रड्डा छन्द)

पढम पेल्लिअ तुज्झु फरमान ॥
गएन राए तो वधिअ, तौन सएर बिहार चापिअ ।
चलइते चामर परइ, धरिअ छत्त तिरहुति उगाहिअ ॥
सब्बहु तोकेँ रोस नहि, रज्ज करओ असलान ।
अबे करिअउ अहिमान केँ, अज्ज जलञ्जलि दान ॥ 6 ॥

(दोहा)

बे-भूआला मेइनी, बेण्णा एक्का नारि ।
सहए न पारए बेवि भर, अवस कराबए मारि ॥ 7 ॥

(रड्डा)

भुवन जग्गइ तुम्ह परताप ॥
तुम्हे खग्गे रिउ दलिअ, तुम्हे सेबइ सबे राए आबइ ।
तुम्हे दाने महि भरिअ, तुम्ह कित्ति सबे लोअ गाबइ ॥
तुम्हे ण होसउ असहना, जइ सुनिअउँ रिउ नाम ।
इअर बापुरा की करओ, वीरत्तण निञ ठाम ॥ 8 ॥
एम कोप्पिअ सुनिअ सुरुतान ॥
रोमञ्चिअ भुअ जुअल, भौँह जुअल भरेँ गेँट्ठि परिअउ ।
अहर बिम्ब पप्फुरिअ, नअने कोकनद कन्ति धरिअउ ॥
खान उमारा सब्बके, तंखने भउ फरमान ।
अपनेहु साँठे सम्पलहु, तो तिरहुत्ति पआन ॥ 9 ॥

प्रथमं प्रेरितः (उपेक्षितः) तव आदेशः ।।
गणेशराजस्ततो हतः, तेनैव सकलो विहार आक्रान्तः ।
चलिते चामरः पतति, धृत्वा छत्रं, तीरभुक्तिम् उद्गाहते ।।
ततोऽपि तव रोषो नहि, राज्यं करोतु असलानः ।
अतः करोतु अभिमानाय अद्य जलाञ्जलि-दानम् ।। 6 ।।
द्विभूपाला मेदिनी, द्विनृका एका नारी ।
सोढुं न पारयति द्वयोरपि भारम्, अवश्यं कारयति मारम् ।। 7 ।।
भुवने जागर्ति तव प्रतापः ।।
त्वया खड्गेन रिपुर्दलितः, त्वां सेवितुं सर्वे राजानः आगच्छन्ति ।
त्वया दानेन मही भरिता, तव कीर्तिं सर्वे लोका गायन्ति ।।
त्वं न भवसि असहिष्णुः, यदि श्रुत्वापि रिपुनाम ।
इतरो वराकः किं करोतु, वीरत्वं निजस्थाने ।। 8 ।।
एवं कुपितः श्रुत्वा सुरत्राणः ।।
रोमाञ्चितं भुजयुगलं, भ्रूयुगलभरेण ग्रन्थिः परिगता ।
अधरविम्बः प्रस्फुरितः, नयनाभ्यां कोकनद-कान्तिर्धृता ।
खानानां धनिनां सर्वेषां कृते, तत्क्षणे अभूद् राजादेशः ।
आत्मनोऽपि सम्भारैः सम्पद्यतां, ततः तीरभुक्ति-प्रयाणम् ।। 9 ।।

पहले उसने आपके आदेश की उपेक्षा की, तब गणेश राय को मार कर समूचे बिहार सूबे को दखल कर लिया । उसके चलने पर चँवर डुलाया जाता है और वह छत्र धारण कर तिरहुत में कर उगाहता है । फिर भी आप को क्रोध नहीं हो रहा है, तब तो असलान राज्य कर ले । ऐसी स्थिति में अब आप अपने अभिमान को समाप्त कर लें ।

काव्यलिङ्ग अलंकार । प्रथम-पठम-पढ़म । प्रेर-पेल्ल=टालना । तौन [हिन्दी]=उसने । सकल-सअल-सअर-सएर । बिहार=मुसलमानों के सल्तनत में मिथिला और मगध को विहार सूबा कहा जाता था जो नाम खिज्र खाँ के समय में प्रचलित हुआ ।

चापिअ [मै०]=दबाकर रखना, पैरों तले दबाना, जबरन दखल करना। उघब [मै०]=ढोना, उघाएब=ढुलवाना। उगाहिअ=वसूल करना। करओ [मै०]= करें। जलाञ्जलि=जलपूर्ण अंजलि मृतव्यक्ति को दी जाती है और तब से उससे सम्पर्क छूट जाता है ॥ 6 ॥

दो राजा वाली पृथ्वी (देश) और दो पुरुष वाली नारी, उन दोनों के भार को नहीं कह सकती है, दोनों में मारकाट अवश्य करा देती हैं।

द्वे-बे-दो। द्विनृका-दो नर (पुरुष) वाली। वेवि=दोनों के। दीपक अलंकार ॥ 7 ॥

संसार भर में आप का प्रताप जाग रहा है। आपके खड्ग ने शत्रु को दलित किया है, आप की सेवा करने सभी राजे आते हैं, आपने दान से पृथ्वी को भर दिया है और आप के यश को सभी गाते हैं। यदि शत्रु के नाम को सुनकर भी आपको असह्य न हो तो दूसरा बेचारा करे ही क्या ? ऐसी स्थिति में वीरता तो अपनी जगह पड़ी ही रह जाएगी।

विशेषोक्ति एवं अर्थापत्ति अलंकार। सुनिअउँ-सुनिअहुँ [मै०] = सुनकर भी। सम्पूर्ण पद्य प्राचीन मैथिली में हैं ॥ 8 ॥

इस तरह कीर्त्ति सिंह की ऐसी स्थिति को सुन कर सुलतान कुपित हो गया। उसकी दोनों भुजाएँ रोमांचित हो गयीं, दोनों भौँहों की तनाव से गाँठ पड़ गयीं, अधरबिम्ब [बिम्ब फल के समान होंठ] फड़कने लगे और आँखों ने लाल कमल की कान्ति को धारण किया। खाँ, अमीर लोग आदि सभी उच्च अधिकारियों को उसी समय अदेश दिया गया कि सभी अपनी अपनी साज सज्जा के साथ तिरहुत जाने के लिए तैयार हो जाएँ।

सुल्तान का अवहट्ट रूप सुरुतान। गेँठि [मै०]। अमीर [फा०] का बहुवचन उमरा का अवहटठ रूप उमारा। संस्थापन (सं०)- संठावण [प्रा०] - साँठव [मै०]= सजाकर रखना ॥ 9 ॥

[षट्पद छन्द]

तपत हुअउ सुरुतान, रोल उच्छलु दरबारहिं।
जन-परिजन सञ्चरिअ, धरणि धअमस पअ भारहिं ॥

तात भुअन भए गेल, सब्ब मन सबतहु सङ्का ।
वाउ वहिअ परचण्ड वेअ जनि उज्जल लङ्का ॥
देमान अरदगर गद्दवर, कुरुबक बैसल अदप कइ ।
जनि अबहि सबहि दहु धाए कहु, पकलि देओ असलान कइ ॥ 10 ॥

(रड्डा छन्द)

तेन्हे सोअर बेबि सानन्द ॥
कित्तिसिंह वर नृपति, लए पसाअ बाहरओ आइअ ।
इत्त्थन्तर कुविवत्त, वत्त किच्छु सुरुताने पाइअ ।
पुब्बे सेना सज्जिअउ, पच्छिम हुअउ पआन ।
आन करइते आन भउ, बिहि-चरित्त को जान ॥ 11 ॥

(दोहा छन्द)

तंखणे चिन्तइ राअ सो, सब्बे हुअउ महु लज्ज ।
पुनु कि परिस्समे सिज्झिहइ, कालहि चुक्किअ कज्ज ॥ 12 ॥

(गद्य)

तइसना प्रस्ताव चिन्ताभरावनत राअन्हि करो मुखारविन्द देखि महायुवराज श्रीमद्वीरसिंहदेव मन्त्री भणिअ-अइसनेञो उपताप गुणिञे न गणिअइ ॥

(रड्डा)

दुक्खेँ सिज्झइ राअ-घर कज्ज ॥
तं उब्वेअ न करिअ, सुहिअ पुच्छि संसअ हरिज्जिअ ।
फल दैवह आअत्त, पुरिस-कम्म साहस करिज्जिअ ॥
जइ साहसहु न सिद्धि हो, झंख-करिब्बउ काह ।
होञे होसइ एक्क पइ, वीर पुरिस उच्छाह ॥ 14 ॥

अहवा,

(रड्डा छन्द)

ओ विअक्खण, तुम्हे गुणमन्त ॥
ओ सधम्म तोहे̐ सुद्ध, ओहु सदअ तोहे̐ रज्जखण्डिअ।
ओ जिगीसु तोहे̐ शूर, ओहु राअ तोहे̐ राअ-पण्डिअ ॥
पुहुवीपति सुरुतान ओ, तुम्हें राअकुमार ।
एक्कचित्त जइ सेविअइ, धुअ होसइ परकार ॥ 15 ॥

तप्तोऽभूत् सुरत्राणः, कोलाहल उच्छलितो राजद्वारे ।
जन-परिजनाः सञ्चरिताः, धरणिः विमर्दिता पदभारैः ॥
तप्तं भुवनम् अभूत्, सर्वमनसि सर्वतोऽपि शङ्का ।
वायुरवहत् प्रचण्डवेगः, यथा उज्ज्वलिता लङ्का ॥
लेखापालाः, दण्डाधिपाः, भूनिरीक्षकाः शस्त्रशिक्षका उपविष्टा नमस्कृत्य ।
यथा अधुनैव सर्व एव धावित्वा, निगृह्य दास्यन्ति असलानाय गत्वा ॥ 10 ॥
तेन सादरौ द्वावपि सानन्दौ ॥
कीर्त्तिसिंहो वरनृपतिः, नीत्वा प्रसादं बहिरपि आगतवान् ।
अत्रान्तरे कुविवर्त्त-वार्तां काञ्चित् सुरत्राणः प्राप्तवान् ॥
पूर्वस्यां सेना सज्जिता, पश्चिमायाम् अभूत् प्रयाणम् ।
अन्यस्मिन् क्रियमाणे अन्यदभूत्, विधिचरित्रं को जानाति ॥ 11 ॥
तत्क्षणे चिन्तयति राजा सः, सर्वा अभूत् मम लज्जा ।
पुनः किं परिश्रमेण सेत्स्यति, काले भ्रष्टं कार्यम् ॥ 12 ॥

तादृशे प्रस्तावे चिन्ताभरावनतं राज्ञो मुखारविन्दं दृष्ट्वा महायुवराजः श्रीमद्वीरसिंहदेवो मन्त्री भणितवान्-एतादृशोऽपि उपतापो गुणिभि र्न गण्यते ॥ 13 ॥

दु:खेन सिद्ध्यति राजगृहे कार्यम् ।।
तत उद्वेगो न क्रियतां, सुहृदं, पृष्ट्वा संशयो ह्रियताम् ।
फलं दैवस्य आयत्तं, पुरुष-कर्मणि साहसः क्रियताम् ।।
यदि साहसेनापि न सिद्धि र्भवति, सन्तापः क्रियतां कथम् ।
भावि भविष्यत्येकमात्रं, वीरपुरुष उत्सहते ।। 14 ।।

अथवा,

स विचक्षण:, त्वं गुणवान् ।।
स सधर्म:, त्वं शुद्ध:, स सदय:, त्वं राज्यखण्डितः ।
स जिगीषु:, त्वं शूर:, स राजा, त्वं राजपण्डितः ।।
पृथिवीपतिः सुरत्राणः स, त्वं राजकुमारः ।
एकचित्तेन यदि सेव्यते, ध्रुवं भविष्यति प्रतीकारः ।। 15 ।।

जब सुल्तान क्रुद्ध हुआ तो दरवार में खलबली मच गयी, सामान्य लोग एवं परिजन इधर उधर दौड़ने लगे, उनके पैरों के भार से पृथ्वी डगमगाने लगी । भुवन तप्त हो गया, सभी के मन में सभी ओर से शङ्का होने लगी, वायु प्रचण्ड वेग से बहने लगा जैसे लङ्का जल रही हो । दीवान, अरदगर, गद्दवर और कुरबक अधिकारी गण राजा को अदप (शिष्टाचार) कर बैठ गए, मनो सभी लोग दौड़ कर अभी ही असलान को पकड़ के ला देंगे ।

तप्त-तात या तपत । उज्जल = ऊर्ध्वज्वल = ऊपर की ओर जलना । दीवान आदि चार उच्चाधिकारी हैं, ये फारसी मूलक शब्द हैं- दीवान (मन्त्री), अर्दगर (दण्डाधिकारी), गर्दावर (भूमिनिरीक्षक), कोरवेग (अस्त्राधिकारी) । अदब=राजा के प्रति नतमस्तक होना ।। 10 ।।

इससे वे दोनों सहोदर [वीर सिंह एवं कीर्त्तिसिंह] परम आनन्दित हुए । तब श्रेष्ठ राजा कीर्त्तिसिंह बादशाह के प्रसाद लेकर बाहर भी चले आये । इसी बीच कुछ गड़बड़ी की बात सुलतान ने पायी [उनके सामने दूसरी ओर से शत्रु के आक्रमण का समाचार आया] । अतः जो सेना पूरब

की ओर (तिरहुत की तरफ) जाने को सज्जित हुई थी, उसका प्रस्थान पश्चिम की ओर हो गया। (कीर्त्तिसिंह को) अन्य कार्य करते हुए उससे अन्य ही कार्य हो गया, विधाता के चरित्र को कौन जान सकता है ?

द्वे अपि-वेबि=दोनों। अन्य-आन [मै०] 'आन करइते आन हो'- मैथिली लोकोक्ति। विभावना एवं अर्थान्तरन्यास अलंकार ॥ 11 ॥

उस समय राजा ने सोचा कि सब तरह से हम लज्जित हुए, अवसर पर चुका हुआ काम क्या फिर से कितने ही परिश्रम करने पर सिद्ध हो सकता है ? कभी नहीं ॥ 12 ॥

उस तरह के प्रसंग में चिन्ता के भार से झुके हुए राजा कीर्त्ति सिंह के मुखकमल को देख कर महायुवराज मन्त्री श्रीमान् वीर सिंहदेव ने कहा- इस तरह के दुःख की गणना गुणवान् नहीं करते हैं ॥ 13 ॥

राजदरवार में कार्य तो दुःख से ही सिद्ध होता है। इस लिए आप उद्वेग न करें, मित्रों से पूछ कर संदेह दूर करें, फल तो भाग्य के अधीन है, आप अपने पौरुष कार्य में साहस करें। यदि साहस से भी सिद्धि नहीं मिलती है तो भी सन्ताप क्यों करते हैं, होनी हो कर ही रहेगी। इस लिए वीर पुरुष केवल उत्साह करते हैं, दुःख नहीं।

झंख (देशी शब्द)=सन्ताप करना। प्रति-पइ। अर्थान्तरन्यास अलंकार ॥ 14 ॥

अथवा वह सुलतान विचक्षण [विज्ञ] है तो तुम गुणवान् हो, वह धर्मात्मा है तो तुम शुद्ध हो, वह सदय है तो तुम राज्यच्युत हो, वह विजायार्थी है तो तुम शूर हो, वह राजा है तो तुम राजपण्डित [राज चलाने में निपुण] हो, वह सुलतान पृथ्वी का पति है तो तुम राजकुमार हो। [दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होने से] तुम यदि एकचित्त से उनकी सेवा करो तो निश्चय ही कार्य होने का कोई उपाय होगा ॥ 15 ॥

(दोहा)

एत्थन्तर पुनु रोल पड़ु, सेन्न संख को जान।

नलिनि-पत्त जओ महि चलइ, सुरुतानी तकतान ॥ 16 ॥

(निशिपाल छन्द)

चलिअ तकतान, सुरुतान इमराहिमो ।
कुरुम भण, धरणि ! सुन, धरण बल नाहि मो ॥
गिरि टरइ, महि पड़इ, नाग-फन कम्पिआ ।
तरणि रथ, गगन पथ, धूलिभरे झम्पिआ ॥ 17 ॥
तबल सत, बाजु कत, भेरि भरे फुक्किआ ।
पलअ धन, वज्ज सन, इअर बल लुक्किआ ॥
तुरुक लस, हरखे हस, अस्स धसफालहीं ।
मान धर मारि कर, कड्ढि करवालहीं ॥ 18 ॥
मअ गलइ, पअ पलइ, गअ चलइ जंखणे ।
सत्तु घर, उपजु डर, निन्द नहि झंखणे ॥
खग्ग लइ, गब्ब कइ, तुलुक जबे जुज्झई ।
अबि सगर, सुर णअर, संक पलि मुज्झई ॥ 19 ॥
सोखि छल, किअउ थल, पत्ति पअ भारहीं ।
जानि धुअ, संक हुअ, सअल संसारहीं ॥
केबि अरि, बान्धि धरि, चरण तल अप्पिआ ।
केबि परनारि-कर, अप्पु करे थप्पिआ ॥ 20 ॥

एतदन्तरे पुनः कोलाहलः पतितः सैन्यसंख्यां को जानाति ।
नलिनीपत्रमिव मही चलति, सुरत्राणीयं सिंहासनम् ॥ 16 ॥
चलितं सिंहासनं, सुरत्राण इब्राहिमोऽपि ।
कूर्मो भणति, धरणि ! शृणु, धरणबलं नहि मयि ॥
गिरिः सरति, मही पतति, नागफणा कम्पिता ।

तरणिरथः, गगनपथे, धूलिभरेण झम्पितः ।। 17 ।।
मृदङ्गाः शतम्, अवदन् कति, भेरी भरेण फूत्कृता ।
प्रलय-घनः वज्रस्वनम् इतर-बलं लुक्कितम् ।।
तुरुष्काः लक्षं, हर्षेण हसन्ति, अश्वा दशास्फालिताः ।
मानं धरन्ति, मारं कुर्वन्ति, कर्षयित्वा करवालम् ।। 18 ।।
मदो गलति, पदं पतति, गजाः चलन्ति यत्क्षणे ।
शत्रुगृहे उत्पन्नो दरः, निद्रा नहि सन्तापेन ।।
खड्गं गृहीत्वा, गर्वं कृत्वा, तुरुष्का यदा युध्यन्ति ।
अपि सकलं सुरनगरं, शङ्कायां पतित्वा मुह्यति ।। 19 ।।
संशोष्य जलं, कृतं स्थलं, पदाति-पद-भारैः ।
ज्ञात्वा ध्रुवं, शङ्काऽभूत् सकल-संसारे ।।
केऽपि अरिं बद्ध्वा धृत्वा, चरणतले अर्पितवन्तः ।
केऽपि परनारीकरम् आत्मकरे स्थापितवन्तः ।। 20 ।।

इसी बीच फिर कोलाहल हुआ । सेना की संख्या को कौन जान सकता है ? सुलतानी तख्तान [सिंहासन] जब चल पड़ा तो पृथ्वी कमल के पत्ते के समान डोलने लगी । तख्तेराँ [फा०]– तकतान [अव०]=यात्रा में साथ चलने वाला सिंहासन । उपमा अलंकार ।। 16 ।।

सुलतान इब्राहिम साह का तख्तान जब चल पड़ा तो [पृथ्वी के आधार] कूर्म [कछुए] ने कहा-हे धरणी ! सुनो, तेरे धारण करने का बल मुझे नहीं रहा । तब पहाड़ टलने लगा और पृथ्वी पर गिरने लगा । शेषनाग [जो पृथ्वी के भार उठाये हुए हैं] का फणा काँपने लगा । सूर्य का रथ आकाश मार्ग में धूलि के भर जाने से झँप गया [ओझल हो गया] ।

पुराणों के अनुसार पृथ्वी शेषनाग के फणा पर तथा शेषनाग कछुए के पीठ पर स्थित है । सेनाओं के भार से वे व्याकुल हो उठे और सेना के पैरों से उठे धूलों से सूर्य भी ओझल हो गया । अतिशयोक्ति ।। 17 ।।

सैकड़ों मृदंग कितने ही जोर से बजने लगे, रण के बाजे जोर से फूँके गये । प्रलय काल के मेघ वज्र की आवाज करने लगे, जिससे दूसरों [शत्रुओं] के सैन्य छिप गये । लाखों तुर्क हर्ष से हँसते और घोड़ों को कुदाते फनाते थे । मान रखते हुए तलवार खींच कर मार करते थे ।। 18 ।।

जब हाथी चलने लगे तो उनसे मद चूने लगा और उस पर लोगों के पैर फिसलने लगे । शत्रु के घर डर उपज गया, उन्हें चिन्ता से नीन्द नहीं होती थी । तरवार लेकर गर्व करके जब तुर्क लड़ने लगे तो सम्पूर्ण स्वर्ग भी शंका में पड़कर मुर्झा गया ।। 19 ।।

पैदल सैनिकों ने अपने पैरों के भार से जल को सुखा कर स्थल बना दिया, यह जानकर सम्पूर्ण संसार को निश्चय ही शंका (या भय) हो गयी । किसी ने शत्रु को बान्धकर पकड़ के बादशाह के चरण तले रख दिया और किसी ने शत्रुकी स्त्री के हाथ को अपने हाथ में थाम लिया । पलि (अव०)- पड़ि (मै०)= पकड़कर । सोखि (मै०)= सुड़ककर या सोख कर । ध्रुवं-धुअ = निश्चय ।। 20 ।।

[पद्मावती छन्द]

चौदीसा अन्तर, दीप दिगन्तर, पातिसाह दिग्विजय भम ।
दुग्गम गाहन्ते, कर चाहन्ते, बेरि सत्त्थ संहणइ जम ।। 21 ।।

[षट्पद छन्द]

बन्दी करिअ बिदेस, गरुअ गिरि पट्टन जारिअ ।
साअर सीमा करिअ, पार भए पारक मारिअ ।।
सरबस डाँडिअ सत्तु, घोल लिअ पञेड़ा धाड़े ।
ठाम एक उब्वरिअ, ठाम दस मारिअ धाड़े ।।
इमराहिम साह पआनओ, पुहुवि नरेसर कमन सह ।
गिरि साअर पार उबार नहि, रैयत भेले जीव रह ।। 22 ।।

(बाली छन्द)

रैयति भेले जहाँ जाइअ । खढ़ एकओ छुअए न पाइअ ॥
बड़ि साति छोटाहु काज । कटक लटक पटक राज ॥ 23 ॥
चोर घुमाइअ नाअक हाथेँ । दोहाइ पेलिअ दोसरे माथेँ ॥ 24 ॥

चतुर्दिशासु अन्तरे द्वीपे दिगन्तरे, पातिसाहो दिग्विजये भ्रमति ।
दुर्गे गाहमानः करं वाञ्छन् वैरिसार्थं संहन्ति यमः ॥ 21 ॥
बन्धीकृतो विदेशः, गुरुगिरिपट्टनं ज्वालितम् ।
सागरः सीमा कृतः, पारे भूत्वा पारक्या मारिताः ॥
सर्वस्वं दण्डितः शत्रुः, घोटो गृहीतः, पद्धतिः धारिता ।
स्थाने एकस्मिन् उद्वृतश्चेत्, स्थानेषु दशसु मारितः धाट्या ॥
इब्राहिमशाह-प्रयाणं तत् पृथिव्यां नरेश्वरः कतमः सहते ।
गिरिसागरपारेऽपि उद्धारो नहि, करदीभूय जीवन् तिष्ठति ॥ 22 ॥
करदीभूय यत्र याति स्म । तृणम् एकमपि स्प्रष्टुं न प्राप्नोत् ॥
बृहती शास्तिः स्तोकेऽपि कार्ये । कटके लटक-पटको राजते ॥ 23 ॥
चौरः परावर्त्तितः नायक हस्तेन । चौर्यविज्ञप्तिः प्रेरिता अन्यस्य मस्तके ॥ 24 ॥

चारों दिशाओं, द्वीपों, दिगन्तरों (कोणों) में बादशाह दिग्वजय के लिए भ्रमण कर रहे हैं, वे दुर्गों को झकझोड़ते हुए कर वसूलते हुए यमराज के रूप में शत्रु के दल को मारते हैं । दुर्ग-दुग्गम=किला । गाह (सं०)= प्रवेशकर झकझोड़ना । साथ-सत्त्थ=झुण्ड । रूपक अलंकार ॥ 21 ॥

विदेश (दूसरे राजा के देश) को अपने राज्य में मिला लिया, बड़े-बड़े पहाड़ों एवं नगरों को जला दिया, समुद्र को अपने राज्य का सीमा बनाया, उसे पार कर शत्रु को मारा । शत्रु को दण्डमें सब कुछ छीन लेते थे और उनके घोड़ लेकर उन्हें पैदल ही रास्ता धरा देते थे, फिर भी वे (शत्रु) आगे एक जगह उवर कर (बचकर) निकल भी जाते थे, तो दस जगह घूसे से मारे जाते थे । इब्राहिम साह के उस प्रयाण को

पृथ्वी पर कौन राजा सह सकता था, क्योंकि उन्हें पर्वत और सागर के पार में भी बचना (उबरना) सम्भव नहीं था, इस लिए वे करदाता प्रजा बन कर ही जीवित रह सके । बन्धीकृतः- बन्दीकरिअ = मिला लिया गया । पारक-उस पार का शत्रु । डाँड़िअ (मै०)- दण्ड देना । पन्था-पञेड़ा (मै०) = पगडंडी, रास्ता । उबरिअ (मै०) = संकट पार करना । धारे-धल (मै०) = घुस्से मारना । रैयत (फा०) = कर देने वाली प्रजा ।। 22 ।।

लोग रैयात बन कर भी जहाँ जाते थे, वहाँ एक भी खढ़ नहीं छू सकते थे । छोटे काम (अपराध) पर भी बड़ी सजा होती थी । उस सेना में लटकों (लम्पटों) एवं पटकों (चापलूसों) की चलती थी । नेता के हाथ से ही चोर को (पकड़े जाने पर भी) लौटा दिया जाता था और दोष दूसरे के माथे पर फेक दिया जाता था । अनुच्छेद 22 से 26 तक मैथिली भाषा में है ।। 24 ।।

सेरेँ कीनि पानि आनिअ । पीबए खने कापड़े छानिअ ।।
पानक सए सोनाक टङ्का । चन्दनक मूले इन्धन बिका ।। 25 ।।
बहुत कौड़ी कनिक थोड़ । घीवक बेचाँ दीअ घोड़ ।।
कुरुआक तेल आङ्ग लाइअ । बाँदी बड़दा सञोघ पाइअ ।। 26 ।।

[रड्डा छन्द]

एम गमिअउ दूर दीगन्त ।।
रण साहस बहु करिअ, बहुत ठाम फल-मूल भक्खिअ ।
तुलुक सङ्ग सञ्चरिञ, परम कट्ठे आचार रक्खिअ ।।
सम्बर निरबल किरिस तनु, अम्बर भेल पुरान ।
जबन सभावहि निक्करुण, तो न सुमरु सुरुतान ।। 27 ।।
वित्तेँ हीन णत्थि बाणिज्ज ।।
णहु विदेस रिन लहिअ, न उण मानधन भिक्ख भावइ ।
राअ-घरहि उप्पत्ति, दीन-वअन णहु वअन आबइ ।।

सेविअ-सामि न सम्भलइ, दैव न पूरइ आस ।
अहह ! महतर किं करउ, गण्डञे गणिअ उपास ॥ 28 ॥
पिअ न चिन्तइ, पुच्छ णहु मित्त ॥
णहु भोअण संपजइ, भित्त भागि जा भुक्खे डड्ढिअ ।
घोल घास णहु लहिअ, दिवसे दिवसे अति दुक्ख बड्ढिअ ॥
तबहु न चुक्किअ अक्खउरि, सिरि केसव काएत्त्थ ।
अरु सोमेसर सन्नगहि, सहि रहिअउ दुरवत्त्थ ॥ 29 ॥

'प्रस्थ'क्रमेण क्रीत्वा पानीयम् आनीतं, पानक्षणे कर्पटेन छन्नम् ॥
ताम्बूलानां शतं, सुवर्णस्य टङ्किकया (मुद्रया) ।
चन्दनस्य मूल्ये इन्धनं विक्रीतम् ॥ 25 ॥
बहुतरा कपर्दिका, कणिकः स्तोकः । घृतस्य मूल्ये दीयते तक्रम् ॥
कुरुबकस्य तैलम् अङ्गे लापितम् । दासी बलीवर्दश्च समर्घौ प्राप्तौ ॥ 26 ॥
एवं गतौ दूरं दिगन्तम् ॥
रणे साहसो बहु कृतः, बहुतरस्थानेषु फल-मूलानि भक्षितानि ।
तुरुष्क-सङ्गे सञ्चरितं, परमकष्टेन आचारो रक्षितः ॥
संवलो निवलितः, कृशा तनुः, अम्बरमभूत् पुराणम् ।
यवनः स्वभावेनैव निष्करुणः, ततो न स्मृतवान् सुरत्राणः ॥ 27 ॥
वित्तेन हीनं नास्ति वाणिज्यम् ॥
न खलु विदेशे ऋणं लब्धं, न पुन र्मानधनेन भिक्षा भाव्यते ।
राजगृहे उत्पत्तिः, दीनवचनं न खलु वदने आगच्छति ॥
सेवितः स्वामी न सम्भरति, दैवं न पूरयति आशाम् ।
अहह ! महत्तरः किं करोतु, गण्डकसंख्यकेन, गणित उपवासः ॥ 28 ॥
प्रियो न चिन्तयति, पृच्छति न खलु मित्रम् ॥
न खलु भोजनं सम्पद्यते, भृत्यो भग्नो गच्छति बुभुक्षया दग्धः ।
घोटो घासं न खलु अलभत दिससे दिवसेऽतिदुःखं वर्धितम् ॥

तदापि न च्युतः आक्षपटलिकः, श्रीकेशवः कायस्थः ।
अपरः सोमेश्वरः सान्धिविग्रहिकः, सोढ्वा स्थितो दुरवस्थाम् ।। 29 ।।

वहाँ सेर के हिसाब से खरीदकर पानी लाते थे, पर पीने के समय कपड़े से उसे छानना पड़ता था, पान के सौ पत्ते लेने में सोना का रुपया देना पड़ता था, चन्दन के मूल्य में जलावन विकता था, कौड़ियाँ बहुत थीं पर उनसे अन्न की थोड़ी कणा (खुद्दी, टूटे चावल) मिलती थी, घी के मूल्य में घोल (तक्र) दिया जाता था, कड़ुआ तेल देह में लगाया जाता था और दासी तथा बैल समान मूल्य में पाये जाते थे ।

युद्धकालिक वस्तुओं का अभाव एवं मूल्य में अतिशय वृद्धि का इसमें वर्णन है । किनि (खरीद कर), पानि (जल), खने = क्षण में, सए=सौ, कनिक=अन्न की कणा ही मिलती थी, बेचाँ=किसी चीज को खरीदने के मूल्य रूप में प्रदेय अन्न, घोड़=तक्र इत्यादि शब्द मैथली भाषा में प्रचलित हैं ।। 25-26 ।।

इस तरह कीर्त्ति सिंह बहुत दूर दिशाके अन्त तक चले गये । रण में बहुत साहस किया, बहुत जगह फल-मूल ही खाया, तुर्कों के साथ रहते हुए बहुत कष्ट से अपने आचार की रक्षा की । उनके संवल (खर्चा के लिए लाए धन) समाप्त हो गये, शरीर दुर्बल हो गया, कपड़े पुराने हो नये । (किन्तु यह सब देखते हुए भी) सुलतान ने इनकी खबर न ली, क्योंकि यवन तो स्वभाव से ही करुणाहीन होते हैं । निवृत्तः-णिवरिअ- निवरल-निघटल (मै०) = निबट गया । अर्थान्तरन्यास अलंकार ।। 27 ।।

धन से हीन के लिए वाणिज्य नहीं है । न तो परदेश में ऋण प्राप्त होता और न ही मान के धनी को भीख माँगना अच्छा लगता है, राजघराने में जन्म होने के कारण दीनवचन भी मुँह पर नहीं आते हैं । सेवा किया हुआ स्वामी (मालिक) यादि सेवक का पोषण न करे, भाग्य यदि आशा न पुराबे, आह ! तब तो महान् व्यक्ति भी क्या करे, चार चार दिन की उपवास की गणना करनी पड़ी । वाणिज्य=राजा की सेवा में बहुत दिन तक अपना धन खर्च कर उससे अनेक गुण धन पाना । महत्तर=अधिक महान्

। गण्डञे=गण्डा (चार) की संख्या में । उपास (मै०)=उपवास, व्रत । काव्यलिङ्ग अलंकार ।। 28 ।।

(इस दुरवस्था में) प्रिय व्यक्ति भी सुध नहीं लेता है, नौकर भी भूख की ज्वाला से दग्ध होकर भाग जाता है, घोड़े घास नहीं पाते हैं– इस तरह दिन दिन कीर्ति सिंह का दुःख बढ़ता गया । तब भी अखौरी श्रीकेशव कायस्थ और सान्धिविग्रहिक सोमेश्वर सेवा करने से चुके नहीं, बुरी हालत को सह कर साथ ही रहे । आक्षपटलिक–अक्खउरि=जुआ खेल का अधिकारी, यह अभी भी कायथ जाति की उपाधि 'अखौरी' के रूप में है । सन्दगहि और अखउलि शब्द वर्णरत्नाकर में राजकीय पदाधिकारी के लिए आया है ।। 29 ।।

[दोहा]

बाणिअ होइ विअक्खणा, धम्म पसारइ हट्ट ।
भित्ता मित्ता कञ्चना, विपअ काल कसबट्ट ।। 30 ।।

[गद्य]

तैसना परम–कष्ट–काष्टा करे प्रस्ताव, दुहु सहोदर समाज अनुचिन्त– अनुचित लाज; आचारक रक्षा, गुणक परीक्षा, हरिश्चन्द्रक कथा, नलक व्यवस्था, रामदेवक रीति, दानक प्रीति । निअएक पतिग्गह, साहस उत्साह, अकृत्य बाध, बलि–कर्ण–दधीचि करो स्पर्धा साध ।। 31 ।।

(दोहा छन्द)

तंखणे चिन्तइ एक्क पइ, कित्तिसिंह वर राए ।
अम्हह एत्ता दुक्ख सुनि, किमि जिब्बिह मझु माए ।। 32 ।।
अच्छइ मन्ति–विअक्खणा, तिरहुति केरा खम्ब ।
मज्झु माए निअ दीजिहइ, तेन्ने हत्थ अवलम्ब ।। 33 ।।

(पज्झटिका छन्द)

तहँ अछए मन्ति आनन्द खान । जे सन्धि भेद विग्गहओ जान ॥
सुपवित्त मित्त सिरि हंसराज । सरबस्स उपेक्खइ अम्ह काज ॥ 34 ॥
सिरि अम्ह सहोअर राजसिंह । सङ्गाम परक्कम रुट्ठ सिंह ॥
गुणेँ गरुअ मन्ति गोविन्ददत्त । तसु वंस बड़ाई कहओ कत्त ॥ 35 ॥
ओ हरक भगत हरदत्त नाम । सङ्गाम कज्ज जनि परसुराम ॥
हेरओ हरिहर धम्माधिकारि । तसु पण्णति होइ पुरिसत्त्थ चारि ॥ 36 ॥
नअ मग्ग चतुर ओझा भवेस । जसु चित्त न लग्गइ कलुस लेस ॥
अरु न्यायसिंघ राउत सुजान । सङ्गाम कज्ज अज्जुन-समान ॥ 37 ॥

वणिग् भवति विचक्षणः, धर्मं प्रसारयति हट्टम् ।
भृत्याः मित्राणि काञ्चनानि, विपत्कालः कषपट्टः ॥ 30 ॥

तादृशे परमकष्ट-काष्ठायाः प्रस्तावे द्वावपि सहोदरौ समवेतौ, अनुचिन्तयतः लज्जाम्, आचारस्य रक्षां, गुणस्य परीक्षां, हरिश्चन्द्रस्य कथां, नलस्य व्यवस्थां, रामदेवस्य कीर्त्तिं, दाने प्रीतिम् । निजस्यैव प्रतिग्रहं, साहसे उत्साहम्, अकृत्ये बाधां, बलिकर्ण-दधीचीनां स्पर्धां च साधयतः ॥ 31 ॥

तत्क्षणे चिन्तयति एकमात्रं, कीर्त्तिसिंहो वरराजः ।
अस्माकम् एतावन्ति दुःखानि श्रुत्वा, कथं जीविष्यति मम माता ॥ 32 ॥
सन्ति मन्त्रिविचक्षणाः, तीरभुक्तिकृते स्तम्भाः ।
मम मात्रे निजः दास्यते तैः हस्तावलम्बः ॥ 33 ॥
तत्र अस्ति मन्त्री आनन्दखाणः । यः सन्धि-भेद-विग्रहानपि जानाति ॥
सुपवित्र-मित्रं श्रीहंसराजः । सर्वस्वम् उपेक्षते अस्मत्कार्ये ॥ 34 ॥
श्रीःअस्मत्सहोदरो राज सिंहः । सङग्राम-पराक्रमे रुष्टसिंहः ॥
गुणेन गुरुर्मन्त्री गोविन्ददत्तः । तस्य वंश-बृहत्तां कथयानि कियतीम् ॥ 35 ॥
स हरस्य भक्तः हरदत्तनामा । सङ्ग्रामकार्ये यथा परशुरामः ॥

पश्यामि हरिहरं धर्माधिकारिणम् ।
तस्य प्रणत्या भवति पुरुषार्थचतुष्कम् ।। 36 ।।
नयमार्गचतुर उपाध्यायो भवेशः । यस्य चित्ते न लगति कलुषलेशः ।।
अपरो न्यायसिंहः राजपुत्रः सुज्ञानः । संग्रामकार्ये अर्जुनसमानः ।। 37 ।।

बुद्धिमान् व्यक्ति व्यापारी होते हैं जो धर्म का हाट लगाते हैं, उनके सेवक और मित्र सोना होते हैं जिनकी कसौटी विपत्ति का समय ही है । (उस समय जो भृत्य या मित्र खरे निकले, उनका ही मूल्य पर्याप्य होता है) । रूपक अलंकार ।। 30 ।।

उस तरह के परम कष्ट की पराकष्ठा के अवसर में दोनों सहोदर भाई समीप होकर सोचने लगे– लज्जा करना अनुचित है, अपने आचार की रक्षा करें, गुण की परीक्षा करें, हरिश्चन्द्र की कथा, नल की व्यवस्था और रामचन्द्र की रीति की याद करें और दान में प्रीति बढ़ावें' । वे अपने आत्मीय व्यक्तियों से धन ग्रहण कर, साहस से उत्साह कर, अकर्त्तव्य कार्य को रोकने लगे एवं बलि, कर्ण और दधीचि इन महादानियों से प्रतिस्पर्धा साधित करने लगे । समाज [मै०] = पास, समीप होना, 'पहुक समाज'– विद्यापति । निजस्यैव– णिअस्सेव्व–निअएक=अपनों का ही । यह अंश मैथिली में है ।। 31 ।।

उसी समय उत्तम राजा कीर्त्ति सिंह एकमात्र यही चिन्ता करने लगे कि हमारे इतने दुःख को सुन कर मेरी माँ कैसे जीवित रहेगी ? प्रति–पइ ।। 32 ।।

[फिर वे आश्वस्त हो गये कि] वहाँ मन्त्रियों में बुद्धिमान् लोग तिरहुत के भार को टेकने वाले खम्भे विद्यमान् हैं, वे मेरी माँ को अपने हाथों का सहारा देंगे ।। 33 ।

वहाँ मन्त्री आनन्द खान हैं जो सन्धि, भेद और विग्रह को जानते हैं, अति पवित्र मित्र श्रीराजहंस हैं जो हमारे कार्य के लिए अपना सर्वस्व त्याग देते हैं । हमारे सहोदर भाई श्री राजसिंह हैं जो संग्राम में पराक्रम करने में क्रुद्ध सिंह ही हैं । गुणों से महान् मन्त्री गोविन्ददत्त हैं जिनके वंश की

बड़ाई कितनी कहूँ ? वे शिव के भक्त हरदत्त नाम के हैं जैसे संग्राम कार्य में परशुराम ही हों । वहाँ धर्माधिकारी हरिहर को देखता हूँ [वे ध्यान में आ रहे हैं] उनकी प्रणति [प्रणाम] करने से चारों पुरुषार्थ [धर्म अर्थ काम मोक्ष] प्राप्त होते हैं । नीतिमार्ग में चतुर भवेश ओझा हैं, जिनके मन में पाप का लेश भी नहीं लगता है और परम ज्ञानवान् न्याय सिंह राउत हैं, जो संग्राम कार्य में अर्जुन के समान हैं ।

अस्ति-अत्थि-अच्छि-अछि [मै०] । अछए-अछिए [मै०] । आनन्द खान ब्राह्मण मंत्री थे, 'खान' आधिपत्य सूचक है । यहाँ कीर्त्ति सिंह के आत्मीय व्यक्तियों की नामावली दी गयी है । रुट्ट सिंह में रूपक एवं सिंह' की आवृत्ति में यमक अलंकार । 'जनि परशुराम' में उत्प्रेक्षा । अज्जुनसमान में उपमा ॥ 34-37 ॥

[दोहा]

तसु परबोधेँ माए मझु, धुअ न धरिज्जिह सोक ।
बिपअ न आबइ तासु घर, जसु अनुरत्ते लोक ॥ 38 ॥
चापि कहञो सुरुतान कें, झाटे करञो उपाए ।
विनु बोलन्ते जे मन पलइ, आबे कतए ओ राए ॥ 39 ॥

[रड्डा]

जेन्हे साहस करिअ रण झम्प ॥
जेन्हे अग्गि धस करिअ, जेन्हे सिंह-केसर गहिज्जिअ ।
जेन्हे सप्प-फण धरिअ, जेन्हे रुट्ठ हुअ जम सहिज्जिअ ॥
तेन्हे बेबि सहोअरहि, गोचरिअउ सुरुतान ।
ताबे जीवन-नेह रह, जाबे न जग्गइ मान ॥ 40 ॥

[गद्य]

अइसना पत्त्थाव परम कट्ठे निञ साज निरपेक्ख

अकटु अकठोर महाराजाधिराज श्रीमत्कीर्त्तिसिंह गोचरिअ सुरुतानक मन करुणा भरिअउ । राए पसन्न भए पातिसाह गोचरिअउ ॥ 41 ॥

[रड्डा]

रज्ज छड्डिअ अवरु परिवार ॥
वप्पवेर समरक्ख, परम कट्ठे परदेस आएउँ ।
अम्ह सब्ब जन भणइ, अज्ज जाब णहु किम्बि पाएउँ ॥
भणिअउँ दुक्ख उपेक्खि किमि, राअकुमर करु अब्ब ।
आनन तुज्झ न आन भउ, दोस अम्ह पए सब्ब ॥ 42 ॥

तेषां प्रबोधनेन माता मम, ध्रुवं न करिष्यति शोकम् ।
विपद् न आगच्छति तस्य गृहं, यस्य अनुरक्तो लोकः ॥ 38 ॥
आगृह्य कथयामि सुरत्राणं, त्वरितमेव करोमि उपायम् ।
विना वल्गनेन यस्य मनसि समापतति, अधुना कुत्र स राजा ॥ 39 ॥
याभ्यां साहसं कृत्वा कृतो रणे झम्पः ॥
याभ्याम् अग्नौ ध्रासः कृतः, याभ्यां सिंहकेसरो ग्रहीष्यते ।
याभ्यां सर्पफणो धृतः, याभ्यां रुष्टीभूतो यमः सहिष्यते ॥
ताभ्यां द्वाभ्यामपि सहोदराभ्यां, गोचरीकृतः सुरत्राणः ।
तावदेव जीवनस्नेहः तिष्ठति, यावन्न जागर्ति मानः ॥ 40 ॥

एतादृशे प्रस्तावे परमकष्टे निजसज्जानिरपेक्षम् अकटुम्, अकठोरम् महाराजाधिराजं श्रीमत्कीर्त्तिसिंहं गोचरीकृत्य सुरत्राणस्य मनसि करुणा भरिता । राजा प्रसन्नो भूत्वा पातिसाहं गोचरीकृत्य निवेदितवान् ॥ 41 ॥

राज्यं त्यक्तम् अवरः परिवारः ॥
पितृवैर-सामर्षः, परमकष्टेन परदेशम् आगतोऽस्मि ।
अस्मान् सर्वे जना भणन्ति; अद्ययावद् न खलु किमपि प्राप्तवानस्मि ॥

भणामि, दु:खम् उपेक्ष्य किं, राजकुमार: करोतु अधुना ।
आननं तव न अन्यादृशमभूत्, दोषोऽस्माकमेव सर्वः ।। 42 ।।

उनके आश्वासन से मेरी माँ निश्चत ही शोक नहीं करेगी, उनके घर विपत्ति नहीं आती, जिन पर लोग अनुरक्त रहते हैं । अर्थान्तरन्यास अलंकार ।। 38 ।।

समीप जाकर या आग्रह पूर्वक सुलतान को कहूँ कि शीघ्र ही उपाय किया जाय क्योंकि बिना कहने पर भी जिन्हें सेवक का काम याद पड़े ऐसे राजा अब कहाँ रहे ? चापि-समीप जाकर [उड़िया भाषा में], दबाब देकर या आग्रह कर [मै०] । झटिति-झाटे-झटदए, चोट्टे [मै०]= तत्क्षण। मन पड़ना । ओ = वह । अर्थान्तरन्यास ।। 39 ।।

जिन्होंने साहस कर के रणभूमि में छलांग लगाया, आग में प्रवेश किया, सिंह का केसर पकड़ा, साँप के फणा को धर दबोचा और रुष्ट हुए यमराज की भी परबाह न की, उन्हीं दोनों सहोदरों ने सुलतान का दर्शन किया । तब तक ही जीवनमें स्नेह रहता है, जब तक 'मान' नहीं जगता है । झम्प [सं०] = झाँपना, कूद पड़ना । गोचरिअउ = देखा । 'अग्गिधस' से 'रुट्ठ जम' तक निदर्शना एवं अन्तिम चरण में काव्यलिङ्ग अलंकार । सुलतान के समक्ष अपनी विनती ले जाना वैसा ही साहसिक कार्य है जैसा आग में कूदना, सिंह का केश पकड़ना, क्रुद्ध यमराज का परवाह न करना (अर्थात् मृत्यु को वरण करना) । पर दोनों राजकुमारों के लिए मान का प्रश्न था, सम्मान पर चोट लगा था । इसीलिए उन्होंने ऐसा साहस किया। वीरों को मान पर धक्का लगने पर जीवन का स्नेह नहीं रहता है । यह व्याख्या प्रो. रमानाथ झा के अनुसार है ।

इस तरह के अवसर पर परम कष्ट की दशा में अपने राजोचित साजसज्जा के बिना भी कटुता रहित और कोमल रूप में महाराजाधिराज श्रीमान् कीर्त्ति सिंह को देखकर सुल्तान के मन में दया भर गयी । [यह देख कीर्त्ति सिंह ने] प्रसन्न होकर बादशाह से विनती की:-

मैंने राज्य और परिवार को छोड़ दिया, पिता के वध से उत्पन्न वैर के कारण ईष्या से भर कर परम कष्ट से परदेश आया, पर यहाँ हमें

सबलोग कहते हैं कि आज तक आप कुछ पा नहीं सके । दुःख छोड़कर मैं क्या कहूँ, अब यह राजकुमार (मैं) क्या करे, आपका मुख बदला नहीं (अपने अभी तक कृपा न की), इस में सभी दोष हमारा ही है ॥ 42 ॥

(दोहा)

पक्ख ण पालइ पाउआ, अङ्ग ण राखइ राओ ।
फूर ण बोलइ सूअणा, धम्ममन्ति कहँ जाओ ॥ 43 ॥

(रड्डा छन्द)

तो पलट्टिअ पुनबि सुरुतान ।
पुनु पसन्न विहि हुअउ, पुनबि दुक्ख दारिद्द खण्डिअ ।
कटकाञी तिरहुत्ति, राअ-बअण उच्छाहे मण्डिअ ॥
फलिअउ साहस कप्प तरु, सानुग्गह फरमान ।
पुहुवी तासु असक्क की, जसु पसन्न सुरुतान ॥ 44 ॥

पक्षं न पालयति प्राकृतः, अङ्गं न रक्षति राजा ।
स्फुटं न वदति सुजनः, धर्ममन्त्री कुत्र गच्छतु ॥ 43 ॥
तदा परावर्तितः पुनरपि सुरत्राणः ॥
पुनः प्रसन्नो विधिरभूत्, पुनरपि दुःखदारिद्र्यं खण्डितम् ।
कटक-प्रयाणं तीरभुक्तिं प्रति, राजवदनम् उत्साहेन मण्डितम् ॥
फलितः साहस-कल्पतरुः, सानुग्रहो राजादेशः ।
पृथिव्यां तस्य अशक्यं किं, यस्य प्रसन्नः सुरत्राणः ॥ 44 ॥

यदि प्राकृत जन [अनुयायी प्रजा] अपने पक्ष [राजकीय दल] की सेवा न करे वा उसके कार्य को पार न लगावे, राजा अपने अङ्गों [सहायकों, प्राकृत जनों] की रक्षा न करे और सुजन स्पष्ट [यथार्थ] न

बोलें तो धर्म की मन्त्रणा करने वाले कहाँ जायँ । तुल्ययोगिता अलंकार । प्राकृत-पाउअ = सामान्य जन । स्फुट-फुड़-फुर । मूल पाठ 'पउआ' को छन्द के अनुरोध से 'पाउआ' किया गया है ।। 43 ।।

तब फिर सुलतान का रुख बदल गया । फिर विधाता [भाग्य] प्रसन्न हुआ, दु:ख और दरिद्रता खण्डित हो गयी । सैन्य-प्रयाण तिरहुत की ओर हुआ । राजा का मुख उत्साह से मण्डित हो गया । साहस रूपी कल्पवृक्ष फल गया, कृपा पूर्ण फरमान [बादशाह का आदेश] हुआ । उसके लिए पृथ्वी पर अशक्य क्या है, जिस पर सुलतान प्रसन्न हों । साहस कल्पतरु में रूपक । अर्थापत्ति अलंकार । सानुग्रह = अनुग्रह (कृपा) सहित । अशक्य=जो कार्य नहीं किया जा सके, असंभव ।। 44 ।।

[पृथ्वी छन्दः]

बलेन रिपुमण्डली-समरदर्प-संहारिणा
यशोभिरभितो जगत् कुमुद-कुन्दवृन्दोपमैः ।
श्रिया चकित-चामर-द्विप-तुरङ्गरङ्गस्थया ।
सदा सफलसाहसो जयति कीर्तिसिंहो नृपः ।। 45 ।।

इति श्री विद्यापति-विरचितायां कीर्त्तिलतायां तृतीयः पल्लवः ।।

शत्रुमण्डली के युद्धाभिमान का संहार करने वाले, **बल से**, संसार के सभी ओर फैले कुमुद और कुन्द फूलों के समान **यश से** तथा चंचल चँवर से युक्त हाथी-घोड़े रूपी रङ्गमञ्च पर स्थिर **लक्ष्मी से** सदा साहस को सफल सिद्ध करने वाले राजा कीर्त्ति सिंह विजय पा रहे हैं । कुन्दवृन्दोपमैः' में उपमा, 'तुरङ्ग-रङ्ग' में रूपक एवं यमक अलंकार । 'अभितः' इस अव्यय के योग में 'जगत्' द्वितीयान्त पृथक् पद है ।। 45 ।।

विद्यापतिविरचित कीर्त्तिलता में तृतीय पल्लव समाप्त ।।

अथ चतुर्थः पल्लवः

अथ भृङ्गी पुनः पृच्छति–

(पद्मावती त्रिभङ्गी छन्द)

कह कह कन्ता, सच्च भणन्ता, किमि परि सेना सञ्चरिआ ।
किमि तिरहुत्ती, हुअउ पवित्ती, अरु असलाने किं करिआ ॥ 1 ॥

[भृङ्गः कथयति]:-

(दोहा)

कित्तिसिंह गुण हञो कहञो, पेअसि ! अप्पहि कान ।
बिनु जने, बिनु धने, धन्धे विनु, जे चालिअ सुरुतान ॥ 2 ॥
गरुओ बेबि कुमारओ, गरुअ मलिक असलान ।
जासु चलाए जासु के, आपे चलु सुरुतान ॥ 3 ॥

(गद्य)

सुरुतान के फरमाने सगरो हसम रोल पलु, कादी-खोजा मखडूम लरू । खोदाबरद खत उपलु । बाद्य बाजु, सेना साजु, करि तुरङ्ग पदाति संघट्ट भेल । बाहर कए दहलेज देल ॥ 4 ॥

(दोहा)

सज्जह सज्जह रोल पलु, जानिअ इत्ति न मित्ति ।
राए मनोरह सम्पजिअ, कटकाञी तिरहुत्ति ॥ 5 ॥

पढमहि सज्जिअ हत्थि बल, तो रह, तोरि तुरङ्ग ।
पाइक चक्कहि को गणइ, चलिअ सेन्न चतुरङ्ग ॥ 6 ॥

कथय कथय कान्त ! सत्यं भणन्, केन प्रकारेण सेना सञ्चरिता ।
कथं तीरभुक्तिः पवित्रीभूता, अपरम् असलानेन किं कृतम् ॥ 1 ॥
कीर्त्तिसिंह-गुणम् अहं कथयामि, प्रेयसि ! अर्पय कर्णम् ।
विना जनेन, विना धनेन, द्वन्द्वेन विना, येन चालितः सुरत्राणः ॥ 2 ॥

गुरुकौ द्वावपि कुमारौ, गुरुकोऽधीशः असलानः ।
यस्य चालनेन, यं प्रति, आत्मना चलितः सुरत्राणः ॥ 3 ॥

सुरत्राणस्य राजादेशेन सकलेऽपि सैन्ये कोलाहलः पतितः, काजी-ख्वाजा-मख्दूमसंज्ञकाः धर्मकर्मकरा लडिताः । 'क्व गन्तव्यमिति' ध्वनिः उत्पन्नः । वाद्यं वादितं, सेना सज्जिता, करि-तुरङ्ग- पदाति- संघट्टोऽभूत् । बहिष्कृत्य द्वाराग्रक्षेत्रे निवेशितः ॥ 4 ॥

'सज्जय सज्जय' रवः पतितः । ज्ञायते न इति, न मितिः ।
राज्ञो मनोरथः समपद्यत । कटक-प्रयाणं तीरभुक्तिं प्रति ॥ 5 ॥
प्रथममेव सज्जितं हस्तिबलम् । ततो रथाः, तुलिताः तुरंगाः ।
पदाति-चक्रं को गणयति । चलितं सैन्यं चतुरङ्गम् ॥ 6 ॥

अब भृंगी फिर पूछती है— मेरे प्रिय ! सत्य बोलते हुए कहो, कहो कि किस प्रकार सेना चली, कैसे तिरहुत पवित्र [दुष्टों से मुक्त] हुआ और असलान ने क्या किया ? किमि परि=किस तरह । प्रति-परि [मै०] = भाँति ॥1॥

भौँरा कहता है— मैं कीर्त्तिसिंह का गुण कहता हूँ, हे प्रिये ! कान लगा कर सुनो— जिन्होंने विना जनबल से, बिना धन से और विना चिन्ता से सुलतान को तिरहुत विजय हेतु चला दिया । अहम्-हजो [प्रा० मै०]=मैं ॥2॥

दोनों कुमार गौरवशाली हैं और मलिक असलान भी गौरवशाली है, जिनकी [कुमारों की] प्रेरणा से, जिस [असलान] के प्रति सुलतान स्वयं चल पड़े । गुरु-गरुअ=श्रेष्ठ ॥ 3 ॥

सुलतान के आदेश से सम्पूर्ण पैदल सेना में हल्ला मच गया, काजी, ख्वाजा और मख्दूम चल पड़े । 'कहाँ चलें' इसकी घोषणा हुई । रणवाद्य बजने लगे, सेना सजाई गयी, हाथी घोड़े और पैदल सेना की भीड़ लग गयी । उन्हें बाहर कर सामने के मैदान कें जमा किया गया । सकल-सगर [मै०] । हश्म [फा०]- हसम=अनुयायी, पदसेना । कादी, ख्वाजा और मख्दूम मुसलमानों के न्याय या धर्म के अधिकारी होते हैं । खोदा वरद [फा०]-खोद वेद [मै०] = जिज्ञासा । खत [फा०] = घोषणा पत्र । दहलेज [फा०] = मुख्य द्वार के सामने का विशाल मैदान । पूरा अंश मैथिली ॥ 4 ॥

'सज्जित होओ, तैयार होओ'- यह आवाज होने लगी । सेना का न तो अन्त था और न संख्या ही की जा सकती थी । राय [कीर्त्ति सिंह] का मनोरथ पूर्ण हुआ, क्योंकि सेना का प्रस्थान तिरहुत की ओर ही हुआ था । कटक-आत्री=कटकात्री=सैन्य का आगमन ॥ 5 ॥

सब से पहले गज-सैन्य सज्जित हुआ, उसके बाद रथ और सन्तुलित घोड़े चले, पैदल सैन्य चक्र को कौन गिन सकता है ? इस तरह चतुरंगी सेना चल पड़ीं । प्रो० रमानाथ झा के अनुसार 'तोरहि तोर तुरंग' पाठ उचित है अर्थात् झुण्ड के झुण्ड घोड़े । परन्तु तब सेना के चार अंगों में एक अंग (रथ) की कमी रह जाती है । पदाति [सं०]- पाइक । चक्र-चक्क । हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल इन चार अंगों से युक्त सेना चतुरंग कहलाती है ॥ 6 ॥

[गजसैन्यवर्णन]–

मधुभार छन्द

अनवरत हाथि । मअमत्त जाथि ॥
भाँगन्ते गाछ । चापन्ते काछ ॥ 7 ॥
तोरन्ते डोल । मारन्ते घोल ॥
संगाम थेघ । भूमिट्ठ मेघ ॥ 8 ॥

अन्धार कूट । दिग्विजय छूट ॥
ससरीर गब्ब । देखन्ते भव्व ॥ 9 ॥
चालन्ते कान । पब्बअ समान ॥ 10 ॥

अनवरतं हस्तिनः । मदमत्ता गच्छन्ति ॥
भञ्जयन्तो वृक्षान् । क्रामन्तोऽधिकच्छम् ॥ 7 ॥
त्रोटयन्तो डोरकान् । मारयन्तो घोटान् ॥
संग्रामं स्थगयन्तः । भूमिष्ठा मेघाः ॥ 8 ॥
अन्धकार-कूटाः । दिग्विजयाय मुक्ताः ।
सशरीरा गर्वाः । दृश्यमाना भव्याः ॥ 9 ॥
चालयन्तः कर्णान् । पर्वत-समानाः ॥ 10 ॥

मद से मत्त हाथियों के झुण्ड लगातार जा ही रहे हैं [इन झुण्डों का अन्त नहीं होता है]; जो पेड़ों को भग्न करते हुए, काँखो तले दबाते हुए, रस्सी को तोड़ते हुए, जोर से आवाज लगाते हुए, संग्राम को टेक लेते थे, वे भूमि पर स्थित मेघ ही थे, जमा हुए अन्धकार के रूप में दिग्विज के लिए बढ़े हुए थे, शरीर धारण करते हुए गर्व ही थे, देखने में भव्य थे, कान चला रहे थे और पर्वत के समान लगते थे ।

स्वभावोक्ति, रूपक एवं उपमा अलंकार । जाथि (मै०) = जाते हैं । गच्छ (सं०) -गाछ मै० =वृक्ष । 'चापब'-मैथिली क्रिया=पैर आदि से किसी चीज को दबाना । काछ (मै०)- जाँघ की जड़ का धोकड़ीनुमा स्थान, जो हाथी का बहुत ऊँचा रहता है और उसके तले तोड़े हुए पेड़ रह या दब जाते थे । डोर (सं०)- डोल (अव०) = डोरी । घोल (मै०) =हल्ला, तेज आबाज या घोड़ा । स्थेष्ठ (सं०)- थेट्ठ-थेह-थेघ । ये अंश मैथिली में हैं ॥ 7-10 ॥

(गद्य)

गरुअ गरुअ सुण्ड, मारि दलन्ते मानुस करो मुण्ड ।

जनु विन्ध्य सञो विधाताञे बिछि काढ़ल, कुम्भोद्भव करे नियमातिक्कमे पेलि पब्बतओ बाढ़ल । धाए खनए मारए जान, महाउतक आँकुस महतेँ मान ॥ 11 ॥

[अश्वसैन्य वर्णन]–

(दोहा)

पाइग्गह पअभरे भउ, पल्लानिअउ तुरङ्ग ।
थप्प-थप्प थनवार कइ, सुनि रोमञ्चिअ अङ्ग ॥ 12 ॥

छन्दः (नाराच)

अनेअ वाजि, तेजि-ताजि, साजि-साजि आनिआ ।
परक्कमेहि जासु नाम, दीपे-दीपे जानिआ ॥
विसाल कन्ध, चारु बन्ध, कण्ण सुत्ति सोहना ।
तलप्पि हाथि, लाँघि जाथि, सत्तुसेन खोहना ॥ 13 ॥
समत्त्थ सूर, ऊर पूर, चारि पाअ चक्करे ।
अनन्त जुज्झ, मम्म बुज्झ, सामि तार सङ्गरे ॥
सुजाति सुद्ध, खोहेँ कुद्ध, तोरि धाव कन्धरा ।
विमुद्ध दापे, मार टापे, चूरि जा वसुन्धरा ॥ 14 ॥
विपक्ख केरि, सेन हेरि, हिंसि हिंसि दामसे ।
निसान सद्द, भेरि नद्द, खोणि खुन्द तामसेँ ॥
तजान भीत, वात जीत, चामरेहि मण्डिआ ।
विचित चित्त, नाच नित्त, राग-बाग पण्डिआ ॥ 15 ॥

गुरुकै गुरुकैः शुण्डैः, मारयित्वा दलन्ति मानुषाणां मुण्डानि । यथा विन्ध्याद् विधात्रा अवचीय कर्षिताः । कुम्भोद्भवस्य नियमातिक्रमं प्रेर्य पर्वतोऽपि वर्धितः । धावन्ति, खनन्ति, मारयन्ति प्राणान्, महत्तकस्य अङ्कुशं महत्त्वेन मानयन्ति ॥ 11 ॥

वाजिगृहं पदभरेण अभूत्, पल्यानिताः तुरंगाः ।
'थप्प-थप्प' स्थानपालस्य, श्रुत्वा रोमाञ्चितांगाः ।। 12 ।।
अनेके वाजिनः तेजि-ताजि-संज्ञकाः सज्जं-सज्जम् आनीताः ।
पराक्रमैः येषां नामानि, द्वीपे द्वीपे ज्ञातानि ।।
विशाल-स्कन्धाः, चारु-बन्धाः, कर्ण-शुक्ति-शोभनाः ।
सन्तीर्य हस्तिनं, विलङ्घ्य गच्छन्ति, शत्रु-सैन्य-क्षोभणाः ।। 13 ।।
समर्थाः शूराः, उरसा पूर्णाः, चतुर्षु पादेषु चक्रयुक्ताः ।
अनन्त-युद्धमर्माणि बुध्यन्ति, स्वामिनं तारयन्ति संगरे ।।
सुजाति-शुद्धाः, क्षोभेण क्रुद्धाः, उत्तोल्य धावन्ति कन्धराम् ।
विमुग्धाः दर्पैः, मारयन्ति खुराघातं, संचूर्य गच्छन्ति वसुन्धराम् ।। 14 ।।
विपक्षस्य सैन्यं प्रेक्ष्य, ह्रेषं-ह्रेषं दाम्यन्ति ते ।
निस्वान-शब्देन, भेरी-नादेन क्षोणिं खनन्ति तामसेन ।।
तर्जन्या भीताः, वातं जयन्ति, चामरै र्मण्डिताः ।
विचित्र-चित्रं, नृत्यन्ति नित्यं, राग-वल्गा-पण्डिताः ।। 15 ।।

उन हाथियों के भारी-भारी सूँड़ थे, जिन से मारकर वे मनुष्य के मुण्ड को फोड़ देते थे । लगता था कि वन्ध्याचल पर्वत से (बड़े बड़े काले पत्थरों को) विधाता ने चुनकर लाया हो, अगस्त्य मुनि के नियम का उल्लंघन रूप दोष की उपेक्षा कर विन्ध्य पर्वत बढ़ गया हो । कभी दौड़ते हैं, कभी मिट्टी खोदते हैं और जान मार देते हैं, पर महावत के अङ्कुश को उसके प्रभाव से ही मान लेते हैं ।

उत्प्रेक्षा अलंकार । विन्ध्य पर्वत के खण्ड से हाथी की तुलना की गयी है । उस पर्वत को गुरु अगस्त मुनि की आज्ञा थी कि वह (विन्ध्य) झुका ही रहे, बढ़े नहीं । पर, इन हाथियों के रूप में बढ़ा हुआ यह उनकी आज्ञा का मानो भङ्ग ही कर दिया हो । कुम्भोद्भव=घड़े से उत्पन्न मुनि अगस्त्य । पेलि (प्रा०मै०)= उपेक्षा कर या बिता कर । मैथिली ।। 11 ।।

घुड़सार में पदसंचार (चहल-पहल) हुआ, घोड़ों पर जीन कसा गया (सजाया गया) । सहीसों ने उनका पीठ थपथपाया, जिसे सुन उनके अंग रोमांचित हो गये ।

पाएगाह (फा०)=अस्तबल, घुड़सार । पर्याण-पल्लाण=घोड़े को सजाना । स्थानपाल-थनवार ।। 12 ।।

तेजी और ताजी जाति के अनेक घोड़े सजा सजाकर लाये गये, जिनका नाम पराक्रम के कारण सभी द्वीपों में जाना जाता था, उनका कन्धा विशाल था, शरीरबन्ध सुगठित था और कान शुक्ति (सितुए) के समान शोभित थे, वे कूद कर हाथी को भी लांघ जाते थे और शत्रु के सेना को क्षुब्ध कर देते थे । वाजि (सं०) = घोड़ा । तेजि=सिन्धी घोड़ा । ताजिक-ताजि=अरबी घोड़ा । शुक्ति-सुत्ति=बड़े सितुए के आकार का भीतर से चमकदार । तलप्पि-तड़प्पि (मै०) = कूदकर । (रूपक अलंकार) । ।। 13 ।।

वे घोड़े शाक्तिशली, शूर, पुष्ट हृदय वाले चारों पैरों से चक्कर लगाते थे । युद्ध के अनन्त मर्म को जानते थे और अपने स्वामी की युद्धभूमि में रक्षा करते थे । उत्तम जाति के थे, दोष-रहित थे, क्रोध से तमतमाये हुए गरदन उठा कर दौड़ते थे, दर्प से चूर होकर खुर के आघात लगाते थे, जिससे धरती चूर हो जाती थी ।

उरस्(सं०)– ऊर=छाती । पूर=पुष्ट, भरा हुआ । तोलयित्वा-तोरि=तोलकर, उठा कर, टाप=घोड़े के खुर ।। 14 ।।

विपक्ष की सेना को देखकर वे घोड़े हिनहिनाकर दमन करते थे, डंका और नगाड़े के नाद को सुनकर क्रोध से पृथ्वी को खुनने लगते थे । चाबुक की चोट के डर से दौड़ते हुए गति में हवा को भी जीत लेते थे, वे चँवरों से शोभित थे, चित्र विचित्र (अनेक तरह के) नाच हमेंशा नाचते थे और सहीस के लययुक्त आवाज (टिटकारी) एवं बागडोर को समझने में पण्डित थे ।

दामसेँ-दमसब (मै०)=भय देने के लिए कठोर शब्द करना । निसान=डंका । तामसेँ (मै०)=क्रोध से । तर्जनी (सं०)- तजान=चाबुक । बाग=लगाम । राग=घोड़े को हाँकने के लिए लयबद्ध वाणी ।। 15 ।।

एवञ्च–

(चञ्चला छन्द)

बीछि-बाछि, तेजि-ताजि, पक्खरेहि साजि-साजि ।
लक्ख संख आनु घोर, जासु मूले मेरु थोर ॥ 16 ॥

(गद्य)

कटक चाङ्गुरे चाङ्गुरे, बाँकुले-बाँकुले बअने, काचले-काचले नअने, अटले-अटले बान्धे, तीखे-तरले कान्धे, जाहि करो पीठि आपु करो अहङ्कार साहिअ, पर्वतओ लाङ्घि पारक मारिअ । अखने जनि सत्तु करी कित्ति- कल्लोलिनी लाँघि भेल पार, ताहि करो जलसम्पक्कें चारुहु पाञे धोखार । मुरुली मनोरी कुण्डली मण्डली प्रभृति नानागति करन्ते भास कस, जनि पाअतल पवन-देवता बस । पद्मकरे आकारे मुँह-पाट, जनि स्वामी करो यशश्चन्दन-तिलक ललाट ॥ 17 ॥

(षट्पद छन्द)

तेजमन्त तरबाल, तरुण तामस-भरें बाढ़ल ।
सिन्धुपारसम्भूत, तरणि-रथ बहइते काढल ॥
गमने पवन पछुआब, वेगें मानसहु जीति जा ।
धाव-धूप धसमसइ, वज्ज सञो भूमि गज्ज पा ॥
संगाम भूमितल सञ्चरइ, नाच नचाबइ विविह परि ।
अरिराअ-लच्छि अच्छोलि ले, आस पूर असबार करि ॥ 18 ॥

(रड्डा छन्द)

तं तुरङ्गम चढ़िअ सुरुतान ॥
धअ चामर वित्थरिअ, तसु तुरङ्ग कत खाञ्चि आनिअ ।

जस पौरुस वर लहिअ, राअ-घरहि दिस विदिस जानिअ ॥
बेबि सहोअर राअगुरु, लहिअउ बेबि तुरङ्ग ।
पास पसंसए सब्ब जा, दूर सत्तु ले भङ्ग ॥ 19 ॥

(षट्पद छन्द)

तेजि ततारी तुरअ, चारि दिस चप्परि छुट्टइ ।
तरुण तुरुक असवारे, बाँस जञो चाबुक फुट्टइ ॥
मोजञे मोजञे जोलि, तीर भरि तरकस चापे ।
सीगिनि देइ कसीस, गब्ब कए गरुञे दापे ॥
निस्सरिअ फौद अनवरत कत, तत परिगणना पार के ।
पअभारेँ कोल अहि मोल गर, कुरुम उलटि करबट्ट दे ॥ 20 ॥

[पदातिसैन्यवर्णन]–

छन्द (अरिल्ल)

कोटि धनुद्धर धाबथि पाइक ।
लक्ख संख चलिअउ ढलबाइक ॥
चलु फरिआइक अङ्गे चङ्गे ।
चमक होइ खग्गग्ग तरङ्गे ॥ 21 ॥

वीक्ष्य वीक्ष्य तेजि-ताजि-संज्ञकाः, कवचैः सज्जं सज्जम् ।
लक्षसंख्यका अनीता घोटकाः, येषां मूल्ये मेरुः स्तोकः ॥ 16 ॥

कटकैः पदे-पदे युक्तैः वक्रै र्वक्रै र्वदनैः, काच-समैः काच-समै र्नयनै, अचलैरचलै र्बन्धैः, तीक्ष्णैस्तरलैः स्कन्धैः (युक्तैः अश्वसंघैः मण्डितः कटकः), येषाम् (अश्वानां) पृष्ठेषु (वीरैः) आत्मनः अहंकारः साधितः, पर्वतमपि विलङ्घ्य पारक्या (शत्रवः) मारिताः । एतत्क्षण एव यथा शत्रूणां कीर्तिकल्लोलिनीं विलङ्घ्य अभूत् प्राप्तः पारं, तस्या जलसम्पर्केण चतुरोऽपि

पादान् प्रक्षालितवान् । मुरली-मनोहरी-कुण्डली-प्रभृति-नानागती: कुर्वन्तोऽश्वा: भासन्ते कीदृशा: ? यथा तेषां पादतलेषु पवनदेवता वसति । पद्मस्य आकारे मुखपट:, यथा स्वामिनो यशश्चन्दन-तिलकं ललाटे शोभते ।। 17 ।।

तेजोवन्त: तरस्विन: तरुणा: तामसभरेण अग्रे वर्धिता: ।
सिन्धुपारसम्भूता: तरणिरथं वहन्त: कर्षिता: ।।
गमने पवनं पश्चात् कुर्वन्ति, वेगे मानसमपि जयन्ति ।
धावन-धूपायनै: 'धसमसायन्ति, वज्रसमं भूमि: गर्जनं प्राप्नोति ।।
संग्राम-भूमितलं सञ्चरन्ति, नृत्यं नर्त्तयन्ति विविध-प्रकारेण ।
अरिराज-लक्ष्मीं बलाद् गृह्णन्ति, आशां पूरयन्ति अश्ववारस्य ।। 18 ।।
तं तुरङ्गमम् आरूढ़: सुरत्राण: ।
ध्वजा: चामरा: विस्तीर्णा:, तस्य तुरङ्ग: कतिधा आकृष्य आनीत: ।
यश: पौरुषं वरं लब्धवान्, राजगृहे दिशि विदिशि ज्ञात: ।।
द्वावपि सहोदरौ राजगुरू, लब्धवन्तौ द्वौ तुरङ्गौ ।
पार्श्वे प्रशंसन्ति सर्वे गत्वा, दूरात् शत्रवो नयन्ति भङ्गम् ।। 19 ।।
'तेजि'- 'ततारी'-संज्ञका: तुरगा:, चतुर्दिक्षु आक्रम्य धाविता: ।
तरुण-तुरुष्केण अश्ववारेण, वंशमिव कशा स्फुटति ।।
पदवस्त्रेण पदवस्त्रं योजयित्वा, शरै भृत्वा इषुधिं धृतश्चाप: ।
शृङ्गिण्यां ददाति आकर्षणं, गर्वं कृत्वा गुरुणा दर्पेण ।।
निस्सृता: सैनिका अनवरतं कति, तत् परिगणनां पारयति क: ।
पदभारेण कोल: अहिश्च मोटयति गलं, कूर्म उल्लट्य परिवर्त्तं ददाति ।। 20 ।।

कोटि-धनुर्धरा: धावन्ति पदाते: ।
लक्षसंख्यका: चलिता 'ढाल'-वाहका: ।।
चलिता: 'फलक'-धारका अङ्गै: चङ्गा: ।
द्योतितं भवति खड्गाग्र-तरङ्गै: ।। 21 ।।

इसी तरह और भी वर्णन है- चुन चुन कर तेजी और ताजी जाति के घोड़ों को पाखर (अश्वकवच) से सजा कर लाखों की संख्या में लाया गया, जिनके मूल्य में सुमेरु पर्वत भी कम ही होगा । उदात्त अलंकार ।। 16 ।।

सेना के घोड़ों के सभी पैरों में नाल लगे थे, उनके मुख व्याकुल एवं टेढ़े थे, आँखें चमकीली थी, शरीर सुगठित एवं दृढ़ थे, कान्धे तीखे एवं चञ्चल थे, जिनके पीठ पर सवार होकर चलने वाले व्यक्ति अपने अहङ्कार को साधित करते थे, पहाड़ को भी लांघ कर शत्रु को मारते थे। अभी अभी जैसे शत्रु की कीर्त्ति रूपी नदी को लांघ कर पार हुआ हो। शायद उसीके जल के सम्पर्क से चारों पैर जल के आघात से धोये गये हैं। मुरली, मनोरी, कुण्डली, मण्डली इत्यादि नाम की अनेक चालें चलते हुए कैसे भासित होते हैं ? जैसे उनके पैरों के तले वायु देवता बस गये हों। कमल के आकार का मुखौटा लगा हुआ है, सो लगता है कि स्वामी के यशरूपी चन्दन का तिलक उसके कपार पर हो।

कटक=खुर पर चढ़ा लोहे का नाल । चाङ्गुर=चंगुल, खुर । वंकुल-बाँकुर=टेढ़ा । वदन-वअन । काचले=शीशे के समान । पारक्य (सं०)=शत्रु । अखने (मै०)=अभी, एतत्क्षण । धोखार (मै०) = पानी का झटका देकर धोना । कस=कैसा । मुँह पाट-मुखपट्ट, चेहरे पर का चित्रित वस्त्र । अखने जनि (मै.)- जैसे अभी ही । उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति अलंकार ।। 17 ।।

तेजस्वी, वेगवान् नौजबान घोड़ा अतिक्रोध से बढ़ रहा था, सिन्धु नदी के उस पार में उत्पन्न हुआ था, शायद सूर्य के रथ को वहन कर रहा था जहाँ से खोल कर लाया गया है । चलने में वह पवन को भी पीछे कर देता है, वेग करने में मन को भी जीत जाता है । दौड़ धूप करते हुए टापों से धमाका करता है तो भूमि पर वज्र के समान गर्जन होता है । युद्ध के मैदान में चल रहा है, विविध भाँति नाच नाचाता है, शत्रु की राजलक्ष्मी को छीन कर अपने सवार की आशा पूर्ण करता है ।

तरवाल=वेग से युक्त । तामस (मै०)=क्रोध । काढ़ल (मै०)=एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान में लाया हुआ । धाव-धूप=दौड़ धूप । धसमसइ=दबाब से पृथ्वी को धँसाना । समम्-सञो=समान । परि (मै०) = प्रकार, भाँति । अछोलि [प्रा०मै०] = छीन कर । उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, परिणाम, व्यतिरेक एवं उपमा अलंकार ।। 18 ।।

उस घोड़े पर सुलतान चढ़ गये । तब ध्वजा और चँवर फैलाया गया, उनका घोड़ा कितने ही प्रयास से खींच कर लाया गया, जो उत्तम यश और पराक्रम पाता था तथा राजा के घर के सभी दिशाओं और कोणों का हाल जानता था । राजाओं में श्रेष्ठ वे दोनों सहोदर भाई [कीर्त्ति और वीर] दो घोड़े प्राप्त किये, जिन घोड़े के पास जा कर सभी प्रशंसा करते थे और शत्रु दूर भाग जाते थे । द्वे अपि (सं०)- वेबि=दोनों ।। 19 ।।

तेजी और ततारी जाति के घोड़े चारों ओर शीघ्रता से बढ़े, उन पर नौजबान तुर्क सवार थे, जिनके चाबुक [तजान] की फट फट आवाज बाँस के फटने के समान हो रही थी । वे सवार मोजा पर सरमोजा पहन कर, तरकस को तीर से भर कर कस देते थे, भारी दर्प से गर्व कर सींग के बने धनुष को खींचते थे । लगातार कितने ही फौज निकलते थे, उनकी गिनती का पार कौन पा सकता था, उनके पैरों के भार से शूकर [वराह अवतार] एवं शेष नाग अपने गरदन मोड़ने लगे और कछुआ उलट कर करबट बदलने लगा ।

मोजा [फा०]= पैर का वस्त्र, उस पर सरमोजा पहना जाता था । चाप [मै०]=दबाब । शार्ङ्ग [सं०]- सींगिनि । कशीश [फा०]=खिंचाव । गुरुक [सं०]- गरुअ=भारी । फौज [फा०]- फौद=सेना । पुराणों के अनुसार विष्णु भगवान् कोल [वराह] के रूप में अपने दाँत पर तथा कूर्म [कछुआ] के रूप में अपने पीठ पर इस पृथ्वी को टेके हुए हैं और शेषनाग कूर्म के पीठ पर रहकर अपने फणा पर पृथ्वी के भार को थामे हुए हैं । अहि [सं०]=सर्प । मोल गर-गरदन मोड़ते हैं । 'बाँस जञो' में उपमा एवं अन्तिम चरण में अतिशयोक्ति अलंकार हैं ।। 20 ।।

धनुष को धारण करने वाले करोड़ों सैनिक दौड़ रहे हैं, लाखों की संख्या में ढेला फेकने वाले सैनिक चल पड़े । अङ्गों से तागड़ा फलक-धारी [नुकीले बाण वाले] भी चल पड़े । खड्ग के अग्र भाग से तरङ्ग चमक उठते थे । ढ़लवाइक-ढेलवाह [मै०] । फलक [सं०]-फर [मै०]=बाण का अग्रभाग ।। 21 ।।

मत्त मँगोल बोल नहि बुज्झइ ।
खुन्दकार कारण रण जुज्झइ ॥
काँचे माँसु कबहु कर भोअन ।
कादम्बरि रसे लोहित लोअन ॥ 22 ॥
जोअन बीस दिनद्धे धाबथि ।
बगलक रोटी दिवस गमाबथि ॥
वेलक काटि कमानहि जोले ।
धाञे चलथि गिरि उप्पर घोले ॥ 23 ॥
गो-बम्भण वध दोस न मानथि ।
परपुर नारि बन्दि कए आनथि ॥
हस हरसेँ, रुट्ठ हो सहसहि ।
तरुण तुरुक वाचा सए-सहसहि ॥ 24 ॥
अरु कत धाँगड़ देखिअथि जाइते ।
गोरु मारि विसमिल कए खाइते ॥ 25 ॥

मत्तो 'मङ्गोलः' वचनं नहि बुध्यति ।
यवन-न्यायपालस्य कारणेन रणे युध्यति ॥
आमं मांसं कदापि कुर्वन्ति भोजनम् ।
कादम्बरी-रसेन लोहितं लोचनम् ॥ 22 ॥
योजनानां विंशतिं दिनार्धे धावन्ति ।
पार्श्वस्थया रोटिकया दिवसं गमयन्ति ॥
'बेलक'-बाणं विच्छिद्य धनुषि योजयन्ति ।
धावित्वा चलन्ति गिरेः उपरि घोटैः ॥ 23 ॥
गो-ब्राह्मणवधे दोषं न मानयन्ति ।
परस्य पुरनारीः प्रधर्ष्य आनयन्ति ।

हसन्ति हर्षेण, रुष्टा भवन्ति सहसा एव ।
तरुण-तुरुष्क-वाचा शत-सहस्रसंख्यका: ।। 24 ।।
अवरं, कति मल्ला: दृश्यन्ते गच्छन्त: ।
गां मारयित्वा 'विसमिल' शब्दं कृत्वा खादन्त: ।। 25 ।।

मंगोल जाति का यवन मत्त होकर किसी की बात नहीं समझते हैं, खुन्दकार [अपने अधिकारी] के कारण [आदेश से] रण में जूझते हैं। वे कभी कच्चे मांस खाते हैं और शराब के रस से उनकी आँखे लाल हैं । खुन्दकार [फा०]=काजी, न्यायाधिकारी । काँचे मासु [मै०] ।। 22 ।।

वे लोग आधे दिन में ही बीस योजन तक दौड़ जाते हैं, बगल में बन्धी रोटी से ही दिन बिता देते हैं । वेलक नामक तीर को खींच कर कमान [धनुष] पर जोड़ते हैं और घोड़ा पर चढ़ कर पहाड़ के ऊपर दौड़ के चढ़ जाते हैं । योजन-जोअण-जोअन= चार कोस । बगलक रोटी=काँख के तले झोली में लटकायी हुई रोटी । जोले = जोड़ते हैं । धाव-धाञे = दौड़ कर । घोटेन-घोलें=घोड़ा से ।। 23 ।।

गाय और ब्राह्मण की हत्या को दोष [पाप] नहीं मानते हैं, शत्रु के नगर की नारी को बन्दी बनाकर लाते हैं । तरुण तुर्क की बात से सैकड़ों हजारों सैनिक हर्ष से हँसते हैं और सहसा [एकाएक] क्रोध से भर जाते है ।। 24 ।।

और कितने ही विशालकाय सैनिक जाते हुए दिखाई देते हैं जो गाय को मार कर विस्मिल्ला कहके खा लेते हैं । धाँगड़-धाङ्गल=एक जंगली जाति, विशाल देहवाला, धाकर [मै०]= विशालकाय साँड़ । अनुच्छेद 21 से 32 तक मैथिली भाषा में हैं ।। 25 ।।

[दोहा]

धाँगड़ कटकहि लटक बड़, जे दिस धाड़ेँ जाथि ।
तं दिस केरा राएघर, तरुणी हट्ट बिकाथि ।। 26 ।।

(मनबहला छन्द)

साबर एकहोँक तन्हिका हाथ ।
चेत्त्थले-कोत्त्थले वेढ़ल माथ ॥
दूर दुग्गम आगि जारथि ।
नारि विभारि बालक मारथि ॥ 27 ॥
लूटि अरजन, पेटे बए ।
अन्याञे वृद्धि, कन्दलेँ खए ॥
न दीनाक दया, न सकताक डर ॥
न बासि सम्बर, न विआही घर ॥ 28 ॥
न साहुक संका, न चोरक भीति ।
न अपइत जान, न ग्रहक रीति ॥
न पापक गरहा, न पुन्नक काज ।
न सत्तुक संका, न मित्तक लाज ॥ 29 ॥
न थिर वअन, न थोड़ ग्रास ।
न जसक लोभ, न अपजस त्रास ॥
न सुब्द्ध हृदय, न साधुक संग ।
न पिउबा उपसम, न जुझबा भंग ॥ 30 ॥

[दोहा]

ऐसन कटकहि लटक गण, जाइते देखिअ बहूत ।
भोअण भक्खण छाड़ नहि, गमने न हो परिभूत ॥ 31 ॥

मल्ल-कटके लटका बहवः, यद्दिशि धाट्या गच्छन्ति ।
तद्दिशायाः राज्ञो गृहे, तरुणी हट्टे विक्रीयते ॥ 26 ॥
शर्बलास्त्रम् एकैकं तेषां हस्तेषु । जीर्ण-शीर्णवस्त्रैः वेष्टितानि मस्तानि ॥

दूरे दुर्गमे अग्निं ज्वालयन्ति । नारीः विभार्य, बालकान् मारयन्ति ।। 27 ।।

लुण्ठनम् अर्जनम्, उदरार्थमेव व्ययः ।
अन्यायेन वृद्धिः, कन्दलेन क्षयः ।।
न दीने दया, न शक्तस्य दरः ।
न पर्युषितं संवलं, न विवाहिता गृहे ।। 28 ।।
न साधोः शङ्का, न चोरस्य भीतिः ।
न अपवित्रं ज्ञातं, न ग्रहस्य रीतिः ।।
न पापस्य गर्हा, न पुण्यस्य कार्यम् ।
न शत्रोः शङ्का, न मित्रस्य लज्जा ।। 29 ।।
न स्थिरं वचनं, न स्तोकः ग्रासः ।
न यशसो लोभः, न अपयशसः त्रासः ।।
न शुद्धं हृदयं, न साधोः सङ्गः ।
न पानस्य उपशमः, न युद्धस्य भङ्गः ।। 30 ।।
ईदृशे कटके लटक-गणाः गच्छन्तो दृश्यन्ते प्रभूताः ।
भोजनं भाषणं त्यजन्ति नहि, गमने न भवन्ति परिभूताः ।। 31 ।।

धाँगड़ सैनिक में बहुत से लटक [लम्पट या छिट फुट सेना] भी हैं जो जिस दिशा में धावा करते हुए जाते हैं, उस दिशा के राजा के घर की तरुणियाँ हाट पर बिकने लगती हैं । कटक=संगठित सैन्य । लटक=कटक के साथ जाने वाले छिट फुट सैन्य । धाड़े=हमला करते हुए । सैन्य जिस स्थान पर जाते हैं, वहाँ सभी वस्तुओं का अभाव एवं घोर अर्थसंकट आ जाता है ।। 26 ।।

उन सैनिकों में प्रत्येक के हाथ में एक एक बर्छा है । वे फटे पुराने वस्त्र के गद्दे माँथे पर लिपटे हुए हैं, दूर के किला में आग लगा देते हैं, नारी को विह्वल [व्याकुल] कर बालक को मार देते हैं । शर्बल-सावर । एकहोँक=एक एक प्रति, यह शब्द वर्णरत्नाकर में भी आया है । चेत्त्थल-चिथरा-चेथड़ा [मै०]=फटा पुराना कपड़ा । कोत्त्थल-कोथरा-केथरी [मै०]= चिथड़ा से बना हुआ गद्दा । दुर्ग [सं.]- दुग्गम [प्रा०मै०]=किला ।। 27 ।।

लूट पाट परके ही वे अर्जन करते हैं, पेट भरने में ही उन्हें व्यय होता है, अन्याय करने से ही उन्नति है और मार-काट से ही क्षय होता है । उन्हें न दीन-हीन पर दया ही होती है, न शक्तिशाली का डर होता है, न वासी [रोटी आदि] संवल है, न विवाहिता स्त्री घर में है । [वासी-मै०=रात का बना भोजन सुबह में बासी हो जाता है । कन्दल (सं.)- युद्ध] ।। 28 ।।

उन्हें न साधु की शंका, न चोर का डर, न अपवित्र का ज्ञान, न ग्रहों की शान्ति का उपाय, न पाप की निन्दा, न पुण्य का प्रयोजन, न शत्रु के आक्रमण की शंका और न मित्र का लाज है । [अनुचित कर्म करने पर भी साधु या मित्र को देख कर सहमना वे जानते ही नहीं हैं । अपइत [मै०]- जूठा न रहने पर भी कोई वर्त्तन 'भात' आदि के सम्पर्क से अपवित्र हो जाते हैं ।। 29 ।।

न उनके वचन स्थिर हैं, न भोजन थोड़ा है, न उन्हें यश का लोभ है, न दुर्यश का डर है, न शुद्ध हृदय है, न साधुओं की संगति है, न पीने से परहेज है और न युद्ध करने से भागते ही हैं ।। 30 ।।

इस तरह की सेना में बहुतों लम्पट [या पीछे लगने वाले] गण जाते दीख पड़ते हैं, वे खाना और बोलना नहीं छोड़ते और चलने में थकते नहीं है । भक्खण-भाषण ।। 31 ।।

ता पाछेँ आबन्त हुअ, हिन्दूदल गमनेन ।
राआ गणए न पारिअइ, राउत लेक्खिअ केन ।। 32 ।।

छन्दः [पुमानरी]

दिग्गन्तर राआ, सेवाँ आया, तेँ कटकाञी जाही ।
निञ निञ धन गब्बे, सङ्गर भब्वे, पुहवी नाहि समाही ।।
राउत्ता पुत्ता, चलइ बहुत्ता, पअभरे मेइनि कम्पा ।
पत्ताके चिन्हे, भिन्ने भिन्ने, धूली रइ-रह झम्पा ।। 33 ।।

जोअण्णा धावहि, तुरअ नचाबहि, बोलहि गाढ़िम बोला ।
लोहित पित सामर, लहिअउ चामर, सवणहि कुण्डल डोला ॥
आवत्त-विवत्ते, पअ परिवत्ते, जुग परिवत्तण भाणा ।
घन तबल निसाने, सुनिअ न काने, साने कहारिअ आणा ॥ 34 ॥
वेसरि अरु गद्दह, लक्ख बरद्दह, इडिका महिसा कोटी ।
असवार चलन्ते, पाअ घलन्ते, पुहबी भए जा छोटी ॥
पाछे जे पड़िआ, ते लड़खड़िया, बइठहि ठामहि ठामा ।
गोहन नहि पाबहि, वत्थु नड़ाबहि, भूखल भमहि गुलामा ॥ 35 ॥
तुलुकन्हि के फौदेँ, हौदेँ हौदेँ, चम्परि चौदिस घूमी ।
अओ ताक धरन्ते, कलह करन्ते, हिन्दू उतरथि भूमी ॥
असपख एकचोई, गणिअ न होई, सरइच्चा सरमाना ।
वारिग्गह मण्डल, दिग आखण्डल पट्टन परिठम भाना ॥ 36 ॥

तत्पश्चाद् आगच्छद् अभूद्, हिन्दूदलं गमनेन ।
राजानो गणयितुं न पार्यन्ते, राजपुत्रा लेखिताः केन ? 32 ॥
दिगन्तरतो राजानः, सेवायाम् आगताः, ते कटक-प्रयाणे गच्छन्ति ।
निज-निज-धनगर्वाः, सङ्गरे भव्याः, पृथिव्यां तत्र नैव संस्थानं लभन्ते ॥
राजपुत्र-पुत्राः, चलन्ति प्रभूताः, पदभरेण मेदिनी कम्पिता ।
पताका-चिह्नैः, भिन्नैः भिन्नैः, धूलीभिः रविरथ आच्छन्नः ॥ 33 ॥

योजनानि धवन्ति, तुरगान् नर्त्तयन्ति, वदन्ति गाढ़ं वचनम् ।
लोहित-पीत-श्यामलानि लब्धवन्तः चामराणि, श्रवणेषु कुण्डलानि दोलितानि ॥
आवर्त्त-विवर्त्तैः पदपरिवर्त्तैः, युगपरिवर्त्तन-भानम् ।
घन-तबल-निस्वानैः श्रूयते न कर्णेन, संज्ञया आकार्यन्तेऽन्ये ॥ 34 ॥
वेसराः अवरं गर्दभाः लक्षं वलीवर्दाः, एडिका-महिष-कोटिः ।
अश्ववाराणां चलनेन, पाद-घर्षणेन पृथ्वी भवति स्तोका ॥

पश्चाद् ये पतिताः, ते स्खलिताः, उपविशन्ति स्थाने स्थाने ।
गोधनं नहि प्रप्नुवन्ति, वस्तूनि निराकुर्वन्ति बुभुक्षिता भ्रमन्ति सेवकाः ।। 35 ।।
तुरुष्काणां सैनिकाः कुथे-कुथे आरूढ़ाः, बलात् चतुर्दिक्षु भ्रमन्ति ।
अथ अवसरं धरन्तः, कलहं कुर्वन्तः, हिन्दवः अवतरन्ति रणभूमौ ।।
'अश्वपक्ष'- 'एकचोई' वस्त्रगृहाः गणिता न भवन्ति,
'सरइचा'-'सरमान' वस्त्रगृहा अपि ।
'वारिगृहा', 'मण्डलगृहाः',
आखण्डल-दिक्-पट्टन-प्रतिष्ठापनं भणिताः ।। 36 ।।

उनके पीछे चलते हिन्दू सैन्य दल आने लगे, उनमें जब राजाओं को गिना नहीं जा सकता है तो राउत [राजपुत्र या गोप] की लेखा कौन कर सकता है ? ।। 32 ।।

दूर दिशाओं के जो राजागण सेवा में आये थे, वे सैन्य-प्रयाण में जा रहे हैं, अपने अपने धन के गर्व से युक्त एवं संग्राम में भव्य [सुन्दर] हैं और [इतनी संख्या में है कि] पृथ्वी पर नहीं समा रहे हैं । उनके साथ राउतों [गोपों] के बहुतों पुत्र चल रहे हैं, जिनके पदभार से पृथ्वी काँप उठती है । उन राजाओं के पताका और राजचिह्न भिन्न-भिन्न हैं, उनकी पैरों से उठी धूलों से सूर्य का रथ झँप गया है ।

अन्या दिक्=दिगन्तरम् (सं०) । सेवाँ=सेवा में । आगत-आअद-आआ । रवि-रइ=सूर्य । रथ-रह । 'नाहि समाहीं' में 'अधिक' अलंकार ।। 33 ।।

वे योजन के योजन दौड़ जाते हैं, घोड़े को नचाते हैं (चक्कर मार कर तेजी से दौड़ाते हैं) और गाढ़ (अभिमानपूर्ण) वचन बोलते हैं । लाल, पीले और काले चँवर रखे हुए हैं और उनके कानों में कुण्डल डोल रहे हैं । दायें से वायें एवं वायें से दायें चलने एवं पैरों के परिवर्त्तन (इधर से उधर) होने में इतना ज्यादा समय लगता है कि जैसे युग ही बदल गया हो । अत्यन्त जोर से तबले (मृदंग) एवं निसान (रणवाद्य) बजने के कारण कुछ भी कान से सुनाई नहीं पड़ती है, तो दूसरों को संकेत (इसारा) से बुलाया जाता है ।

गाढ़ (सं०) = गम्भीर । अवर्त्त=आगे की ओर भीड़ का रेड़ा । विवर्त्त पीछे की ओर लौटने का धक्का । संज्ञा-सञ्ञा-साना=संकेत । हकारिअ (मै०)-आकारयति (सं.) = बुलाना ।। 34 ।।

घोड़े (या खच्चर) और गदहे तथा बैलों की लाख संख्या एवं भेड़ और भैसाओं की कड़ोर संख्या है जिन पर सबार चल रहे हैं, उनके पाँवों की रगड़ से पृथ्वी घिसाकर छोटी हो गयी है । जो व्यक्ति पीछे पड़ जाते, वे लड़खड़ा जाते और उसी जगह बैठे रह जाते हैं, अपने दल को नहीं पा सकते, अपने सामानों को छोड़ देते और गुलाम (नौकर) बन कर भूखे हुए घूमते हैं ।

वेसर (सं०) = खच्चर नामक पशु । गर्दभ-गद्दह-गदहा । बलीवर्द (सं०) शब्द से उसी अर्थ में दो शब्द निकले-बैल (हिं०) और वरद (मै०), वलद्दह=बैल का । इडिका [सं०]= भेड़ी । 'घलन्ते' के स्थान में 'दलन्ते' [पैर से दलित करते हुए] पाठ उचित प्रतीत होता है । ठामहि ठाम [मै०] = उसी जगह, जहाँ का तहाँ । गोधन-गोहन=दल [गाय रूपी धन जैसे इकट्ठा रहते हैं वैसे दल में भी लोग रहते हैं ।] वस्तु-वत्थु=सामान, चीज । निरापयति नड़ाबइ [मै०]=त्यागना । अतिशयोक्ति अलंकार ।। 35 ।।

तुर्कों के फौज हौंदों (हाथी के पीठ पर गद्दों) पर बैठकर या झुण्ड के झुण्ड तेजी से [सीधे निर्भय रूप से] चारों ओर घूम रहे हैं और हिन्दू सैनिक अवसर देखकर [कतरा कर] लड़ाई करते हुए रण भूमि में उतरते हैं । असपख, एकचोई, सरैचा, शामियाना, वारिगह और मण्डल नामक कपड़े के घरों को गिना नहीं जा सकता । इन सबों को पूरब दिशा का नगर [जौनपुर] की संरचना कही जा सकती है ।

फौज-फौद=सेना । हौदा [फा०]- हाथी या ऊँट के ऊपर का विस्तर । घौदा [मै०]=एक ही जाति की सटी हुई भारी संख्या (विशेषतः फल की) । चप्परि [अव.] = फुर्त्ती से या जबरदस्ती । ताक [मै०]=उचित अवसर । 'एकचोई' आदि वस्त्रगृह का उल्लेख वर्णरत्नाकर में है । आखण्डल [सं०]=इन्द्र जो पूर्व दिशा का स्वामी है । परिठम [अव०] = संरचना, प्रतिष्ठापना-पड़िट्ठावणा-परिठम ।। 36 ।।

[षट्पद छन्द]

जखने चलिअ सुरुतान, लेख परिसेख जान को ।
तरणि तेज संवरिअ, अट्ठ दिगपाल कट्ठ हो ॥
धरणि धूलि अन्धार, छोड्डु चक्की पिअ हेरब ।
इन्द चन्द आभास, कमन परि एहु खन पेलब ॥
कान्तार दुग्ग दल दमसि कहुँ, खोणि खुन्द पअभार भरेँ ।
हरि संकर तनु मिलि एक्क रहु, बम्भ हीअ डगमगिअ डरेँ ॥ 37 ॥
महिस उट्ठु मनुसाए, धाए असवारहि मारिअ ।
हरिण हारि हलु वेग, धरए करे पाइक पारिअ ॥
तरसि रहिअ सस मूस, उड्डि आकास पक्खि जा ।
एहु पाए दरमलिअ, ओहु सैच्चान खेदि खा ॥
इबराहिम साह पआनओ, जं जं सेना सञ्चरइ ।
खणि खोदि खुन्दि धरि मारिअइ, जीवहु जन्तु न उब्बरइ ॥ 38 ॥

[गद्य]

एवञ्च दूर दीपान्तर राअन्हि करी निद्रा हरन्ते, दलि विहलि चूरि चापल करन्ते, गिरि गह्वर गाहन्ते, सिकार खेलन्ते, तीर मेलन्ते, परदप्प भमि भञ्जन्ते, वनविहार-जलक्रीड़ा करन्ते, मधुपान-रतोस्सव करी परिपाटि राज्यसुख अनुभवन्ते, बाट सन्तरि तिरहुति पइठ । तकत चढ़ि सुरुतान बइठ ॥ 39 ॥

[दोहा]

दुहू कहानी सुनि कहुँ, तं खणे भउ फरमान ।
केन पआरेँ निरसिअउ, बड़ समत्त्थ असलान ॥ 40 ॥

[रड्डा]

तो पअप्पइ कित्ति भूपाल ॥
की कुमन्त पहु ! करिअ, हीन-बअने की समय खप्पिअ ।
की परसेना गुणिअ, काञि सत्तु सामत्त्थ कप्पिअ ॥
सब्बहु देक्खहु पिट्ठि चलि, हञो लाबञो रणभाण ।
पाखरे पाखरे ठेल्लि कहुँ, पकड़ि देञो असलान ॥ 41 ॥

[षट्पद छन्द]

अज्जु वेर उद्धरओँ सत्तु जइ सङ्कर आबइ ।
जइ तसु पक्अ सपक्ख इन्द अप्पन बल लाबइ ॥
जइ ता रक्खइ सम्भु अवर हरि बम्भसहित भइ ।
फणिबइ लाग गोहारि चाप जमराए कोप कइ ॥
असलानञे मारञो तञोहु हञो, तासु रुहिर णइ देञो पा ।
अवसान-समअ निञ जीव धके, जइ नहि पिट्ठि देखाए जा 42 ॥

[दोहा]

तबे फरमानहि बाचिअ, राअल हसम को सार ।
कित्तिसिंह के पूरनहि, सेना करिअउ पार ॥ 43 ॥

यत्क्षणे चलितः सुरत्राणः, लेख-परिशेषं जानाति कः ?
तरणिः तेजः संवृतवान् अष्टदिक्पालाः कष्टेऽभूवन् ।
धरण्यां धूल्या अन्धकारः, अत्यजत् चक्री प्रियवीक्षणम् ।
इनः चन्द्र इव आभासते, कतमेन प्रकारेण एतत्क्षणं प्रेरणीयम् ॥
कान्तारं दुर्गं च दलानि धर्षितं कृत्वा, क्षोणिं खनन्ति पदभारभरेण ।
हरिः शङ्करश्च तनौ मिलित्वा एकोऽभूत्,
ब्रह्मणो हृदयं दलमलितं दरेण ॥ 37 ॥

महिषा उत्थिता उन्मत्तीभूय, धावित्वा अश्ववारान् अमारयन् ।
हरिणा निरुपाया हृतवन्तो वेगं, धर्त्तुं करेण पदातिभिः पारिताः ।।

त्रसित्वा-स्थिताः शश-मूषाः, उड्डीय आकाशे पक्षिणो गता ।
अत्रापि पादैः दलमलिताः, तत्रापि श्येनैः खेदयित्वा खादिताः ।।
इब्राहिमशाह-प्रयाणे, यत्र-यत्र सेना सञ्चरति ।
खनित्वा, खेदयित्वा, क्षुण्णीकृत्य, धृत्वा मार्यन्ते, जीवजन्तवोऽपि नोद्वरन्ति ।। 38 ।।

एवञ्च दूरद्वीपान्तरस्थानां राज्ञां निन्द्रां हरन्तः, दलित्वा विह्वलीकृत्य चूरयित्वा अधीनीकुर्वन्तः, गिरि-गह्वरान् गाहमानाः, आखेटं कुर्वन्तः, शरान् मेलयन्तः, परदर्पं भ्रमित्वा भञ्जयन्तः, वनविहारं जलक्रीड़ां च कुर्वन्तः, मधुपान-रतोत्सवादीनां परिपाट्या राज्यसुखमनुभवन्तः, वर्त्म सन्तीर्य तीर-भुक्तिं प्रविष्टाः । सिंहासनमारुह्य सुरत्राण उपविष्टः ।। 39 ।।

द्वयोरपि कथ्यं श्रुत्वा तत्क्षणेऽभूद् राजादेशः ।
'केन प्रकारेण निरसितव्यः, बहु-समर्थः असलानः' ? ।। 40 ।।

ततः प्रजल्पति कीर्त्ति-भूपालः ।
किं कुमन्त्रणं प्रभो ! कृतं, हीन-वचनेन किं समयः क्षपितः ?
किं परसेना गुणिता, कथं शत्रु-सामर्थ्यं कल्पितम् ?
सर्वे पश्यन्तु पृष्ठतः चलित्वा, अहं आनयामि रणभाणम् ।
प्रक्षरैः प्रक्षरैरस्त्रैः प्रधर्ष्य, प्रकृत्य उपस्थापयामि असलानम् ।। 41 ।।

अद्य वैरम् उद्धरामि, शत्रुः यदि सङ्गरे आयाति ।
यदि तस्य पक्षे सपक्ष इन्द्र आत्मनो बलम् आनयति ।।
यदि तावत् रक्षति शम्भुः अवरो हरिर्ब्रह्मसहितो भूत्वा ।
फणिपतिः लगति रक्षायां, दाम्यति यमराजः कोपं कृत्वा ।।
'असलानं' मारयामि तथापि अहं तस्य रुधिरनद्यां ददामि पादम् ।
अवसान-समये निज-जीवं धृत्वा, यदि नहि पृष्ठं सन्दर्श्य याति ।। 42 ।।
तदैव राजादेशः पठितः, सकल-सैन्यान् प्रति सारम् ।
'कीर्त्तिसिंहस्य प्रतिज्ञापूरणाय, सेनया क्रियतां पारम् ।। 43 ।।

जब सुलतान चल पड़े तो उस प्रयाण की लेखा–जोखा का अन्त कौन जान सकता है । सूर्य ने अपना तेज समेट लिया, आठों दिक्पालों को कष्ट हुआ, पृथ्वी धूल से अन्धकारमय हो गयी, चक्रवाकी [चकबा पक्षी की स्त्री] ने अपने प्रिय को देखना छोड़ दिया [अन्धेरे में वह नहीं देख सकती थी], सूर्य चन्द्रमा जैसे दीखने लगे, किस तरह ऐसे समय को बियाया जा सकता है ? सैन्यदल ने जंगल एवं दुर्ग को दलमलित कर, पदभार के आघात से पृथ्वी को खुँद दिया, इस प्रलयंकर स्थिति से पृथ्वी को बचाने के लिए विष्णु और शिव के शरीर मिल कर एक हो गये (हरिहर रूप हो गये) और ब्रह्मा का हृदय डर से डगमगाने लगा । अतिशयोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा । 'इन्द चन्द' में उत्प्रेक्षा । इन–इन्द=सूर्य । कमन परि (मै०)=किस प्रकार । दमसि कहुँ (मै०)=तेज शब्द के साथ सदलबल पहुँच कर । भरेँ (मै०)=अवलम्ब । 'हरिशंकर' की एक रूपता को देख कवि ने कल्पना की कि सैन्य के आक्रमण के कारण ही पृथ्वी को टेकने हेतु या भय से दोनों एक हो गये ।। 37 ।।

भैंसे उन्मत्त हो उठते और दौड़कर घुड़सवार को मार देते थे । हरिणों ने हार थक कर वेग से दौड़ना छोड़ दिया, जिन्हें सैनिकगण हाथ से पकड़ लेते थे । खरहे और मूस डरे हुए थे, पक्षी उड़कर आकाश में चले गये (उनकी तो विचित्र दशा थी), इधर नीचे में पैरों तले कुचले जाते और उधर ऊपर से उन्हें खदेड़ कर बाज पक्षी खा जाते थे । इब्राहिम शाह के प्रयाण में सेना जहाँ–जहाँ चलती थी वहाँ खनकर, खदेड़कर, कुचल कर और पकड़ कर जैसे होता, जीवों को मार देती थी, कोई भी जीवजन्तु उबर नहीं पाते थे ।

मनुसाए (मै०)=मन को बढ़ा–चढ़ा कर । हलु (अव०)= हरण किया । श्येनः– सैचान (प्रा०मै०)=बाज पक्षी । खणि=साँप आदि को खनकर, पशुपक्षी को खदेड़ कर और छोटे जन्तु को रौंद कर मार दिया ।। 38 ।।

इस तरह दूर तक के अन्य द्वीपों के भी राजाओं की नींद को हरते हुए, दलित, विह्वल और चूर्ण कर हड़पते हुए, पर्वत की गुफाओं को विलोड़ित करते हुए, शिकार खेलते हुए, तीर चढ़ाते हुए, भ्रमण कर शत्रु के

दर्प को तोड़ते हुए, वनविहार और जलक्रीड़ा करते हुए, मद्यपान सुरत आदि के आनन्द की परम्परा युक्त राज्यसुख का अनुभव करते हुए, रास्ते को पारकर तिरहुत में प्रवेश किये और सिंहासन पर चढ़ कर सुलतान बैठ गये ।

चापल करथि (मै०)=पैरों तले दाबते हैं, अधीन करते हैं । तकत-तख्त=सिंहासन ।। 39 ।।

(तिरहुत के अधिकारियों से) कीर्त्ति सिंह एवं असलान इन दोनों के विषय में सभी बातें सुन कर उसी समय सुलतान का आदेश हुआ-बड़े सामर्थ्यवान् असलान को किस तरह भगाया जाय ? ।। 40 ।।

तब राजा कीर्त्ति सिंह बोलने लगे-हे प्रभो ! आप यह क्या कुमन्त्रणा (व्यर्थ का विचार) कर रहे हैं ? हीन वचन से समय विता रहे हैं, शत्रु सेना की लेखा-जोखा क्या कर रहे है ? शत्रु के शक्तिशाली होने की कल्पना क्यों कर रहे हैं ? सभी लोग मेरे पीछे चल कर देखें- मैं रणभूमि के उस भाँड़ (उपहास्यास्पद) को लाता हूँ और पाखर ही पाखर से धकेल कर असलान को पकड़ देता हूँ ।

क्षप-खप्प-खेपब (मै०) । भण्ड-भाण (विदूषक, रंडी का भडुआ) । पाखर = अश्वकवच अपने घोड़े का कवच) से ही, न कि अस्त्र से । रणभाण में उपमा ।। 41 ।।

(कीर्त्ति सिंह कहते हैं)- आज मैं अपनी शत्रुता का उद्धार कर लूँ (शत्रु से बदला ले लूँ), यदि शत्रु संग्राम में आवे, यदि उसके पक्ष में दल के साथ इन्द्र भी अपनी सेना लावें, यदि शम्भु और हरि ब्रह्मा-सहित उसकी रक्षा करें, शेषनाग रक्षा में लग जायँ, क्रोध करके यमराज भी मेरे आक्रमण को दबावें, तो भी मैं असलान को मारूँगा और उसके शोणित की नदी में पाँव रखूँगा, यदि जीवन के अन्तिम समय में अपने प्राणों को लेकर वह पीठ दिखा कर भाग न जाय ।

एद्यु (वैदिक सं०)- अज्जु-आजु [मै०] । गोहारि [मै०]= रक्षा । तञोहुँ = तथापि । हञो = मैं । पा = पाँव । धके [मै०] = लेकर । निदर्शना अलंकार । 'रुहिर नइ' में उपमा और परिणाम ।। 42 ।।

तब सम्पूर्ण सैन्य को सारांश रूप से शाही फरमान पढ़ कर सुनाया गया कि कीर्त्ति सिंह की प्रतिज्ञापूर्त्ति के लिए सेना नदी को पार करे । फरमान [फा०]= राजा का आदेश । वाचिअ [मै०]= वाचन किया गया, पढ़ा गया । हश्म [फ०]=सैन्य ।। 43 ।।

(रोला छन्द)

पेरि तुरङ्गम भेल पार गण्डक के पानी ।
परबल-भञ्जन गरुअ मलिक महमद्द मगानी ।।
अरु असलाने फौदे फौदे निज सेना सज्जिअ ।
भेरी काहल ढोल तबल रणतूरा बज्जिअ ।। 44 ।।
राएपुरहि काँ पुब्ब खेत पहरा दुइ बेरा ।
वेबि सेन्न सङ्घट्ट भेल बाजल भटभेरा ।।
पाए-पहारेँ पुहुबि कम्प गिरिसेहर टुट्टइ ।
पलए-बिट्ठि सञो पलइ काण्डे पटवालन फुट्ठइ ।। 45 ।।
वीर रेकारेँ आगु होथि, रोमञ्चिअ अङ्गे ।
चौदिस चमक चमक्क होइ खग्गग्ग तरङ्गे ।।
तोरि तुरअ असबार धाए पइसथि परजुत्थे ।
मत्त मतङ्गज पाछु होथि फरिआइत सत्थे ।। 46 ।।
सींगिनि गुण टङ्कार भार नहमण्डल पूरइ ।
पाखर उट्ठइ फौदे-फौदे, पर-चक्कह चूरइ ।।
तामसे बड्ढइ वीर दप्प विक्कम गुण चारी ।
सरमी केरा सरमे गेल सरमेरा मारी ।। 47 ।।

[दोहा]

चौपट मेइनि भेट हो, पलइ कण्ड कोदण्ड ।
चोट उपटि पटबाल दे, थेघ दण्ड भुजदण्ड ।। 48 ।।

प्रेर्य तुरङ्गमम् अभूत् पारे गण्डकस्य पानीयस्य ।
परबल-भञ्जनो गुरु 'मल्लिकः' 'महामदः' 'मार्गाग्रणीः' ।
अवरम्, 'असलानेन' दले दले, निजसेना सज्जिता ॥
भेरी-काकल-डिण्डिम-पटल-रणतूर्याणि वादितानि ॥ 44 ॥
राजपुरस्यैव पूर्वक्षेत्रे प्रहरद्वय-वेलायाम् ।
द्वे अपि सैन्ये संघट्टिते अभूताम्, बद्धं भटाक्रमणम् ॥
पदप्रहारेण पृथ्वी कम्पते, गिरिशेखरः त्रुट्यति ।
प्रलय-वृष्टि-समाः पतन्ति काण्डाः, पटवारणं स्फुटति ॥ 45 ॥
वीरा 'रे'कारेण अग्रे भवन्ति, रोमाञ्चितैरङ्गैः ।
चतुर्दिक्षु चमत्कृताः चमचमायिता भवन्ति खड्गाग्र-तरङ्गैः ॥
त्वरयित्वा तुरगम् अश्ववारा धावित्वा प्रविशन्ति परयूथे ।
मत्ता मतङ्गजाः पश्चाद् भवन्ति फलकास्त्रधारिभिः सार्धम् ॥ 46 ॥
शृङ्गिण्या गुणटङ्कारभारेण नभोमण्डलं पूरयन्ति ।
प्रक्षरास्त्राणि उत्तिष्ठन्ति सैन्यदलात् परचक्रं चूर्णयन्ति ॥
तामसेन वर्धन्ते वीराः दर्प-विक्रम-गुण-चारिणः ।
श्रमिणोऽपि श्रमकौशलं (मल्लत्वं) गतं श्रमद्वन्द्वे मारे ॥ 47 ॥
चतुःपट-मेदिन्यां द्वन्द्वोऽभूत्, वमति काण्डानि कोदण्डाः ।
प्रहारः उत्पट्य पटवारं ददाति, अवलम्ब-दण्डो भुजदण्डः ॥ 48 ॥

शत्रु के सैन्य को तोड़ने में श्रेष्ठ मलिक मुहम्मद इब्राहिम शाह घोड़े को प्रेरित [हाँक] कर गण्डक के पानी के उस पार हुए और असलान भी अपनी सेना को दलों में सज्जित किया । उस समय नागड़े, बाजा, ढोल, मृदंग और रणवाद्य बजने लगे ।

मलिक (फा०) = अधिपति । मैकानी (फा०)-मगानी (अव०)= उच्च-पदासीन । फौज (फा०)- फौद=सैन्य दल । काहल-'काहल कार धतूरा'- विद्यपति ने अपने गीत में काले धतूरे को काहल से रूपक बान्धा है, तदनुसार यह पिपही (फूक कर बजाये जानेवाला वाद्य) है ॥ 44 ॥

राजधानी [कीर्त्तिसिंह का नगर राएपुर] के पूरब रक्षणेत्र में दोपहर के समय में दोनों सेना टकरा गयी और योद्धाओं में भिड़न्त [लड़ाई] बझ गया । उनके पैरों के आघात से पृथ्वी काँपने लगी, पर्वत के शिखर टूटने लगे, प्रलयकाल की वृष्टि के समान तीर पड़ने [गिरने] लगे और कवच फूटने लगे ।

राजपुर–राएपुर=राजा का नगर [गण्डक के पार में राएपुर गाँव है] । पहरा दुइ = दुपहरिया [मध्याह्न] । द्वे अपि–वेवि=दोनों । बाजल–बाझल [मै०] = बद्ध हो गया, टकरा गया । भटभेरा=भटों=वीरों का भिड़न्त, यह शब्द आगे 4–61 में भी आया है । काण्ड=तीर । पटवारण=कपड़े का बना कवच ।। 45 ।।

रोमांचित अङ्गवाले वीर गण 'अरे रे' कहते हुए आगे बढ़ते थे । तलबार के धार के तरङ्ग से चारों ओर चौंकानेवाला चकमक हो उठता था । घोड़े को सन्तुलित कर सवार दौड़कर शत्रु के झुण्ड में घुस जाते थे, जिनसे बचने के लिए धनुष धारण करने वाले सैनिक के दल मत्ते हाथियों के पीछे हो जाते थे । रेकारेँ [मै०] = 'रे रे' शब्द से । पइसथि–मै०=पैठते हैं ।। 46 ।।

धनुष की डोरी के टंकार ध्वनि से आकाश मण्डल भर जाता था, सैन्य के दलों से पक्खर अस्त्र फेके जाते थे जो शत्रु समुदाय को चूर कर देते थे । क्रोध से वीर गण अपने गर्व परक्रम और गुण का बखान करते हुए आगे बढ़ रहे थे । वहाँ बड़े व्यायामियों [पहलमानों] का किया हुआ श्रम हाथापाई की मार में चला जाता था [कोई काम नहीं आता था । सींगिनि=सींग का धनुष । पाखर=एक विशाल अस्त्र । परचक्कह=परचक्र (शत्रुदल) का । तामसें [मै०]=क्रोध से । श्रमी [सं०] = सरमी = दण्ड–बैठक करने वाले । सरमेरा = श्रमयुद्ध, दावपेँच का युद्ध ।। 47 ।।

समतल भूमि में दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई, धनुष–बाण चलने लगे, जिसके चोट [अघात] से कवच उलट गये, तब बाँहरूपी दण्ड ही थेघने [अवलम्बन] का दण्ड [लाठी] बन गया । चतुष्पट–चउपट=चारों ओर समतल । भेट=भिड़न्त या मुलाकात ।। 48 ।।

[विद्युन्माला छन्द]

हुङ्कारे वीरा गज्जन्ता, पाइक्का चक्का भज्जन्ता ।
धावन्ते धारा टुट्टन्ता, सन्नाहा बाणे फुट्टन्ता ॥ 49 ॥
राउत्ता रोसेँ लग्गीआ, खग्गेहिं खग्गे भँग्गीआ ।
आरुट्ठा सूरा आबन्ता, उम्मग्गे मग्गे धावन्ता ॥ 50 ॥
एकक्केँ एक्के भेट्टन्ता, पारारी लच्छी मेट्टन्ता ।
अप्पाना माना सारन्ता, बेलक्केँ सत्तू मारन्ता ॥ 51 ॥
ओआरा-पारा बुज्झन्ता, कोअण्डे ठाणा जुज्झन्ता ॥ 52 ॥

[षट्पद छन्द]

दुहु दिस पाखर उट्ठ, माँझ संगाम भेट्ट हो ।
खग्गे खग्गेँ संघलिअ, फुलुँग उप्फइल अग्गि को ॥
अस्सवार असिधार, तुरअ राउत सञो टुट्टइ ।
बेलक वज्ज निघात, काअ कवचहु सञो फुट्टइ ॥
अरि कुञ्जर पञ्जर सल्ले रह, रुहिर धार गए गगन भर ।
रा कित्ति सिंह को कज्जरसेँ, वीर सिंह संगाम कर ॥ 53 ॥

हुङ्कारै र्वीरा गर्जन्ति, पदाति-चक्रं भञ्जन्ति ।
धावद्भिः धारा त्रुटिता, सन्नाहाः बाणैः स्फुटन्ति ॥ 49 ॥
राजपुत्राः रोषेण लग्नाः, खड्गैरेव खड्गाः भग्नाः ।
आरुष्टाः शूरा आयान्ति, उन्मार्गे मार्गे धावन्ति ॥ 50 ॥
एकैकम् एक आक्रामन्तः, पारक्यां लक्ष्मीं लुम्पन्तः ।
आत्मनो मानं प्रसारयन्तः 'वेलकास्त्रैः' शत्रून् मारयन्तः ॥ 51 ॥
अवारपारं बुध्यन्तः, कोदण्डैः स्थानासना युध्यन्ति ॥ 52 ॥

द्वयोरपि दिशोः प्रक्षरास्त्रम् उत्स्थितं, मध्ये-संग्रामं सम्मुखीभूताः ।
खड्गाः खड्गैः संघट्टिताः, स्फुलिङ्गा उत्स्फुरन्ति अग्नेः ।।
अश्ववारस्य असिधारेण, तुरगः राजपुत्रेण समं त्रुट्यति ।
'वेलकास्त्र'- वज्रनिघातेन, कायः कवचेन समं स्फुटति ।।
अरि-कुञ्जर-पञ्जरे शल्यं प्रविष्टं, रुधिरधारः गत्वा गगनं भरति ।
राज्ञः कीर्त्तिसिंहस्य कार्यरसेन, वीरसिंहः संग्रामं करोति ।। 53 ।।

वीर गण हुँकार के साथ गरजने लगते, तो भागते हुए सैनिकों की धारा [पंक्ति] टूट जाती, बाण से टकराकर कवच टूटने लगते थे ।। 49 ।।

राउत [राजपुत्र या गोप] रोषपूर्वक लड़ने लगे, खड्ग से खड्ग काटने लगे, अत्यन्त क्रुद्ध-शूर आने लगे, रास्ते-बेरास्ते दौड़ने लगे ।। 50 ।।

एक एक वीर से एक-एक भिड़ने लगे, शत्रु की लक्ष्मी को मिटाने लगे, अपने मान को बढ़ाने लगे और 'बेलक' नामक तीर से शत्रु को मारने लगे । वे आरपार तक समझते थे और क्रुद्ध हुए विशेष मुद्रा में खड़े होकर युद्ध करते थे । पारक्या [सं०]-पारारी [अव०] । स्थान-ठाण=धनुर्युद्ध के पाँच स्थान कहे गये हैं- वैशाख, मंडल, समपद, आलीढ़ और प्रत्यालीढ़ ।। 52 ।।

दोनों ओर से पाखर अस्त्र उठने लगे, बीच संग्राम में भिड़न्त हो गया, खड्ग से खड्ग टकराये, जिससे आग की चिनगारी उड़ने लगी । घुड़सवार की तलवार की धार से राजपुत्र [सवार] के साथ घोड़ा भी कट गया, 'वेलक' नामक तीर के वज्रसमान आघात से कवच के साथ शरीर भी फूट गये । शत्रु के हाथियों के पंजर में बर्छे घुस गये और वहाँ से शोणित की धारा [फुहाड़े] उठकर आकाश को भरने लगी । इस तरह राजा कीर्त्ति सिंह के कार्य में उत्साह से वीर सिंह संग्राम कर रहे हैं ।

संघटित-संघलिअ=टकराते थे । कज्जरसेँ=कार्य में दिलचस्पी लेकर । 'राउत सञो' एवं 'कवचहु सञो' में सहोक्ति अलंकार ।। 53 ।।

[रड्डा छन्द]

धम्म पेक्खइ अबरु सुरुतान ॥
अन्तरिक्ख ओत्तरिअ, इन्द चन्द सुरसिद्ध चारण ।
विज्जाहरे णह भरिअ, वीर जुज्झ देखन्ते कारण ॥
जहिँ जहिँ संघल सत्तुघल, तहिँ तहिँ पल तरवारि ।
सोणिअ मज्जिअ मेइनी, कित्तिसिंह करु मारि ॥ 54 ॥

[भुजङ्गप्रयात छन्द]

पले रुण्डमुण्डो, खले बाहुदण्डो
सिआलू कलक्केइ कङ्काल-खण्डो ।
धरा धूरि लोट्टन्त टुट्टन्त काआ
ललन्ता चलन्ता पझालन्ति पाआ ॥ 55 ॥
अरुज्झाल अन्तावली-जालबद्धो
बसा बेग बूडन्त उड्डन्त गिद्धो ।
गअं णिक्करन्तो, पिबन्तो भमन्तो
महामासु-खण्डो परेतो वमन्तो ॥ 56 ॥

धर्मः प्रेक्षते, अपरः सुरत्राणः ।
अन्तरिक्षे अवतीर्णाः, इन्द्र-चन्द्र-सुर-सिद्ध-चारणाः ।
विद्याधरैर्नभो भरितं, वीरयुद्ध-दर्शन-कारणात् ॥
यत्र यत्र संघट्टिता शत्रुघटा, तत्र तत्र पतितः तरवारिः ।
शोणिते मज्जिता मेदिनी, कीर्तिसिंहः करोति मारम् ॥ 54 ॥
पतिताः रुण्ड-मुण्डाः, स्खलिताः बाहुदण्डाः
शृगालाः कड़कड़ायन्ति कङ्काल-खण्डम् ॥
धरा-धूलिषु लुठन्ति त्रुट्यन्तः कायाः ।
युध्यन्तः चलन्तः प्रक्षरन्ति पादाः ॥ 55 ॥

अवरुद्धान्त्रावली-जालबद्धाः ।
वसा-वेगे निमज्जन्त उड्डयन्ति गृध्राः ।।
गतं निष्कुर्वन्तः पिबन्तो भ्रमन्तः ।
महामांस-खण्डं परेताः वमन्तः ।। 56 ।।

कीर्त्ति सिंह युद्ध कर रहे हैं जिसे धर्मराज और सुलतान देख रहे हैं । वीरों के युद्ध देखने के लिए इन्द्र, चन्द्र, देवता, सिद्ध और गन्धर्व आकाश में उतर आये और विद्याधरों से आकाश भर गया । जहाँ जहाँ शत्रु की घटा टकराती थी वहाँ वहाँ तलवार गिरने लगतीं थीं और शोणित से पृथ्वी डूब जाती थी । अवरु=और ।। 54 ।।

शरीर के धर और मुण्ड पड़े हुए थे, बाहुदण्ड लुढ़के थे, सियार नरकंकाल के खण्ड को कड़कड़ा रहे थे, टूटते हुए शरीर पृथ्वी की धूल में लोट रहे थे और चलते ही पैर [शरीर से अलग हो कर] चेष्टाहीन पड़े रहते थे । रुण्ड [सं०]=मुंडहीन देह । कलक्केइ=दाँतों से कड़कड़ाते थे । पझालन्ति-प्र+झट-पझाएब [मै०]=शक्तिहीन होना, आग का बुझना ।। 55 ।।

मनुष्य के आतों के जाल में उलझे हुए, चर्वी की धारा के वेग में डूबते हुए गिद्ध किसी तरह उड़ जाते थे, मरे हुए शरीर को खींच कर निकालते हुए [या निगलते हुए], शोणित पीते हुए, इधर उधर घूमते हुए प्रेतगण महामांस [नरमांस] के खण्डों का वमन कर देते हैं । अवरुद्ध-अवरुज्झ-अरुज्झ । अन्त्रावली=अँतड़ी का समूह । वसा=चर्वी । गतं-गअं=मृत को । बीभत्स रस ।। 56 ।।

सिआ मार फेक्कार रोलं करन्तो
बुहुक्खा बहू डाकिनी डक्करन्तो ।
बहुप्फाल वेआल रोलं करन्तो
उलट्टो पलट्टो पलन्तो कबन्धो ।। 57 ।।
सरासार-भिन्नो करेँ देइ सानो

उसस्से निसस्से बिमुक्केइ पाणो ।
जहाँ रत्त-कल्लोल नाना तरङ्गो
तहाँ सारि-सज्जो निमज्जो मअङ्गो ॥ 58 ॥

(षट्पद छन्द)

रकतक राङ्गल माँथ, उफरि फेरबी फोड़ि खा ।
हाथेँ न उट्ठए हाथि, छाड़ि वेआल पाछु जा ॥
नर-कबन्ध धलफलइ, मम्म वेआहल पेल्लइ ।
रुहिर-तरङ्गिणि-तीर, भूतगण जरहरि खेल्लइ ॥
उच्छलिअ डमरु डक्कार रव, सब दिसे डाकिनि डक्करइ ।
नर कन्ध-कबन्धे महि भरइ, कित्तिसिंह रा रण करइ ॥ 59 ॥
बेबि सेन्न संघट्ट, खग्ग खण्डल नहि मानहिं ।
सङ्कर पलइ सरीर, धाए गए चलिअ विमानहिं ॥
अन्तरिक्ख अच्छरा, विमल कर वीजए अञ्चल ।
भमर-मनोहर भमइ, पेम-पिच्छिल नअनञ्चल ॥
गन्धब्ब गीति दुन्दुहिअ वर, परिमल परिचय जान को ।
वर कित्तिसिंह रण-साहसहि, सुरतरु कुसुम सुविट्ठि हो ॥ 60 ॥

(रड्डा छन्द)

तब्बे चिन्तइ मलिक असलान ।
सब्ब सेन्न महु पलिअ, पातिसाह कोहान आइअ ।
अनअ-महातरु फलिअ, दुट्ठ दैव महु निअर पाइअ ॥
तो चल-जीवन पलटि कहुँ, थिर निम्मल जस लेञो ।
कित्तिसिंह सञो सिंह सञो, भटभेड़ा एक दोञो ॥ 61 ॥

छन्दः [तोटक]

हसि दाहिन हत्थे ससत्त्थ भई ।
रणबत्त पलट्टिअ खग्ग लई ॥
तहिँ एक्कहि एक्क पहार पले ।
जहिँ खग्गहि खग्गह धार धरे ॥ 62 ॥
हअ लङ्गिम चङ्गिम चारु कला ।
तरवारि चमक्कइ विज्जु झला ॥
टरि टोप्परि, टुट्टि सरीर रहे ।
तनु-सोणित-धारहि धार बहे ॥ 63 ॥

श्रगाली मारयति फेत्कारं तारं कुर्वती ।
बुभुक्षिता बहवो डाकिन्यो डक्कुर्वन्ति ॥
बहूत्फालं वेतालाः कोलाहलं कुर्वन्ति ।
उद्वृत्ताः परावृत्ताः पतन्ति कबन्धाः ॥ 57 ॥
शरासार-भिन्नः करेण ददाति संज्ञाम् ।
उच्छ्वस्य निश्श्वस्य विमुञ्चति प्राणान् ॥
यत्र रक्त-कल्लोले नाना तरङ्गाः ।
तत्र सारि-सज्जा निमग्ना मतङ्गाः ॥ 58 ॥

रक्तेन रञ्जितं मस्तकं, उत्फल्य फेरवी स्फोटयित्वा खादति ।
हस्तेन न उत्त्थापितो भवति हस्ती, परित्यज्य वेतालाः पश्चाद् गच्छन्ति ॥
नर-कबन्धा उत्त्थिताः पतिता भवन्ति, मर्म वेतालैः प्रेर्यते ।
रुधिर-तरङ्गिणी-तीरे भूतगणा जलकेलिं खेलन्ति ॥
उच्छलितो डमरु-डक्कार-रवः, सर्वदिक्षु डाकिन्यो डक्कुर्वन्ति ।
नराणां स्कन्ध-कबन्धैः मही भरति, कीर्त्तिसिंहो राजा रणं करोति ॥ 59 ॥

द्वे अपि सैन्ये संघट्टिते, खड्गाः खण्डितत्वं नहि मानयन्ति ।
सङ्गरे पतन्ति शरीराणि, धावित्वा गत्वा चलितानि विमानैः ॥

अन्तरिक्षे अप्सरसः, विमल-करैः वीजयन्ति अञ्चलैः ।
भ्रमर-मनोहराणि भ्रमन्ति, प्रेमपिच्छिलानि नयनाञ्चलानि ।।
गन्धर्व-गीतिः दुन्दुभ्या वरा, परिमलं परिचयं जानाति कः ?
वर-कीर्त्तिसिंहस्य रण-साहसैः, सुरतरु-कुसुमानां सुवृष्टिरभूत् ।। 60 ।।
तदैव चिन्तयति स्वामी 'असलानः' ।
सर्वं सैन्यं मम पतितं, पातिसाहः क्रोधान्ध आगतः ।
अनय-महातरुः फलितः, दुष्ट-दैवं मम निकटं प्राप्तम् ।।
ततः चल-जीवनं परिवर्त्त्य, स्थिरं निर्मलं यशो गृह्णानि ।
कीर्त्तिसिंहात् सिंह-समं, भटाक्रमणमेकं ददामि ।। 61 ।।
हसित्वा दक्षिण-हस्तेन सशस्त्रोऽभूत् ।
रणवर्त्मनि परावर्त्तितः खड्गं गृहीत्वा ।।
तत्र एकैकम् एकः प्रहारः पतितः ।
यत्र खड्गैः खड्गानां धाराः धृताः ।। 62 ।।
हयानां लघिमा चङ्गिमा चारुकला ।
तरवारिः चकास्ति यथा विद्युज्ज्वाला ।
अपसृतं शिरस्त्राणं, त्रुटितं शरीरं स्थितम् ।
तनु-शोणित-धाराभि र्धारावती प्रवाहिता ।। 63 ।।

सियारनी जोर से पिक्की मार रही है ['हुआ-हुआ' करती है], भूखी बहुतों डाकिनी ढकोस रही है [तेजी से खा रही है] या डकारती [तेज आवाज कर रही] है, बहुत तरह से कूद फान करते हुए वेताल हल्ला मचाते हैं, मनुष्य के पड़े-हुए धर उलट-पलट कर [छटपटा] रहे हैं । फेत्कार=गीदड़ का स्वर । डक=तेज स्वर ।। 57 ।।

शर की वृष्टि से बींधे हुए सैनिक हाथ से संकेत देते हैं और उसाँस-निसाँस लेते हुए प्राण छोड़ रहे हैं । जहाँ शोणित की नदी में अनेक तरङ्ग उठते हैं वहाँ झूल से सजा हाथी भी डूब जाता है । शर+आसार [वृष्टि] । संज्ञा-सञ्ञा-सान=संकेत, इसारा । रक्तस्य कल्लोलः यस्यां नद्याम्, शोणित की तरङ्गवाली नदी । सारि [सं०]=झूल के किनारे का गोटा ।। 58 ।।

शोणित से रंगे मनुष्य के सिर को फोड़ कर सिआरनी भर पेट से ज्यादा खा जाती है । वेताल को जब हाथ से हाथी का मृत शरीर नहीं उठता तो वह पीछे चला जाता है । मनुष्य का कटा धड़ उछल (धरफड़ा) रहा है, उसके मर्म शिराओं को वेताल खींच रहे हैं । शोणित की नदी के किनारे भूतगण जलक्रीड़ा कर रहे हैं । डमरू जैसे ड्क ड्क की आवाज उठ रही है, सभी ओर डाकिनी डक (तीक्ष्ण शब्द) कर रही हैं । मनुष्य के कन्धे और धरों से पृथ्वी भर गयी है । इस प्रकार राजा कीर्त्ति सिंह युद्ध कर रहे हैं ।

उफरि (मै०)=भोजन से पेट को तान कर । फेरवी=शृगाली । जरहरि-जलकेलि, झलहेर (मै०)=जलक्रीड़ा । बीभत्स रस ।। 59 ।।

दोनों सैन्य टकरा गये, तलवार खण्डित होने पर भी मानते न थे (चलते ही रहते थे), सग्राम में सैन्य के शरीर गिर जाते हैं और (उनकी आत्मा या सूक्ष्म शरीर) दौड़ कर (स्वर्ग के) विमान पर चले जाते हैं, आकाश में अप्सराएँ अपने स्वच्छ हाथ के द्वारा आँचल डुलाकर हवा देती हैं । उन अप्सराओं की 'भौँरे के समान सुन्दर प्रेम छलकती हुई आखें' घूम रहीं हैं । गन्धर्वों की गीतियाँ बाजे के साथ बड़ी अच्छी लगती हैं, जिनके विशुद्ध परिचय को कौन जान सकता है ? श्रेष्ठ कीर्त्ति सिंह की रणसाहसों से देववृक्ष के फूलों की वर्षा होने लगी । खण्डल (मै०)=काटे हुए । वीजए (प्रा० मै०)= पंखा झलना । भमर मनोहर नयनाञ्चल=भौँरे के समान सुन्दर आँख की पुतली । पर्यायोक्त और उपमा अलंकार ।। 60 ।।

तभी मलिक असलान सोचने लगे- मेरी सभी सेना गिर गयी, क्रोध से भरा हुआ बादशाह आ गया, मेरे अन्याय कार्य का महान् वृक्ष फल गया, दुष्ट दैव (भाग्य) मेरे निकट आ गया । तो इस चञ्चल जीवन को पलट कर स्थिर निर्मल यश ले लूँ और सिंहके समान कीर्त्ति सिंह के साथ वीरोचित एक मुठभेड़ कर लूँ । महु=मेरा । अनय=दुर्नीति । रूपक अलंकार । सञो=से । सञो-समं=समान । यमक एवं उपमा अलंकार । भट=वीर, भेड़ा-भिड़न्त ।। 61 ।।

(यह निश्चय कर असलान) हँस कर दाहिने हाथे से सशस्त्र हो गया और तलवार लेकर रणभूमि की राह पर लौट आया । वहाँ एक-दूसरे

पर प्रहार पड़ने लगा, जहाँ खड्गों से खड्गों के धार टकराने लगे । ससत्त्थ=सशस्त्र, शस्त्र सहित । वर्त्म-बट्ट-बाट=रास्ता ।। 62 ।।

घोड़े अपनी लघिमा (फुर्त्ती) एवं स्वस्थता की कला से चल रहे थे, तलवारें बिजली की ज्वाला (चमक) के समान 'चकमक' कर रही थीं, (माथे पर से) टोप हट गये और शरीर आहत हो गये । देह से शोणित की धारा ही धारा बहने लगी । चंगा=स्वस्थ, चंगिम=स्वस्थता । चारु=चलने लगे (अव०) ।। 63 ।।

तनु-रङ्ग तुरङ्गम अङ्ग बसे ।
तनु छड्डइ लग्गइ रोस वसे ॥
सब्बउ जन पेक्खइ जुज्झ तहा ।
महाभारअ अज्जुन कन्न जहा ॥ 64 ॥
णं आहव माहव सम्भु करे ।
बाणासुर जुज्झ विवत्त भरे ॥
महराअन्हि मल्लिके चप्पि लिऊ ।
असलान निआनहि पिट्ठि दिऊ ॥ 65 ॥

(दोहा छन्द)

तं खणे पेक्खिअ राअ सो, अरु अक्खेब करेओ ।
जे करेँ मारिअ बप्प महु, से कर कमन हरेओ ॥ 66 ॥

[गद्य]

अरे अरे असलान !! प्राणकातर ! अवज्ञात-मान ! समर-परित्याग-साहस ! धिक् !! जीवन-मात्ररसिक ! की जाहि, अपजस साहि ? सत्तु करी डीठि सञो पीठि दए, भावहु भैंसुरक सोझाँ जाहि !! 67 ॥

(दोहा छन्द)

जइ धकेँ जीवसि जीव गए, जाहि जाहि असलान ।
तिहुअण जग्गइ कित्ति मझु, तुज्झ दिअउँ जिवदान ॥ 68 ॥

[चौपाई]

जइ रण भग्गसि तइ तोञे काअर ।
अरु तोहि मारइ से पुनु काअर ॥
जाहि जाहि अनुसर गए साअर ।
एम पजम्पइ हसि बे नाअर ॥ 69 ॥

(रड्डा छन्द)

तो पलट्टिअ जित्ति रण राए ।
संखध्वनि उच्छलिअ, नित्त गीत वज्जान वज्जिअ ।
चारि वेअ झङ्करिअ, सुह मुहुत्त अहिसेक किज्जिअ ॥
बन्धव जन उच्छाह करु, तिरहुति पाइअ रूप ।
पातिसाह जसु तिलक करु, कित्तिसिंह भउ भूप ॥ 70 ॥

तनु-रङ्गः तुरङ्गमानाम् अङ्गे वसति ।
तनुं त्यजन्तो लगन्ति रोषवशेन ॥
सर्वेऽपि जनाः प्रेक्षन्ते युद्धं तथा ।
महाभारते अर्जुन-कर्णयो र्यथा ॥ 64 ॥
नूनम् आहवं माधव-शम्भू कुरुतः ।
बाणासुर-युद्ध-विवर्त्त-भरेण ॥
महाराजेन मल्लिकः आक्रान्तोऽभिभूतः ।
'असलानः' निदानेन पृष्ठं दत्तवान् ॥ 65 ॥
तत्क्षणं प्रेक्षितवान् राजा स, अवरम् आक्षेपं कृतवान् ।
'येन करेण मारितो वप्रो मम, स करः कतमेन हतः' ॥ 66 ॥

अरे अरे असलान !! प्राणकातर ! अवज्ञात-मान ! समर-परित्याग- साहसिक ! धिक ! जीवनमात्र-रसिक ! किं यासि अपयशः साधयित्वा ? शत्रो र्दृष्टितः पृष्ठं दत्वा भ्रातृवधूरिव भ्रातृश्वशुरस्य सम्मुखं यासि ।। 67 ।।

यं धृत्वा जीवसि गत्वा, याहि याहि असलान ।
त्रिभुवने जागर्त्ति कीर्त्ति र्मम, तुभ्यं ददामि जीवदानम् ।। 68 ।।
यदि रणात् पलायसे तर्हि त्वं कातरः ।
अवरं त्वां यो मारयति स पुनः कातरः ।।
याहि याहि अनुसर गत्वा सागरम् ।
एवं प्रजल्पतः हसित्वा द्वौ नागरौ ।। 69 ।।

ततः परावर्त्तितो जित्वा रणं राजा ।
शंखध्वनिः उच्छलितः, नृत्यं गीतं, वाद्यानि वादितानि ।
चत्वारो वेदा झङ्कृताः, शुभ-मुहूर्त्ते अभिषेकः कृतः ।।
बान्धवजनाः उत्साहं कृतवन्तः, तीरभुक्तिः प्राप्ता स्वरूपम् ।
पातिसाहः यस्य तिलकं कृतवान्, स कीर्त्तिसिंहोऽभूद् भूपः ।। 70 ।।

इति डॉ० प० श्री शशिनाथ झा शर्मकृता कीर्त्तिलता-संस्कृतच्छाया समाप्ता ।

मानव शरीर के रङ्ग (शोणित) घोड़े के देह पर आ टपके, लगता है कि रोषवश वह (घोड़ा) देह छोड़ रहा है । सभी लोग युद्ध को इस तरह देख रहे हैं जैसे महाभारत में अर्जुन और कर्ण का युद्ध हुआ था। 'वसे-वसे' में यमक, 'जहा' में उपमा अलंकार । तथा-तहा=उस तरह । यथा-जहा=जैसे ।। 64 ।।

लगता है कि बाणासुर से युद्ध की विकट वार्ता (हाल) की अधिकता जान कर विष्णु और शम्भु युद्ध कर रहे हों । महाराज कीर्त्ति सिंह ने मलिक असलान को चाप (खदेड़) लिया और असलान निरुपाय (कोई चारा न पानेवाला) होकर पीठ दिखा दिया (युद्ध से भाग गया) ।। 65 ।।

उसी समय राजा ने उसे (असलान को) देखा और अच्छी तरह आक्षेप (व्यंग्य) किया– तूने जिस हाथ से मेरे पिता को मारा था, अभी उस हाथ को किसने छीन लिया' ? ।। 66 ।।

अरे रे असलान, प्राण के लिए डरने वाला, मान की उपेक्षा करने वाला ! युद्ध को परित्याग करने में साहस दिखाने वाला ! तुझे धिक्कार है । केवल प्राण को प्यारा मानने वाले ! क्या जा रहे हो ? अशय को साधित कर, शत्रु की दृष्टि से पीठ दिखाकर, भ्रातृवधू (अनुजपत्नी) बनकर भैंसुर (पति के अग्रज) के सामने (मुँह झाँप कर) जा रहे हो । अपयशः-अपजस [मै०]=अयश । संसाध्य-साहि = साधित कर । पीठि [मै०]=देह का पीठ । भ्रातृवधू-भाबहु [मै०] । भ्रातृश्वसुर-भैंसुर [मै०]। सोझाँ [मै०]= सामने । रूपक अलंकार ॥ 67 ॥

जो लेकर तुम जी रहे हो, जाकर जीओ, असलान ! जाओ, जाओ । तीनों भुवनों में मेरा यश जाग रहा है, तुझे मैं जीवनदान देता हूँ। जइ [मै०]=जिस । धकेँ [मै०]=धारण कर [अश्रय लेकर] । गए [मै०] = जाकर ॥ 68 ॥

जिसलिए रण से भाग रहे हो इसीलिए तुम कायर हो और जो तुझे मारे वह तो और भी कायर होगा । जओ, जाओ, समुद्र के पास जाओ । इस तरह वे दोनों रसिक वीर [कीर्त्ति सिंह और वीर सिंह] हँसकर बोल रहे हैं । येन-जइ [मै०] = जिस कारण । तइँ = उसी कारण । द्वे-बे=दोनों । 'से पुनु काअर' में सार अलंकार ॥ 69 ॥

तब रण में जीतकर राजा कीर्त्ति सिंह अपने घर लौटे । शंखध्वनि फैलने लगी, नाँच-गान के साथ बाजे बजने लगे । चारों वेदों का सस्वर पाठ झंकृत होने लगा । शुभ मुहूर्त्त में राज्याभिषेक किया गया । बान्धव लोग उत्साह करने लगे । तिरहुत ने अपना वास्तविक रूप को पाया । जिसे बादशाह ने तिलक लगाया, वे कीर्त्तिसिंह राजा हुए । उदात्त अलंकार ॥ 70 ॥

[शार्दूलविक्रीडित छन्द]

एवं सङ्गर-साहस-प्रमथन-प्रारम्भ-लब्धोदयां
पुष्णातु श्रियमाशशाङ्कतरणिं श्रीकीर्त्तिसिंहो नृपः ।
माधुर्यप्रसवस्थली-गुरुयशोविस्तारशिक्षासखी
यावद्विश्वमिदं च खेलतु कवे र्विद्यापतेर्भारिती ॥ 71 ॥

इति महामहोपाध्याय-सट्ठक्कुर-श्रीविद्यापति-विरचितायां कीर्त्तिलतायां चतुर्थः पल्लवः समाप्तः ।

[समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥]

इस तरह संग्राम में साहस पूर्वक शत्रुमर्दन करने के प्रारम्भ में ही उदय को प्राप्त करने वाली लक्ष्मी को राजा कीर्त्तिसिंह तब तक बढ़ाते रहें, जब तक चन्द्र और सूर्य का अस्तित्व रहे और माधुर्य के उद्गम की स्थली तथा बड़े भारी यश के विस्तार की शिक्षा देने वाली जो कवि विद्यापति की भारती वह तब तक खेलती रहे जब तक यह संसार रहे ॥ 71 ॥

इति म०म० उत्कृष्ट- ठाकुर-वंश में उत्पन्न श्री विद्यापति विरचित कीर्त्तिलता में चतुर्थ पल्लव समाप्त हुआ ।

इति दीपग्रामवास्तव्य पं० गंगानाथ झा के पुत्र विद्यावाचस्पति डॉ० पं० शशिनथ झाकृत कीर्त्तिलता-'प्रबोधिनी' हिन्दी व्याख्या समाप्त

विद्यापतिकृत

कीर्तिलता

(केवल मैथिली व्याख्या)

व्याख्याकार- पं० शशिनाथ झा

पहिल पल्लव

गणेश कहैत छथि– पिताजी ! हमरा स्वर्गक नदी गङ्गाक कमलनाल दिअ' । महादेव कहैत छथि- पुत्र ! ई कमलनाल नहि, किन्तु सापक राजा वासुकी थिकाह' । एहि पर गणेश कानए लगलाह आ महादेव मुसकाए लगलाह । ई देखि पार्वतीक कौतूहल (आनन्दपूर्वक उत्सुकता) अहाँ सभक रक्षा करओ ।।

नाकनदी=स्वर्गक नदी गंगा । मृणाल=कमलक नाल ।। १ ।।

अओरो–

चन्द्र, सूर्य ओ अग्निक रूपमे चमकैत जे तीनू आँखि ताहि सँ युक्त शम्भुक वन्दना करैत छी जे अज्ञान रूपी अन्धकारक शत्रु थिकाह ।।

अज्ञानरूपी तिमिर (अन्हार)क द्वेषी- ई शिवक विशेषण साभिप्राय (अभिप्राय सँ युक्त) अछि जे ओ हमर अज्ञानक नाश करताह । तें एतए परिकर नामक अलंकार अछि ।। २ ।।

अओरो–

ओ भारती (सरस्वती) अहाँलोकनिक रक्षा करथु जे सब अर्थक प्राप्तिक द्वार, जीहरूपी रङ्गमञ्चक नर्तकी, तत्त्वज्ञानक दीपशिखा, शृंगारादि

रसक पसारबाक तरंग, स्वर्गलोकक नदी ओ संसारक अन्त तक स्थिर रहए वाला यशक लेल सखी स्वरूपा छथि' । रूपक अलंकारक माला ।। ३ ।।

कलियुग मे घर-घरमे काव्यरचना होइछ, तकर श्रोता नगर-नगर मे छथि, तकर रसज्ञाता देश-देशमे छथि, किन्तु दाता संसार भरिमे दुर्लभ छथि ।। ४ ।।

(काव्यक) श्रोता, ज्ञाता, उदार, कवि राजा कीर्ति सिंहक विषय मे कवि विद्यापति भव्य (सुन्दर) काव्यक रचना करैत छथि । एतए कीर्तिसिंह मे दुर्लभ गुण सभक निवास अछि, तें विद्यापति हुनके यशक वर्णन करै छथि जे राजा स्वयं कवियो छथि । एतए 'करोति' एवं 'विद्यापतिः कविः' पाठ मानि अर्थ कएल गेल अछि । ।। ५ ।।

त्रिभुवन रूपी खेत मे हुनक (कीर्तिसिंहक) कीर्ति रूपी लता (वल्ली) कोना पसरि सकत जँ अक्षर (कविता) रूपी खाम्ह (खुट्टा) द्वारा मचान नहि बान्हल जाए ।

अर्थात् जेना सजमनि आदि लत्तीक विकासक लेल खुट्टा-बाँस-करची आदि सँ मचान बनाएब आवश्यक होइछ तहिना राजा कीर्ति सिंहक कीर्तिरूपी लताक प्रचार-प्रसारक लेल अक्षरबन्ध (काव्य) आवश्यक अछि । एतए त्रिभुवन केँ खेत सँ, कीर्तिकेँ लता सँ ओ अक्षरबन्धकेँ मचान सँ अभेद रहबाक कारण माला रूपक एवं अर्थापत्ति अलंकार अछि ।।

खेत्तहिं=खेत मे, जेना-गामहिं, घरहिं । अक्खर=अक्षर, मै०-आखर ।। ६ ।।

तें हम प्रसिद्ध कए जेहनो-तेहनो काव्य कहि रहल छी । दुर्जन तँ अपन स्वभाव दुर्जनता सँ एकरा दुसबे करताह, किन्तु सुजन लोकनि प्रशंसा करताह ।

लता केँ पसरबाक लेल मचानक आवश्यकता होइछ, मचानक सुन्दरताक नहि, सुन्दरता तँ लतामे स्वयं होइछ । तहिना हमर कविताक सौन्दर्य तँ कीर्ति सिंहक गुण होएत । ओहि गुणक केवल आधार हमर कविता होएत । खल तँ स्वभाव सँ दुसताहे, तकर परवाहि हमरा नहि,

किएक त एहि संसार मे गुणग्रहक सज्जनो छथि ।।

मज्रे=हम (एकवचन प्रा०मै०) । निरूढ़ि=प्रसिद्धि । खलत्तणे (प्रा०)=खलत्वसँ । दूसिहइ=दुसताह (मै०) ।। ७ ।।

सुजन हमर काव्यक प्रशंसा करथु वा दुर्जन निन्दा करथु, ई उचिते थिक, किएक तँ विषधर (साप) अवस्से विष वमन करैत अछि आ चन्द्रमा अमृत खसबैत छथि ।

अर्थात् जनिक जे स्वभाव होइत छनि से त करताहे, किएक तँ हुनक काजे सएह छनि । तात्पर्य ई जे दुर्जनक द्वारा कथित दोष हुनक थिकनि, हमर काव्यक नहि । दृष्टान्त अलंकार ।

अवसओ (अव०)=अवश्ये । अमिञ (अव०)=अमृत । विमुक्कइ (अव०) = विमुक्त करैत छथि ।। ८ ।।

सज्जन मने मन विचारैत छथि जे संसार मे सबकें मित्रे बनाए ली, हमर भेद (रहस्यक भेद वा दोष) कहनिहार दुर्जन यदि छथि त ओहो वैरी नहि होइत छथि । (किएक त अपन दोषक ज्ञान प्राप्त कए हमरा अपना सुधारबाक अवसर भेटत) ।। ९ ।।

बालचन्द्र (शुक्ल पक्षक द्वितीया तिथिक छोट चन्द्रमा) आ विद्यापतिक भाषा एहि दुनू कें दुर्जनक उपहास नहि लगैत अछि । ओ (चन्द्रमा) परमेश्वर शिवक शेखर (मस्तक) पर शोभित छथि आ ई (विद्यापतिक भाषा) रसिकक मनकें निश्चित रूप सँ मोहि लैत अछि ।

एतए 'दुज्ज न'–प्रचलित पाठ 'दुहु नहि', 'सेहर'–प्रचलित पाठ 'हर सिर' । अर्थ समाने, एकमे सरलता, दोसरमे चमत्कार (यमक अलंकार) ।

बालचन्द्र छोट, अल्पप्रकाश ओ वक्र होएबाक कारण उपहासक पात्र छथि, मुदा हुनकामे एक एहन गुण अछि जे ओ दोष दबि जाइछ । ओ गुण थिक महादेवक मस्तक पर हुनका शोभित रहब । विद्यापतिक भाषा अवहट्ठ होएबाक कारण संस्कृतसँ हीन थिक तथापि रसिक सभक द्वारा प्रशंसित होएबाक कारण एहिमे दोष नहि लगैछ ।। १० ।।

ककरा परबोधू (नीक जकाँ बुझाउ), ककरा मनाउ, कोना नीरस (रसहीन) मनवलाकें रसक आस्वादन लेल आनू ? यदि हमर भाषा रसयुक्त होएत तँ जे बुझताह से प्रशंसा करताह ।।

काव्यक गुण कें केवल सहृदये (रसिके) व्यक्ति बुझि सकैत छथि । परन्तु सहृदय कें कोना चिन्हल जाए ? एहि समस्याक निदान हेतु हम पहिने काव्य कें पूरा कए लैत छी, सहृदय स्वयं एहि पर आकृष्ट होएताह ।

कमन-कतम (सं०)-कओन-कओन; 'कमन तों एत रे हरि हरि'-गोरक्षविजय मे विद्यापति ।। ११ ।।

मधुकर (भौंरा) फूलक रस कें बुझैत अछि, चतुर रसिक काव्य सभकें बुझैत छथि, सज्जन दोसराक उपकार मे मन कें लगबैत छथि आ दुर्जन तँ मलिन होइत छथि ।

हमर काव्यक आस्वादन भ्रमर सदृश रसिके कए सकैत छथि । सज्जन सहानुभूति पूर्वक पढ़ताह आ दुर्जन अपन मनक मलिनता सँ दोषे टा पओताह, निर्दोषो काव्य मे हुनका दोष भेटतन्हि ।।

महुअर (प्रा०)– मधुकर । कव्वकलाउ (अव०)– काव्यकलापकें (काव्य समुदाय कें) । छइल्ल (प्रा०)- छविमान्=विदग्ध (सं०)=चतुर रसिक । नाम (सं०)=प्रसिद्धिसूचक शब्द, 'विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्' । मइल्ल (अव०)- मलिन, मइल (मै०) ।। १२ ।।

संस्कृत भाषा बुधजन (विद्वान्) कें नीक लगै छनि, प्राकृत भाषाक रसक मर्मकें क्यो नहि पबैत छथि । अपन देशक भाषा सब लोककें मीठ लगैत छनि । तें तकर समान अवहट्ठ मे अपन काव्य कहि रहल छी ।

देसिल (मै०)-देशीय । वअना (अव०)-वचन, वाणी । सन (मै०)=समान ।। १३ ।।

भम्हरी भम्हरा सँ पुछैत छैक जे हे भृंग ! सुनू, संसार मे सबसँ उत्कृष्ट वस्तु की अछि ? भम्हरा उत्तर दैत अछि– हे मानिनि ! मान सँ जीबाक लेल वीर पुरुषक अवतार (जन्म) लेबे श्रेष्ठ वस्तु थिक ।

एतएसँ कथावस्तुक भूमिका बन्हैत छथि जे भृंगी ओ भृंगक संवाद रूपमे अछि । एतए एक एहन वीर पुरुषक कथा अछि जे मानपूर्वक जीबैत छथि ।

अवतार (सं०)=नीचाँ उतरब, स्वर्ग आदि उपरका लोक सँ देवता, सिद्ध आदिक पृथ्वी पर जन्म लेब ।। १४ ।।

हे नाथ ! वीर पुरुष ककरा कहल जाय, से नहि जनैत छी । यदि अहाँ उत्साह सँ फड़िछाए कही त हम सुनबाक कामना करैत छी ।।

कइ (अव०)=कम् (सं०)=कनिका । जम्पिअइ=कहल जाइछ । उच्छाह=उत्साह । फुड=स्फुट=स्पष्ट । हओ (अव०)=अहम् (सं०)=हम । आकण्णन (अव०)=आकर्णन (सं०)= अकानब (मै०)=ध्यानपूर्वक ।। १५ ।।

भम्हरा उत्तर दैत छैक- वीर पुरुष कीर्त्तिमे लोभाएल एवं युद्ध मे शूर होइत छथि । हुनक हृदय धर्महिमे लागल रहैछ, ओ विपत्तिकालमे दीनवचन नहि बजैत छथि, सरल स्वभावक कारण आनन्दित रहैत छथि, जनिक सम्पत्तिक उपभोग सुजन व्यक्ति करैत छथि । ओ एकान्तमे ककरो द्रव्य (धन) दए बिसरि जाइ छथि (तगेदा नहि करैत छथि), हुनक शरीर सत्त्वगुण सँ पूर्ण होइछ । एतेक लक्षण सँ वीर पुरुष लक्षित (चिन्हल) होइत छथि, तनिक प्रशंसा करैत छी ।।

णहु (प्रा०)=न खलु (सं०)=नहियें । सुअन (अव०)=सुजन । लक्खिअइ (अव०)=लक्ष्यते (सं०)=लक्षित होइत छथि ।। १६ ।।

किएक तँ–

पुरुषत्व=पुरुषक सहज गुणक रहले पर पुरुष होइत छथि, केवल जन्म लए लेले सँ पुरुष नहि कहबैत छथि । जल देले सँ मेघ जलद कहबैत अछि, केवल धूआँक संचित रूप जलद नहि कहबैछ । दृष्टान्त अलंकार ।। १७ ।।

से पुरुष थिकाह जनिका मान रहनि, से पुरुष थिकाह जनिका धनक उपार्जनक शक्ति होन्हि । एहि सँ भिन्न व्यक्ति पुरुषरूपमे देखाइतो

पुरुष नहि, अपितु पुच्छ (नाङरि) सँ हीन पशु थिकाह ।

पुरिसो (अव०)- पुरुषः (सं०) । इअरो (अव०)- इतरः (सं०)=अन्य । विहूणा (प्रा०)=विहीनः (सं०) । पसू (अव०)=पशुः (सं०) ।। १८ ।।

पुरुषक कथा हम कहैत छी जनिक प्रस्ताव (चर्चा) सँ पुण्य होइत छैक आ सुख, सुभोजन तथा शुभ वचन सँ दिन बितैत अछि ।

हञो (अव०)-हम (एकवचन) । कहञो-कथयामि (सं० । देवहा (अव०)- दिवस । 'भुञ्जए देवहा तीस'- डाक । सँपुन्न-सम्पूर्ण ।। १९ ।।

पुरुष भेला राजा वलि जनिका लग विष्णु भगवान् हाथ पसारलनि (हुनका सँ भूमि मङलनि) । पुरुष भेलाह रघुवर राम जे रणमे रावण कें मारलनि । पुरुष भेलाह भगीरथ जे अपन कुलक उद्धार कएलनि । पुरुष भेलाह परशुराम जे क्षत्रियक नाश कएलनि । अओर पुरुष भेलाह गणेश राएक पुत्र राजश्रेष्ठ कीर्त्तिसिंह जनिक हम प्रशंसा करैत छी जे समर मे शत्रुक सम्मर्दन कए वप्पावैरक (पिताक शत्रुक दर्पक) उद्धार (संशोधन) कएलनि (शत्रु कें हराए बदला लेलनि) ।

कन्न (अव०)-कण्ह (प्रा०)-कृष्ण (सं०)=विष्णुभगवान् । पसारिअ (मै०)=पसारल । रघुतनय=रघुनन्दन राम, 'सीताविश्लेषदुःखादिव रघुतनयः'- कीर्तिगाथा मे रामक लेल रघुतनय शब्दक प्रयोग । राअगुरु=राजामे गौरवशाली । गएणेस (अव०)-गणेश ।। 20 ।।

भम्हरीक उक्ति- हेनाथ ! एहि राजाक रसमय चरित्र कें गुप्त कए नहि राखू । ओ राजा कीर्तिसिंह कोन वंशक के छलाह ? से सब बुझाकए कहू ।

रसाल=रस लाबएवाला । गोए=गोपन कए=विनु कहनहिं, नुकाकए । कवन-कतम (सं०)-कोन ।। २१ ।।

भम्हराक उत्तर- (कीर्तिसिंहक वंशक वर्णन-) ओ सब कठोर (नीरस) तर्क (न्यायशास्त्र) आ वेद पढ़ने छलाह । दान कएला सँ

दरिद्रताकें खण्डित कएलनि, परम ब्रह्मकें परमार्थ (सबसँ ऊपर) बुझैत छलाह, धन सँ यशकें बटोरैत (संगृहीत करैत) छलाह, सत्त्व (बल) सँ संग्राममे शत्रुसँ युद्ध करैत छलाह । 'ओइनी' वंश संसारमे प्रसिद्ध अछि, तकर सेवा के नहि करैछ ? जाहिमे दुनू वस्तु एकेठाम प्राप्त होइत अछि भूपति आ भूदेव । अर्थात् राजा त क्षत्रिय होइत छथि, मुदा कीर्तिसिंहक कुलक लोक ब्राह्मण होइतो राजा छथि ।

सत्तें (अव०)=सत्त्वेन (सं०)=बलसँ । ओइनी गाँव समस्तीपुर जिलामे अछि । ओतए बसबाक कारण एहि कुलक नाम ओइनिवार भए गेल ।। २२ ।।

जे बलि ओ कर्णद्वारा पूर्वमे स्थापित दानक कीर्तिमान कें खण्डित कएलनि (हुनका सबहु सँ बढ़ि कए दान कएलनि), जे ककरो शरण मे जएबाक परित्याग कएलनि (शरणमे नहि गेलाह), जे याचक कें निराश नहि कएलनि, जे तथ्यहीन (असार) बात नहि बजलाह, जे अनुचित मार्ग पर पएर नहि रखलनि, तनिक कुलक बड़ाइ कहबाक कोन उपाय अछि, जाहि कुलमे युक्तियुक्त बुद्धिवाला अथवा प्रत्युत्पन्नमति (क्षण भरिमे विलक्षण उत्तर देनिहार) कामेश्वर सनक राजा भेलाह ।

अत्थिजन (अव०)-अर्थिजन (सं०)-याचक सब । पाओ=पएर । उम्मग्ग=उन्मार्ग=अनुचित रास्ता पर ।। २३ ।।

तनिक (कामेश्वरक) पुत्र भोगीश राए भेलाह जे भोग करबामे इन्द्र, तेज सँ अग्निक समान, कान्ति सँ सुन्दर कामदेव, याचक सभक लेल सिद्धिक्षेत्र, दान सँ पाँचम वलि जानल जाइत छलाह, जनिका फीरोज साह तुगलक प्रियमित्र कहि कए सम्मानित कएने छलथिन, जे प्रताप दान सम्मान गुण सँ सबकें अपना वशमे कएने छलाह, जनिक कुन्दफूलक समान उज्ज्वल यश सम्पूर्ण पृथ्वीपर विथरि (पसरि) गेल (एहन छलाह भोगीश राए) ।

मालारूपक अलंकार, उपमा अलंकार । तसु (अव०)=तस्य (सं०)=तनिक । हुआसन (प्रा०)- हुताशन (सं०)=अग्नि । कुसुमाउह (प्रा०)-कुसुमायुध (सं०)=कामदेव । केदार (सं०)=क्षेत्र, कियारी । पञ्चम वलि-दैत्यराज बलि उत्कृष्ट दाताक प्रतीक थिकाह । विद्यापति एहन पाँच

दाताकें बलि कहैत छथि- बलि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, कर्ण आ भोगीश राए -'वलि-कर्ण-दधीचिकरो स्पर्धा साध'-कीर्तिलता-३, ३१. संकास=संकाश=समान । जस = जनिक(यस्य-सं०) ।। २४ ।।

तनिक (भोगीशक) पुत्र नीति, विनय ओ गुण सँ श्रेष्ठ राए गणेश भेलाह जे अपन यशरूपी फूलक सनेस दसो दिशामे पठाए देलनि ।। २५ ।।

दान देबाक कारण गणेश श्रेष्ठ छलाह जे याचक गणकें प्रसन्न कएलनि, मान सँ गणेश श्रेष्ठ छलाह जे शत्रुक उन्नतिक भङ्ग कएलनि, बल सँ गणेश श्रेष्ठ छलाह जे इन्द्र सँ तुलना पओलनि, कीर्त्ति सँ गणेश श्रेष्ठ छलाह जे पृथ्वीमण्डल कें यश सँ उज्जर कए देलनि आ सुन्दरतासँ गणेश श्रेष्ठ छलाह जे देखबामे कामदेव सन लगैत छलाह । एहि तरहें भोगीशराएक पुत्र गणेश राए संसार मे अत्यन्त प्रसिद्ध ओ श्रेष्ठ छलाह ।

बड्ढिम-वृद्धि । सत्तें (अव०)-सत्त्वेन (सं०)-सत्त्व (बल) सँ । आखण्डल (सं०)=इन्द्र । पञ्चशर=पञ्चबाण कामदेव ।। २६ ।।

तनिकर पुत्र युवराजसबहिक मध्य पवित्र, असंख्य गुणसँ भरल, प्रतिज्ञा पद कें पूर्ण करबामे परशुराम स्वरूप, मर्यादाक मङ्गलमय आवास, कविता करबामे कालिदास स्वरूप, प्रबल शत्रुक सेनाक महान् वीर सँ भरल रणभूमि मे अदम्य (दमन योग्य नहि) साहस कएनिहार, धनुष चलएबाक विद्यामे अर्जुनक अवतार स्वरूप, चन्द्रचूड़ामणि शंकरक सेवा कएनिहार, सकल राजोचित साधन सँ युक्त महाराजाधिराज श्रीमान् वीरसिंह देव छथि ।। २७ ।।

तनिक (वीर सिंहक) सबसँ छोट किन्तु गुण सँ श्रेष्ठ भाए राजा कीर्तिसिंह पृथ्वीकें अधिकृत करथु, चिरकाल तक जीबथु ओ धर्मक प्रतिपालन करथु ।। २८ ।।

जे राजा (कीर्तिसिंह) अत्यन्त अतुलनीय पराक्रम सँ विक्रमादित्यक समान साहस साधि, बादशाहकें आराधि (पूजित कए), दुष्ट सभक घमंडकें चूर्ण कएलनि, पिताक वैर सधाए (हुनक वैरी कें मारि) माताक मनोरथ कें पुराए देलनि, प्रबल शत्रुक सेनाक जमघट्ट सँ टकरएबाक कारण उत्पन्न धक्काधुक्की सँ भेल सैनिकक पएरक आघात सँ तथा अत्यन्त चञ्चल

घोड़ाक खुरसँ खुनल जएबाक कारण पृथ्वीक धूरा भरि गेला सँ गहन अन्धकारक कारण रातुक समान कारी समर भूमिमे निशभिसारिकाक रूपमे (अन्हार रातिमे नुका कए प्रिय सँ मिलनक हेतु जाएवाली नायिकाक रूपमे) आएल विजयलक्ष्मीक पाणिग्रहण (विवाह) कएलनि, बुड़ैत राज्यक उद्धार कए (पुनः प्राप्त कए) रखलनि, प्रभुशक्ति (ऐश्वर्य), ज्ञानशक्ति एवं दानशक्तिक परीक्षाकें जनलनि, रूसल ऐश्वर्यकें बौंसि कए अनलनि, शत्रुक अहंकार कें दूर कएलनि आ अतिचञ्चल तरुआरिक धारक तरंग सँ संग्राममे मानू समुद्रक फेनक समान उज्ज्वल यश कें उठाए दिग्दिगन्त मे पसारि देलनि ।

माहि (अव०)=माए । परीक्षा जानलि=परीक्षा ज्ञाता (सं०) कर्मवाच्य । सारेओ–निःस्सारित भेल । प्रबल=प्रचुरबलवाला, शत्रुबल=शत्रुक सेना, बलशब्दक आवृत्तिमे यमक अलंकार ।। २९ ।।

राजा कीर्तिसिंहक कीर्तिरूपी कामिनी (नायिका) चन्द्रमाक कला (प्रकाश) कें जितबाक इच्छा करओ जे कीर्ति ईशक (अधीनस्थ राजा सभक मस्तक पर निवास करबामे अतिनिपुण अछि आ ऐश्वर्यक भार (अधिकता) स्वरूप रमणीय (सुन्दर) भूषणसँ युक्त अछि । चन्द्रकला पक्षमे–चन्द्रमाक कला ईशक (शिवक) मस्तक पर रहैत अछि आ शिवेक विभूति (भस्म) सँ भूषित सुन्दर अछि । एहि दुनू गुणक कारण कीर्ति एवं कला एखन तुल्य अछि, मुदा कविक आशंसा अछि जे कीर्ति जीति जाओ ।

पेसला (अव०)– पेशला (सं०)=निपुण, यथा–रसपेशल । यामिनी= राति, तकर ईश्वर चन्द्र, तनिक कला कौमुदी=चन्द्रप्रकाश । यामिनीश्वरकलाः द्वितीयाबहुवचन=चन्द्रकलासबकें, एतए विसर्गक लोप । कीर्तिकें कामिनी एवं भूतिकें भूषण कहब रूपक अलंकार थिक ।। ३० ।।

इति श्रीविद्यापतिविरचित कीर्तिलतामे पहिल पल्लवक पं० शशिनाथझाकृत व्याख्या समाप्त भेल ॥

दोसर पल्लव

आब भम्हरी फेरो पुछैत अछि–

हुनका (कीर्तिसिंहकें) कोना शत्रुता उत्पन्न भेलनि आ ओ तकर उद्धार कोना कएलनि (बदला कोना चुकओलनि) ? हे स्वामी ! अहाँ हमरा ई पुण्य कथा कहू, जकरा हम सुखसँ सुनी ।

उप्पण्णउ=उत्पन्न भेल । वैरिपण=वैरित्व । सामित्र=स्वामी ।। १ ।।

तखन भम्हरा कहए लागल–

राजा लक्ष्मण सेनक संवत् जखन दू पाँच दू (२५२) लिखित भेल (प्रारम्भ भेल) तकर चैत मासक पहिल पक्षक (कृष्णपक्षक) पंचमी तिथिमे राज्यक लोभी असलान (अर्सलान नामक क्रूर व्यक्ति), बुद्धि, पराक्रम एवं सेना सँ (राजा गणेश्वर सँ) जखन हारि गेल तखन हुनक निकट बैसि विश्वास कराए राजा गणेश्वर कें मारि देलक । राजाकें मारैत देरी ओतए युद्धक हल्ला मचि गेल, पृथ्वी पर हाहाकार शब्द होमए लागल आ देवराज इन्द्रक नगर (स्वर्ग)क रसिक रमणी सभक वामा आँखि मानू फड़कए लागल ।।

लक्खणसेन = लक्ष्मणसेनक संवत् २५२=१३६१ ई० । असलान–एहि नामक महत्त्वाकांक्षी सैनिक । विसवासि (मै०)= विश्वास दए । बइसि (मै०)=बैसिकए । धुअ (अव०-ध्रुवम् (सं०)-निश्चित बुझाइत अछि, उत्प्रेक्षावाचक शब्द, तें उत्प्रेक्षालंकार । स्त्रीक वामा अंग फड़कब शुभ सूचक थिक । तात्पर्य ई जे गणेश्वर सन युवक मरि कए स्वर्ग पहुँचताह आ तखन एहन पुरुषरत्नक प्राप्ति अप्सरासभकें होएत ।। २ ।।

राए गणेश जखन स्वर्ग गेलाह त एतए हुनक राज्यमे अशान्ति भए गेल । ठाकुर (भूमिपति) ठक भए गेल, चोर जबर्दस्ती घर सँ वस्तु लेबए लागल, नोकर गोसाउनिक सीर धरि दखल करए लागल, धर्म द्वन्द्व (संघर्ष)मे पड़ि डूमि गेल, दुष्ट सभ सज्जनकें सताबए लागल, कोइ विचार कएवाला नहि रहल, उत्तम जातिक लोक अधमजातिक लोकसँ विवाह करए लागल, नीच व्यक्ति उत्तम व्यक्तिक शत्रु भए गेल । अक्षरक (काव्यक) रसकें क्यो बुझनिहार नहि रहल, तें कविगण एम्हर-ओम्हर घुमि भिखारि भए गेलाह आ तिरहुत देश सब गुणसँ अढ़ (झाँपल) भए गेल ।

ठाकुर=जमीन्दार, गामक व्यवस्थापक । चप्परि=चड़फर भए, निडर भए । गोसाउनि=कुलदेवता । गए = जाकए । धन्ध=द्वन्द्व । निमज्जिअ= डूबल । पारक (अव०)-पारक्य (सं०)-शत्रु । स्वभावोक्ति अलंकार ।। ३ ।।

राए गणेशकें मारलक त असलानक क्रोध शान्त भेलैक । मनहि मन ओ लजाएल आ तुर्क असलान एहि प्रकारें विचारए लागल । हम नीच कर्म कएलहुँ' । ओ धर्मक स्मरण कए अपन माथ धुनए लागल जे एहि दुर्नीतिक उद्धार (संशोधन, प्रायश्चित्त) करबाक लेल आन कोनो पुण्य (धर्मकार्य) नहि देखि रहल छी । राज्य समर्पित कए फेर सँ कीर्तिसिंहक सम्मान करी ।

सन्त (अव०)- शान्त । गुन्नइ (अव०)-गुनैत अछि, विचारैत अछि । आन (मै०)-अन्य, दोसर ।। ४ ।।

सिंहसनक पराक्रमी, मानक धनी, वैरक बदला लेबा लेल सुसज्जित (तैयार) कीर्ति सिंह शत्रुक द्वारा समर्पित (देल) राज्यक स्वीकार नहि करैत छथि ।

णहु (प्रा०)-न खलु (संस्कृत)-नहियें । अङ्गिरइ=अङ्गीकार (स्वीकार) करैत छथि ।। ५ ।।

कीर्तिसिंह कें माए एवं गुरुजन (मान्य श्रेष्ठ सम्बन्धिक सभ) कहैत छथिन आ मन्त्री तथा मित्रगण सिखबैत छथिन जे कखनहुँ एहन काज नहि करी जे 'क्रोधसँ राज्यक त्याग कए पिताक वधकें मनमे रखने

रहब'। अपन भाग्यलेखक अनुसार राजा गणेश्वर स्वर्गमे इन्द्रक लग गेलाह अछि (एहिमे ककरो दोष नहि, एकरा भाग्यक गुण-दोष बुझी) । तें अहाँ शत्रुकें मित्र बनाए (सन्धि कए) तिरहुतक राज्य भोगू ।

'एहन कर्म नहि करी'- एहि सँ सूचित होइछ जे एकर भयंकर परिणाम होएत । परिहरिअ=परित्याग करिअ । लेहें=लेखेन (सं०)=भाग्य लेखसँ । समाज (मै०)-निकट, जेना-पहुक समाज ॥ ६ ॥

दिनक तेसर पहर मे माए, मित्र, मन्त्री ओ महाजन (धनवान) सभक द्वारा एहि तरहें कहला पर हृदयरूपी पर्वतकन्दरा (गुफा) मे सूतल 'पिताक शत्रुता' रूपी सिंह जागि गेल आ महाराज कीर्तिसिंहदेव कुपित भए ललकि ललकि बाजए लगलाह–

अरे अरे लोक सब ! व्यर्थमे स्वामीक शोककें विसरएबाला ! कुटिल राजनीतिमे चतुर ! हमर वचन कें नीक जकाँ सुनै जाउ ॥ ७ ॥

माता ममताक कारण एना बजैत छथि, मन्त्री राज्यक नीति कहैत छथि, मुदा हमरा त प्रिय एक्केटा 'वीरपुरुषक रीति' (युद्ध करब) अछि ।

तेतुली वेला- तृतीय-पहर, यथा-'तेतरि बेटी'=तृतीया पुत्री । पइ (अव०)-प्रति (सं०) । रज्जह (अव०)-राज्यक ॥ ८ ॥

विना मानक भोजन, शत्रुक देल राज्य आ ककरो शरणमे रहि जीअब– ई तनू काज कायरक (डरपोकक) थिक । दीपक अलंकार । विहून (अव०)-विहीन (सं०) । पइट्ठे-पैसिकए ॥ ९ ॥

जे अपमान सँ दुःख नहि मानैत अछि, दान आ खड्गक मर्म (रहस्य) नहि जनैत अछि तथा परोपकार सँ धर्मकें नहि बढ़बैत अछि, से धन्य (भाग्यशाली, वस्तुतः अभागल) निश्चिन्त भए सुतैत अछि । इयेह तीनू काज वीर पुरुषक मुख्य थिक, जनिका एकर प्रयोजने नहि, तनिका चिन्ते कथीक ? ओ निश्चिन्त भए सुतैत छथि ॥ १० ॥

हम परम पौरुषकें ग्रहण कए रहल छी, एहि विषयमे झट दए किछु कहल नहि जा सकैछ । हमरहु जेठ श्रेष्ठ भाए मन्त्रणा (परामर्श)

देबा मे विशेष निपुण विद्यमान छथि, हुनका सँ सलाह लेब आवश्यक अछि । ओ किछु बाजथु ।

पर (सं०)–उत्कृष्ट । पुरसारिस=पौरुष, पराक्रम । धाए=दौड़ि कए ॥ ११ ॥

आब वीर सिंहक सम्मति प्रस्तुत अछि– हम पिताक वैरक उद्धार करब (पिता सँ शत्रुता कएनिहार सँ बदला लेब, ओकर नाश करब), अपन निर्णय सँ पाछू नहि हटब, युद्धमे साहस करब, शरण मे समागतक त्याग नहि करब, दानसँ दरिद्रताकें दलित (खण्डित) करब, किन्तु 'नहि' शब्द नहि बाजब, वरु प्राणपात (प्राणत्याग) कए लेब, किन्तु अपन असामर्थ्य (दुर्बलता) प्रकाशित नहि करब । अभिमान कें अपन प्राणक समान राखब, नीच समाज सँ स्नेह नहि करब । भने हमर राज्य रहओ वा जाओ– एहि तरहें वीरसिंह अपन विचार कहलनि ।

परिवण्ण (प्रा०)– प्रतिपन्न (सं०)– स्वीकृत निर्णय, प्रतिज्ञा । न ञुण=न पुनः = न कि । पानेपाट (अब०)– प्राणपात (सं०) । नीसत्ति (अव०)– निश्शक्ति ॥ १२ ॥

तखन दुनू भाइक (वीर सिंह एवं कीर्तिसिंहक) निर्णय एक (समान) मिलि गेल । दुनू सहोदर सङ्ग भेलाह, दुनू पुरुष सब गुनक आगर छलाह । लगैत अछि जे बलरामक संग कृष्ण होथि, ने कि राम–लक्ष्मणक समान वर्णित होथि । राजाक पुत्र पएरहि चललाह, विधाता एहन भोला (बुद्धिहीन, विसरभोर, अविवेकी) छथि जे हिनका सबकेँ देखि ककरा आँखिमे नोर नहि अबैत छैक, अर्थात् सब कनैत अछि । बलभद्र–कृष्णक रूपमे वर्णन सँ स्पष्ट होइछ जे कीर्तिसिंह छोट होइतो राजा छलाह आ वीर सिंह जेठ होइतो मन्त्री (विचारी) रहलाह । राम राजा ओ लक्ष्मण सेवक तनिक दृष्टान्त एतए उपयुक्त नहि अछि, से कविक आशय । उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, विषम, अर्थापत्ति अलंकार ।

वेवि (अव०)–द्वे अपि (संस्कृत)– दुनू । राएह (अव०)– राजाक। भोर (अव०)– भोल–सीधासादा, सोझमतिया ॥ १३ ॥

अपन लोक (समाज) आ परिवार केँ छोड़ि देलनि । राज्यक भोगकेँ छोड़लनि, उत्तम घोड़ा ओ अरिजन-परिजन (नोकर-चाकर) कें छोड़ि देलनि । माएक पएरक प्रणाम कएलनि आ जन्मभूमि (मिथिला)क मोह छोड़लनि । नवयुवती स्त्रीकें छोड़लनि, बहुतो धनकें छोड़लनि । पातिसाह (बादशाह)क उद्देश्य सँ (हुनका सँ भेंट करबाक लेल) राजा गणेशक पुत्र चलि पड़लाह ।

लोअ=लोक (आदमी) । अवरु- अओर । धनि (प्रा०मै०)- प्रेसयी, पत्नी ।। १४ ।।

दुनू राजकुमार पएरहिं चललाह, सब लोक हरि-हरि कहि भगवानक स्मरण करएल लागल (बड़ दुखी भेल) । बहुतो पट्टी (सड़कक काते कात नमगर वस्ती) ओ पाँतर (दू बस्तीक बीच दूर तक जनशून्य बाट) छोड़लनि (पार भेलाह) आ किछु-किछु अन्तर (दूरी) पर लोककें बसल पओलनि (देखलनि) अथवा किछु किछु अन्तर पर वास (रात्रि विश्राम) करैत गेलाह ।

जतए जाही गाम जाथि ततए राजा भोगीश्वरक नाम बड़ प्रसिद्ध छल । (तनिके ई दुनू कुमार पौत्र थिकाह से जानि) केओ कपड़ा, केओ घोड़ा आ केओ थोड़-थोड़ संवल (वटखर्चाक वस्तु) दइत गेलनि । केओ हिनक दलमे पैसि पाँती मे लागि गेल, केओ सेवक रूपें पाछाँ लागि गेल । क्यो ऋणपैंच देलकनि, क्यो नदीक पार कए देलकनि, क्यो भारबोझ (मोटा) उघि देलकनि, क्यो सोझ बाट कहलकनि आ क्यो अतिथिसत्कार ओ विनय कएलकनि । एहितरहें कतेको दिनमे वाटकेँ पार कएलनि (गन्तव्य स्थान पर पहुँचलाह) ।

गाञो (अव०)- गाम । भोगाइ=भोगीश्वर, जेना-जिवाइ-जीवेश्वर, धिराइ-धीरेश्वर, सोनाइ-सोनेलाल । नाञो-नाम, नामशब्दक स्थान मे पूर्वकालमे संज्ञाशब्द चलैत छल । तकर विशेषण स्त्रीलिङ्ग 'बड़ि' भेल बड़ीटा नाम । कापल=कपड़ा । घोल=घोड़ा । थोल (अव०)- स्थूल (सं०)=प्रचुर, अर्थ परिवर्तन सँ थोड़, किछु-किछु । भैठि (अव०)-भाठा (पाछू, कात) लागि

।। १५-१८ ।।

उद्यम (उद्योग, कार्यतत्परता) मे लक्ष्मी अवश्य बसैत छथि, साहस कएला सँ सिद्धि अवश्य होइत छैक । बुद्धिमान् पुरुष जहिं-जहिं चलैत छथि तहिं-तहिं समृद्धि (ऐश्वर्य) भेटैत छनि ।। १९ ।।

ताहीखन ओहि नगरकें देखलनि, तकर नाम जोनापुर (जौनपुर) थिक । आँखिक लेल ई प्रिय आ लक्ष्मीक विश्राम स्थान थिक । अत्यन्त सुन्दर ओ वैभव सँ परिपूर्ण अछि- से व्यंग्य अर्थ ।। २० ।।

ओ सब ओहि नगरकें देखलनि जे सुन्दर डँरकस (डाँरक गहना) रूपी जल (चारू भर जलपूर्ण गड़खइ) सँ पखारल (धोअल) छल । मकानक भीतर जमीन ओ देवालपर पाथर लगाओल छल आ बाहर ऊपर सँ चूनक पोचारा कएल छल । वाटिका (फल-फूलक बाड़ी) मे गाछ सब पल्लवसँ भरल, फुलाएल ओ फड़ल छल । ओहि मे आम एवं चम्पाक गाछ शोभित छल । फूलक रसक पान सँ माँतल भम्हराक शब्द लोकक मनकें मोहि रहल छल ।। २१ ।।

वक्रद्वार (ऊपर सँ मेहराव युक्त द्वार), पोखरि, बान्ह ओ संक्रम (सेतु, पूल) सँ युक्त एवं उत्तम जलगृह छल । अएबाक बाट ओ जएबाक बाट मे पैघो लोकक बुद्धि भोतिया जाइत छल । सीढ़ी, तोरणद्वार, यन्त्रनल (फव्वारा), जङला (जालीदार खिड़की) एवं खण्डिका (खिड़की=लघुद्वार) सँ युक्त छल । ततए ध्वजा सँ युक्त एक धवलगृह (उजरा राजप्रसासाद) हजारो घरक बीच स्वर्णकलस सँ शोभित छल ।। २२ ।।

थलकमल फूलक पत्तीक आकारक आँखि सँ 'मत्तहाथीक समान गतिवाली झुण्डक झुण्ड कामिनी' चौहटिया (चौक परक मुख्य बाजार) केर बाट पर मुड़ि कए देखैत अछि । कर्पूर, कुंकुम, चन्दन, अगुरु, सुगन्ध, चामर, रत्न, सोना ओ वस्त्रकें वनियाँ सब उचित मूल्य लए बेचैत अछि आ तकरा गृहस्थ सब कीनि अनैत अछि ।

सत्थ (अव०)-सार्थ (सं०)- दल । बिक्कण=बिकिनैत अछि= बेचैत अछि । वेवहार मूल्य=प्रचलित दाम । बब्बर (प्रा०)-वर्वट (सं०)=

गृहस्थ ।। २३ ।।

सम्मान, दान, विवाह, उत्सव, गीत, नाटक, काव्य, अतिथिसत्कार, विनय, विवेक आ खेल-तमाशा सँ सब केओ समय बितबैत अछि । झुण्डक झुण्ड लोक भ्रमण करैत, खेलाइत, हँसैत, तकैत जाइत अछि । ऊँच ऊँच हाथी-घोड़ाक भीड़मे उनटा रास्ता पकड़ा गेला पर लोक अपन बाट ताकि नहि पबैत अछि ।। २४ ।।

फेर अओरो-

ओहि जौनपुर नगरक संरचनाक (निर्माण विधिक) स्तुति (प्रशंसा) कएल जाइत छल । सए संख्या मे विद्यमान लोक हाटक मार्गपर घुमैत छल, टोल (मुहल्ला), चौराहा, अखाड़ा, नगरद्वार, गोलबाजार, गली, वलभी (छत परक छोट कोठली), गली, अटारी (अनेक महलक भवन), कोबरा घर (पति-पत्नीक शयनकक्ष), रहट (कूप सँ जल ऊपर अनबाक यन्त्र), घाट, कौसीस (छतक देवाल परक बुर्जा), छहरदेवाली आदि नगर वसएबाक रीतिक वर्णन की कहू, जेना एतए दोसर अमरावतीक (इन्द्रक नगरक) अवतार भेल हो ।

परिठब=प्रतिष्ठापन । ठवन्ते=स्तुवन्तः=स्तुति करैत छलाह । शतसंख्यक लोक छल, हाट नहि । ओबारी=कोबर घर । उत्प्रेक्षा अलंकार ।। २५ ।।

आओरो-

सबसँ पहिने राजकुमार हाटमे प्रवेश कएलनि । ओतए आठो प्रकारक धातुक (सोना आदि द्रव्यक) वस्तु बनएबाक टनाक-टनाक शब्द होइत छल, कँसेरीक (काँसाक वर्तन बनओनिहारक) पसार (वस्तु पसारल स्थान) पर काँसक (कसकुट धातुक वर्तन बनएबाक) क्रें क्रें शब्द भए रहल छल, प्रचुर संख्यामे पुरवासी लोकक पएरक भारसँ दलमलित होइत छल, धानक हाट, सोनक (पटुआक) हाट, पानक हाट, पकमानक हाट, माँछक हाट-एहि सभक बेचनिहारक मुँहसँ निकलल जोरजोर सँ कएल शब्दक ('सस्ता सुभीता मे सामान लै जाह' इत्यादि) कथा कहैत लगैत अछि जे ई सब फूसि थिक, जनु बहुत भारी गुर्गुर शब्द सहित उत्ताल तरंग

सँ भरल जोर-जोरक हल्ला सँ कानकेँ भरैत समुद्र अपन मर्यादा (तट सँ ऊपर नहि उठबाक नियम) कें छोड़ि ऊठि पड़लाह अछि । अपह्नुति एवम् उत्प्रेक्षा अलंकार ।। २६ ।।

माँझ दिनक समय (दुपहरिया) मे भीड़ सज्जित भेल, संपूर्ण पृथ्वी मण्डलक वस्तु सभकें बेचबाक हेतु बेचएबाला आबि बजैत छल (धनियाँ लेबह हे, जीरा लेबह हे !) । मनुष्यक पैघ झुण्ड दोसर झुण्डकें पीसैत (रगड़ैत) चलैत छल, अंग सँ अंग मलल जाइत छल । आन व्यक्तिक कपारक चानन अनका लागि जाइत छलैक । सुपात्रो (नीको लोकक) द्वारा दोसराक स्त्रीक कंगन टुटि जाइत छलैक । ब्राह्मणक जनेउ चाण्डालक हृदय पर लुढ़कैत छल । वेश्या सभक स्तन संन्यासीक हृदय पर पिचा जाइत छल ।

वेला=समय (स्त्रीलिंग, आ तें विशेषण स्त्रीलिङ्ग करी) । सम्मर्द=सघन भीड़ । चक्र=मण्डल । मीसि (अव०)-मिश्रित, (सं०)=मेला । उँगारब=देहमे उबटन लगाएब । पात्रहु=सत्पुरुषहु, 'पात्रत्वाद् धनमाप्नोति'। लूर (अव०)-लुलित=शोभित । स्वभावोक्ति एवं विरोधाभास अलंकार । अद्‌भुत रस ।। २७ ।।

घनगर लोकक बीच दए घोड़ा ओ हाथी चलैत छल, बहुतो निरीह व्यक्ति पिचाए जाइत छल । आगू दिस एवं पाछू दिसक रेड़ा होइत छल । ओ नगर नहि, मनुष्यक समुद्र थिक ।

वापुर (अव०)-व्याकुल (सं०)-विकल, वेचारा, निरुपाय । आवर्त (सं०)- आगू दिसक रेड़ा । विवर्त (सं०)-पाछू दिसक रेड़ा । रोल (अव०)- तीक्ष्ण शब्द । अपह्नुति अलंकार ।। २८ ।।

बहुत तरहेँ बनियाँ सब जखन हाट पर घूमए अबैत छथि तँ एके छनमे सब सामान बेचि लैत छथि आ किछु सामान किनइतो छथि । ओतए सब दिस सामानक पसार (देखएबाक लेल विन्यास पूर्वक आगूमे सजाओल) पसरल छल । रूप, यौवन ओ गुणसँ भरल सैकड़ो हजारो बनियाइन चतुर नारी सब बाजारक गलीकें शोभित करैत बैसल छल । (ओकरा सँ बात

करबाक लेल) किछु लाथ (बहाना) बनाए ओहि युवती सबसँ लोक गप-शप करैत छल । बेचैत-किनैत त अपन सुविधाक अनुसार छल, परन्तु दर्शन सुख नफा मे भेटि जाइत छलैक ।

औत्सुक्य भावध्वनि । शृंगार रस । स्वभावोक्ति अलंकार । हिण्ड (सं०)- टहलब । विक्रीणन=बेचब । पसार (अव०, मै०)- प्रसार (सं०)- सामान पसारब । वेसाहब-उधार लेब ।। २९ ।।

ओतए युवती अपन कमल सन आँखिक कनखीसँ सबकें देखैत छल । चोरा कए कएल प्रेम यद्यपि प्रिय छलैक तथापि अपने दोषसँ सशंक (शंकाकुल, चौंकल) रहैत छल । रूपक अलंकार ।। ३० ।।

ओहि नगरमे बहुतो ब्राह्मण, बहुतो कायथ, बहुतो राजपूतक कुल ओ आनो बहुतो जाति फैल (विस्तार) सँ बसैत अछि । सब क्यो सुजन (उत्तम स्वभावक लोक), सब क्यो धनवान् अछि आ नगरराज (जौनपुर) सब नगर सँ ऊपर (श्रेष्ठ) अछि । जें सब घरक दोआरि पर स्त्रीसब आनन्द पूर्वक रहैत अछि तें तकरा सभक मुखमण्डल सँ प्रत्येक घर मे चन्द्रमा उगैत छथि ।

ई जौनपुरक हिन्दू बस्तीक वर्णन थिक । परिणाम अलंकार ।। ३१ ।।

एक हाटक ओर (अन्त) कएलनि त दोसर हाट मे प्रवेश कएलनि । राजमार्गक निकट चलैत ओ सब अनेक वेश्याक निवास (घर) देखलनि जकरा बनएबामे विश्वकर्मोकें बहुत प्रयास करए पड़लनि । अओरो विचित्रता (अद्‌भुत) की कहू, जाहि वेश्या सभक केशधूपक धूआँक रेखा ध्रुव नक्षत्रोसँ ऊपर पहुँचि जाइत छल । क्यो क्यो एहनो सम्भावना करैत छल जे ओही धूमक बनल काजर चन्द्रमाक कलंक थिक ।

ओल (अव०)- ओर (मै०)=अन्त । औकी (अव०)-अओकी (अव०)- दोसर, 'अओका दिस जमराअ चरू'-विद्यापति । कोल (अव०)-क्रोड (सं०)- कोर, कोरा (मै०)- अंक, गोद । केशधूम-स्नानक बाद वेश्यासभ केशकें सुखाए धूमन-गुग्गुलुक धूप केश मे लगबैत अछि जाहि सँ केशक सौन्दर्य बढ़ैत छैक । 'विश्वकर्महु भेल बड़ प्रयास' मे तथा

'ध्रुवहु उप्पर' मे अतिशयोक्ति, 'अइसनेउ संक' मे उत्प्रेक्षा ।। ३२ ।।

वेश्यासभकें लाज वनावटी, यौवन कपटपूर्ण (साज-सज्जासँ प्रौढ़ा सेहो तरुणी बनि जाइछ) रहैत छैक । धन प्राप्तिक लेल प्रेम करैत अछि, लोभ सँ विनय आ धनक कामनाकें सौभाग्य मानैत अछि । स्वामीक विना (शोभाहेतु) सिन्दूर लगबैत अछि आ परिचय भेला पर अपवित्र मानल जाइत अछि । (विवाहिता नहि रहलो पर सिनूर लगबैत अछि, अत्यन्त स्वच्छ रहने देखबा मे पवित्र रहलो पर व्यवहार सँ परिचय भेला पर 'ई वेश्या थिक' एहन बात जनला पर लोक एकरा अपवित्र बुझैत अछि) ।

जतए गुणवान् व्यक्ति लाभ नहि पबैत (उपेक्षित) अछि आ भुजंग=प्रेमपागल लम्पट गौरव (महत्त्व) पबैत अछि, एहन वेश्यालय मे धूर्तक रूपमे निश्चय कामदेव रहैत अछि ।

विरोध, विषम, उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकार । परामरिस (अव०)- परामर्श, विवेचन सँ । अलहना (अव०)- अलभमान (सं०) लाभ नहि पाबएवाला । भुअंग (अव०) भुजंग (सं०)- साप, जे अत्यन्त कामुक होइछ तें एतए एहि सँ अत्यन्त प्रेमासक्त लम्पट अर्थ लेल जाइछ । धुअ (अव०)- ध्रुव (सं०)- निश्चय, मानू, उत्प्रेक्षावाचक शब्द । धुत्तह-धूर्तक ।। ३३ ।।

ओहि वेश्या सभकें सुखभवन कें सजबैत, अलताक तिलक (गाल पर लेप) कए (तकरा बीच-बीचसँ) पत्ती सब (आकृति) कटैत (बनबैत), दिव्य वस्त्र (पटोर) पहिरैत, थकरि थकरि केशक जुट्टी बन्हैत, सखी सभकें देखैत, हँसि तकैत, सियानी (नवयुवती), सुन्दरी, पातरि, पातर पेटवाली, तरुणी, चंचला, वियाहलि अथवा छोटि, बुधियारि, हँसी-ठठा करबा मे चतुर सुन्दरीक दल कें जखन कामी पुरुष देखैत छथि तँ मन करैत छनि (विचारैत छनि) जे चारि पुरुषार्थ मे सँ तेसरा काम मे लागि शेष तीनू (धर्म, अर्थ आ मोक्ष) कें उपेक्षित (त्याग) कए दी ।।

सुखसार-सुखशाला=सुखनिवास, 'बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे'- विद्यापति । अलका-तिलका-पत्रावली- अलता लेपि तकर बीच-बीच सँ किछु अंश कें तेना मेटाओल जाइछ जे कमलफूल आदिक आकार भए

जाइछ । खण्डन्ते-बीच बीच सँ खण्डित करैत । पिन्धन्ते-पहिरैत, पेन्हैत । उभारि-खोपा खोलि केशकें फुटबैत । लोनुमी-लावण्यमयी=सौन्दर्य भरल । पतोहरी-पतोदरी=पातर पेटवाली । वेन्ही-विन्ना (सं०)-विवाहिता (अविवाहिता क अभिनयमात्र करैछ) । सार्थ (सं०)- दल (झुण्ड) । वेन्ही आदि वेश्याक भेद वर्णरत्नाकर मे आएल अछि ।। ३४ ।।

ओहि वेश्या सभक केसमे फूल बसैत (उजरा फूलक माला सजाओल) अछि से लगैछ जेना मान्य (प्रतिष्ठित) पुरुषक लाजसँ झुकल मुखरूपी चन्द्रक प्रकाशक अवनति (नीचाँ भेल) देखि कए अन्धकार (कारी केश रूपी) हँसि रहल हो । (एतए उजरा फूल कें हास रूपमे वर्णित कएल गेल अछि । वेश्याक अतिशृंगार एवं लज्जाहीनता सँ शिष्टजन स्वयं लज्जित भए मूड़ी झुका लैत छथि ।) ओकरा सभक आँखिक कोनक (कटाक्षक) चलला सँ भौंह टेढ़ भए जाइत छैक, प्राय: काजरक नदीक तरंग आ भँवर मे पैघ-पैघ पोठी माँछ उछलि रहल हो । अत्यन्त पातर सिन्दूरक रेखा पापक (वेश्यावृत्तिक) निन्दा करैत अछि, प्राय: ई कामदेवक पहिल प्रताप थिक । (उत्प्रेक्षा, रूपक ओ परिणाम अलंकार) । ओ सब (वेश्या) दोष सँ हीन ओ मध्यभाग (डाँर लग) क्षीण (पातर) अछि, लगैत अछि जे रसिक व्यक्ति एकरा जूआमे (अपन सब किछु दावपर लगाए) जीति कए अनने अछि । स्तनक भारसँ टुटए चाहैत अछि, आँखिक तृतीय भागसँ तीनू भुवन (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) कें साधय (वशमे करए) चाहैत अछि । सस्वर (मेहीं आवाज मे) बजैत अछि, राग-रागिनीक साधना करैत अछि । कोनो रसिक कें एहनो आशा रहैत छैक जे कोना कए एकर आँचरक हवा लागत । ताहि वेश्याक कुटिल कटाक्षक श्रेणी (पाँती) रूपी रोब-दाब सहित कामदेवक बाणक पाँती जेना चतुर युवकक मन मे गड़ि जाइछ तहिना गाएक तुल्य जड़ गमार व्यक्तिकें छोड़ि दैत अछि ।

तरंग=तरंगित होएब=उछलब । जीनि=जीति कए । ससरे=सस्वर । गमार=गाममे रहएवाला अपटु व्यक्ति । गोवोलि (अव०)-गैवार, गाएक सम्पर्कमे मन्द बुद्धिक लोक ।। ३५ ।।

सबहुँ नारी बुधिआरि आ सबहुँ लोक सुभ्यस्त (सुव्यवस्थित,

धनी) अछि । श्री इब्राहिम शाहक गुणसँ ककरो ने चिन्ता आ ने शोक अछि ।। ३६ ।।

सब दिस देखिकए आँखि सुखित होइत अछि, सब दिस सुन्दर स्थान ओ सुभोजन भेटैत अछि । एक छन भरि बुद्धिमान लोकनि मन दए सुनथु, हम किछु-किछु तुर्क सभक लक्षण (परिचय) कहैत छी ।। ३७ ।।

तखन दुनू कुमार बाजार मे प्रवेश कएलनि जतए लाखो घोड़ा ओ हजारो हाथी देखल जाइत छल । कतहु हिन्दू दासी-दास, कतहु बाँदी-बन्दा (मुसलमान दासी-दास) छल आ कतहु मन्दबुद्धिक हिन्दूकें दूर निकालल वा धिक्कारल जाइत छल ।

बे (अव०)- द्वे=दू । गन्दा (अव०)- गणेरक (सं०)-हिन्दूदास । निक्कारिए (अव०)-निष्कार्यते= निकालल जाइत अछि अथवा न्यक्क्रियन्ते= धिक्कारल जइत अछि ।। ३८ ।।

कतहु थारी, बाटी ओ तौला पसारल छल त कतहु धनुष बाणक दोकानदार छल । सड़कक दुनू कात सराफे सराफ (आभूषणालय) भरल छल जतए हीरा लहसुनियाँ आ फिरोज रत्न तौलैत छल अथवा यवन व्यापारी आगूक बाजारमे लशुन आ पियाजु तौलैत छल ।

तत्त्थ-तश्तरी (फा०)-प्लेट । कूजा (फा०)-प्याला । तबेल्ला तप्तपात्री- तौला-भात वा दालि रन्हबाक माँटिक वासन । सराफा (फा०)-गहनाक बाजार । बेबि (अव०)- द्वे अपि (सं०)=दुनू । बाजू (फा०)-तरफ, दिस । हेरा-हीरा अथवा फेरा=दूर दूर सँ ताकि सामान आनि बेचनिहार, टहलि-टहलि बेचनिहार । दू अर्थ रहला सँ श्लेष अलंकार ।। ३९ ।।

अनेको तुर्क, गुलाम (नौकर) खरीद कए अपना मे अनेको सलाम करैत छल । बटुआ (कपड़ाक मनीबेग), जूता आ मोजा बेसाहैत (किनैत) मीर, बल्ली, सालार आ ख्वाजा (यवन उच्च अधिकारी सब) घुमैत छल ।

बेसाहन्त (अव०)- विसाधयन्तः (सं०)-बाहर सँ खरीदि आनब । खीसा (फा०)-बटुआ=छोट कपड़ाक थैली जाहिमे सरोता, सुपारी, तमाकू,

नगद आदि राखि डाँरमे खोंसल जाइत छल । पइज्जल्ल (फा०)- जूता । मीर (फा०)-धनी । वल्ली (फा०)-उच्च अधिकारी । सालार (फा०)-मुख्य । खोजा-ख्वाजा (फा०)- फकीर, सन्त ।। ४० ।।

ओतए 'अबे बे' कहैत, शराब पिबैत, खीसा कहैत, कलमा पढ़ि जीवैत (निर्वाह करैत), नकाशी करैत, महजित कें भरैत आ किताब पढ़ैत असंख्य तुर्क छल ।

'अबेबे' (फा०)-शिष्टाचारक शब्द । कलीमा (फा०)-कुरानक कथा । कलाम (फा०)-कुरानक पाठ । कसीदा (फा०)-नकासी, कविता । मसीद (फा०)-मस्जिद ।। ४१ ।।

यवन ईदगाह मे खोदाक स्मरण कएलक । भांगक गूड़ी (चूर्ण) खाए लेलक । विनु करणहिं क्रोधित भए गेल आ मुँह तप्त (धिपल) तमघैल जकाँ (लाल) भए गेलैक । ओ तुर्क तोषार (वर्फसन उज्जर घोड़ा) पर चढ़ि विदा भेल, हाट पर घूमि-घूमि हेड़ा (पशु पर लागए वाला कर=टैक्स) लेबए चाहए, (करअधिकारी नहियों रहला पर कर लेबए लागल आ नहि भेटला पर) कड़गर नजरि सँ देखि दबारिकए दाढ़ी पर थुकबा दैत छल । ओ अपन सब सँ पैघ वस्तु स्वास्थकेँ शराब पीबा मे खराप कए, तपत (धिपल) कबाब (रान्हल भूजल मांस) खएबा मे सम्पत्ति खा जाइत अछि । ओकर विवेकहीनता एवं छलकपटक बारे मे की कहू ? ओ अपना पाछाँ (विनु प्रयोजनें) सिपाही लेने घुमैत अछि ।

अतिगह-ईदगाह । खोदाए=खुदाकें । कोहाए=तमसाए । गुण्डा-गूड़ा, (चूर्ण) । वएन=वदन=मुँह । तातल=तप्त, 'तातल सैकत वारि बिन्दुसम'-विद्यापति । तमकुण्ड=तामाक कुड़नी (घैला) । तोषार=तुषार=वर्फ सन उज्जर घोड़ा । हेड़ा=पशुकर, हेँड़=पशुदल, ताहि पर लागए वाला शुल्क हेड़ा । आड़ी डीठि=अड़ल दृष्टि=सामना करबा मे लागल नजरि । दबरि=दबारि=डाँटि । दवरि-दउरि=दौड़िकए । दवरि-दरबरि (प्रा०मै०)=झट दए । सव्वस्स (प्रा०)-सर्वस्व (सं०)=सब किछु । दिरम (फा०) = रुपैया । फरीबी-फरेब (फा०)= छल-कपट । पएदा-प्यादा

(फा०)-सिपाही । रूपक, स्वभावोक्ति अलंकार ।। ४२ ।।

साधारण यवन (मुसलमान) भाँग खा लैत अछि आ तखन भागिकए क्रोधित भए (अपने मने) खान (यवनपति) बनि जाइत अछि, दौड़ि कए माँछ सहित सालन (मसालायुक्त चटपटीदार तरकारी) चीरि (तोड़ि-फाड़ि) जीह पर धरैत अछि आ अनय (अनीतिवाला अन्ट-सन्ट) बात बजैत अछि । पहिल कओर खाइत अछि, जखने कओर मुँहमे जाइ कि एक छन चुप भए तखने बधनाक (टोंटीवाला लोटाक) पानि मुँहमे ढारि दैत अछि, गारि पढ़ैत अछि- ई व्यंग्य अर्थ । फेर तीर लए ओकरहि दिस तकैत अछि (आँखि गुड़ारि देखैत अछि), मुदा व्यर्थमे बिगड़ल ओहि यवनकें मखदूम (उपदेशक यवन) बाँहि धए बैसबैत अछि (शान्त करैत अछि) । जौं ओकरा लेल कर्पूर सन स्वच्छो अन्न आनल जाए तइयो ओ पियाजु-पियाजु बजैत (रटैत) अछि ।

जमण (अव०)- यवन (सं०) । खाण-खाँ, 'बहूनां यवनानां यः प्रभुः खानो निगद्यते'- पारसीकप्रकाश । जिउ-जीह पर । समिण (अव०)-समीन (सं०)- मीन (माँछ) सहित । सालन (फा०)-तीख-चोख तरकारी । अणए (अव०)=अनय (सं०)=अन्टसन्ट (मै०) । नेवाला (फा०)- कवल (सं०)-कओर (मै०) । गारि-निचोड़ि, गारि पढ़ब । गाड़ू (अव०)-गण्डूष-(सं०)-कुर्रा करए हेतु टोंटीबाला जलपात्र, बधना । आन (अव०)-अन्न (सं०) । पए (अव०)-प्रति (सं०)-पइ (मै०) । 'कपूर सम' मे उपमा, 'पिआजु पए'- विषमालंकार ।। ४३ ।।

गएबामे गौरवशालिनी गायिका मत्त भए (सुधिबुधि हेराए) मतरुफ (प्रशंसागीत) गबैत अछि । तुरकिनी चक्कर मारि कए नचैत अछि जकरा देखैत लोककें आन किछु ने सोहाइ छै । सैयद (प्रधान यवन) प्रसाद विलहैत (बँटैत) अछि । सबहक ऐंठ सब खाइत अछि । फकीर आशीर्वाद दैत अछि आ जँ किछु (टका) पबैत नहि अछि त गारि पढ़ि चल जाइत अछि । मखडूम नबाबी करैत अछि, ओ लगैत अछि जेना डोम रहए, ओ दस नारीक हाथ देखि अदृश्य वस्तु (फलादेश) देखबैछ (अधिक श्रद्धालु स्त्रीगण अधिक दान दैत अछि ।) ओतए न्यायाधीशक आदेशक हाल की

कहल जाय, हुनक त अपनो स्त्री परायी (दोसराक) भए जाइत छनि ।

गरुवि (अव०)- गुर्वी (सं०)-भारी, गौरवपूर्ण । जाखरी (फा०) यक्षिणी (सं०)- गायिका । मतरुफ (फा०)- प्रशंसागीत । चरख (फा०)-चक्राकार नाच । सइद-सैयद । शीरनी (फा०)-प्रसाद । दोआ (अव०)- दुआ (फा०)-आशीर्वाद । दरवेस (अव०)- दरवेश (फा०)-फकीर । दोम (अव०)— डोम जाति । ददस (अव०)- हदस (फा०)-अदृश्य प्रेतादि देखाएब । खुन्दकार (फा०)—न्यायाधीश । हुक्कुम (अव०)-हुक्म (फा०)- आदेश । जोए (अव०)-योषित् (सं०)-स्त्री । परारि (अव०)-परायी (हिन्दी) ।। ४४ ।।

हिन्दू एवं तुर्कक सटल टोलक वर्णन-

हिन्दू आ तुर्कक वास सटले छल । ओतए एकक धर्म दोसराक लेल उपहास होइत छल । कतहु बाँग (मुसलमान द्वारा अजान) बाजल जाइत छल त कतहु (हिन्दूबस्तीमे) वेदपाठ होइत छल । कतहु विस्मल्ला कहि गाए काटल जाइत छल त कतहु छेद (छागरक वलि) होइत छल । कतहु ओझा (मन्त्र सँ झाड़निहार हिन्दू) त कतहु खोजा (मुसलमान झाड़फूक कएनिहार) छल । कतहु नक्तव्रत (दिन भरिक उपवास) त कतहु रोजा (मुसलमानी उपवास) होइत छल । कतहु तामक पात्र त कतहु कूजा (प्याला) छल । कतहु नमाज अदा होइत छल त कतहु पूजा होइत छल ।

अओका (अव०)-अवरक (सं०)-अओरक, दोसराक, स्त्री० अओकी वा औकी । ओझा (अव०)-उअज्झा (प्रा०)-उपाध्याय (सं०) । खोजा (अव०) -ख्वाजा (फा०) । नकत (अव०)- नक्त (सं०)- दिन भरि व्रत कए राति मे भोजन । रोज (फा०)-दिन, दिन भरि व्रत **रोजा** । तम्बारु-तामक कमण्डलु ।। ४५-४६ ।।

कोनो स्थान पर तुरुक बलात्कार (जबर्दश्ती) करैत अछि, बाट चलैत व्यक्तिकें बेगार मे धए लैत अछि । ओ ब्राह्मणबालककें पकड़ि लबैत अछि आ ओकरा माँथ पर गाइक चमड़ा लादि दैत अछि । कपारक ठोपकें चाटि लैत अछि, जनेउ तोड़ि दैत अछि आ देहक ऊपर घोड़ा चढ़ाबए चाहैत

अछि । देवपूजा हेतु धोआओल धान सँ शराब बनबैत अछि। देवकुल (मन्दिर परिसर) कें तोड़ि मस्जिद बनबैत अछि ।

बरकर=बरिया (बलगर) । बेगार (फा०)-विनु पारिश्रमिकक मजदूर । बडुआ (अव०)-वटुक (सं०) । चुडुक (फा०)-चर्म । फोट (अव०)-स्फोट(सं०)-ठोप (मै०)=कपार पर तिलक बिन्दु । धोआउरि= धोअल ओइरी धान (नीवार) । साँध=सन्धान करैत अछि, चुअबैत अछि। देउर (अव०)-देवकुल, देवपुर=मन्दिर । मसीद (फा०)-मस्जिद ।। ४७-४८ ।।

गोरि (कबुर्गाह) आर गोमठ (छोट छोट गुम्मज) सँ पृथ्वी भरल अछि, पएरो देबाक स्थान नहि रहल । हिन्दू कहि कए दूर निकालैत छैक, छोटो तुर्क भौकी मारैत (डरबैत) छलैक ।

देमएक (मै०)-देबाक । ठाम (मै०)-स्थान । निकार=निकालैत अछि । भभकी (मै०)-अपना सँ बलगरोकें डरएबाक चेष्टा, जेना-गिदर भभकी, बनरभभकी ।। ४९ ।।

तुर्कसबकेँ देखि भान होइत अछि (बुझा पड़ैत अछि) जे गोट-गोट (एक एक) कए हिन्दू कें गीरि लेत हनि । एहनो अवस्था मे जनिक प्रताप सँ हिन्दू रहि रहल अछि से सुलतान चिरजीवी होथु । अइसेओ=अइसनेओ=एहनो ।। ५० ।।

हाटहिं हाट घुमैत दुनू राजकुमार दृष्टि कुतूहल (देखबाक उत्सुकता) ओ काजमे रस (अनुराग) वश तखन राजद्वार पर पहुँचलाह ।। ५१ ।।

लोकक भीड़ एवं बहुत प्रकारक बाजा सँ कपड़ाक बनल गोलाकार घर भरल छल । अबैत तुर्क सब आ खान-मलिक सबहक पएरक भार सँ ओतुक्का पाथर चूनचूर भए गेल । दूरहु सँ आएल बड़का-बड़का राजा सब द्वारपाल द्वारा दौड़िकए रोकल गेल छलाह । आश्रय (रहबाक स्थान) चाहैत गालिम (तरुण यवन) राजमहल सँ बाहर अबैत अछि जकरा गनब पार नहि लगैछ ।

बहुविह (अव०)- बहुविध=बहुत तरहक । वद्दे=वाद्य सँ ।

अम्बर (सं०)- वस्त्र । मुलुक्का-मलिक (फा०) । दुरुहुन्ते (अव०)-दूरहु सँ । दवलि (अव०)-दउड़ि (मै०) । वारीआ (अव०)- वारित (सं०) । ठाहर (अव०)-ठौर (हिन्दी) ।। ५२ ।।

सब राजा उपहारमे धन पसारने सैयदगार (राजमहलक प्रधान अधिकारी यवनक कार्यालय) मे अबैत छथि । ओतए दरबार मे बैसल-बैसल दिन बीति जाइत छनि परन्तु वर्षो तक बादशाहक भेंट नहि पबैत छथि । मुदा, उत्तम परिवारक खान ओ उमरा सब अबितहिं, राजमहल मे जाइत छथि, सुलतानकेँ सलाम कए इनाम पबैत छथि आ अपना इच्छानुसार ओतए रहि कए बाहर अबैत छथि ।

विथारे-विथारने, विस्तार कएने । पुहुवीपाल (अव०)-पृथ्वीपाल (सं०)-राजा । भइट्ठे=भ्रष्ट कए=विताकए । उमारा=धनिक यवन । मजेद (फा०)-श्रेष्ठ । इनाम (फा०)-पुरस्कार । आपे (अव०)-स्वयम्, स्वेच्छा सँ । एतए हिन्दूराजा ओ मुसलमानक प्रवेशमे अन्तर देखाओल गेल अछि ।। ५३ ।।

जनिका सबसँ भेँट करबाक लेल सागरक ओ पर्वतक अवधि (अन्त) तक, द्वीप ओ दिशाक अन्त तक लोक जाइत अछि से सबहुँ दूर दूरक राजा ओ राउत सब एतहि राजद्वारहि पर भेटि जाइत छथि । एतए राजा सबकें गनैत, स्तुतिपाठ करैत भाँटक (स्तुतिगान कएनिहारक) ठट्ठ (दल) देखल जाइत अछि । अबैत-जाइत, काज करैत आदमीक लेखा के कए सकैछ ?

अन्तर (सं०)-अवधि (सीमा) । दीप (अव०)- द्वीप (सं०) । दिगन्तर (सं०)-दिशाक छोड़ । निमित्त-कारण । बटुराणा (अव०)-वर्तुलित (सं०)-गोलाकार जमा भेल, बटोरल । तत्थि (प्रा०)-ततहिं । विरुद (सं०)-राजस्तुति ।। ५४ ।।

तैलंग, बंग, चोल, कलिंग आदि देशक राजा अपन पुत्र सँ शोभित छथि । ओ सब अपन-अपन भाषा बजैत छथि, बादशाहक डरसँ कँपैत छथि, भने ओ शूर वा पण्डिते कियेक ने होथु । बहुतो राजपूतक बेटा सब

चलैत अछि, भीतर आ पाँतर (निर्जनस्थान) मे शोभित अछि, संग्राम मे सुन्दर अछि जेना गन्धर्वे हो तथा अपन रूपसँ दोसराक मनकें मोहि लैत अछि ।

साहस (अव०)- साध्वस (सं०)=भय । अन्तरे=भीतरमे । पन्तरे=प्रान्तर (पाँतर) मे । गन्धर्व-देवताक गबैया ।। ५५ ।।

ओहि सब मे राजाक निजी दरबार सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल मे सबसँ ऊपर अछि । ओतए दरिद्रो व्यक्ति अपन व्यवहार (फरियाद) कें झटदए राजोक लग लए जाइत अछि । ओतए शत्रु आ मित्र सभक मस्तक झुकि जाइत अछि, ओतए दण्ड आ पुरस्कार दुनू देल जाइत अछि । ओतए कतेको व्यक्तिकें कल्याण भए जाइत अछि । अपन भाग्य, अभाग्य आ विभागक बल कें ओतहि जाए सब जनैत अछि । ई बादशाह सबसँ ऊपर छथि, तनिका ऊपर केवल सृष्टिकर्ता सएह छथि ।

साति (अव०)-शास्ति (सं०)=शासन, दण्ड । भव्व-भव्य=कल्याण, नीक । करतार (फा०)-कर्ता (सं०)-खुदा ।। ५६ ।।

अहो अहो आश्चर्य थिक । ताहि द्वारप्रकोष्ठक चमकैत तलवार, द्वारपाल, प्रथमद्वार, मध्यमद्वार, तृतीयद्वार, प्रासादद्वार, द्वारगृह (आगूक विस्तृत मैदान), सभागृह, पूजागृह, भोजनालय ओ विलास-भवनक अद्‌भुत चमत्कार कें देखैत सबलोक बाजि उठैत अछि- प्राय: आइ धरि विश्वकर्मा एही काजमे लागल छलाह ।

दारखोल (फा०)-द्वारकक्ष । दबाल (अव०)- दुआल (फा०)= चमकैत तलवार । दरवाल (अव०)-दरवान (फा०)-द्वारपाल । औअलदर (अव०)-अव्वलदर (फा०)-प्रधानद्वार । मेजानदर (अव०)-म्यानदर (फा०)-दोसर द्वार । स्यालदर-तेसर द्वार । खासदर (फ०)- राजाक निजसुखनिवासक द्वार । दारगाह-दरगा-भवनक आगूक प्रांगण । वारगाह (फा०)-सभाभवन । नमाजगह-नमाज पढ़बाक घर । ख्वारगाह (फा०)- भोजनगृह । खुर्रमगाह (फा०)-विलासगृह । इथिहि (अव०)- एही । उत्प्रेक्षा अलंकार ।। ५७ ।।

ओहि राज भवनक ऊपर 'हीरा सँ जटित स्वर्णकलस' शोभित

अछि, जकरा माँथ पर सूर्यक रथमे जोतल घुमैत सात घोड़ाक अट्ठाइसो टाप बाजि उठैत अछि । अतिशयोक्ति अलंकार ।। ५८ ।।

ओहि राजभवन परिसर मे प्रमदवन (विलासयोग्य बगीचा), फुलवाड़ी, बनाओल नदी, खेलएबाक पहाड़, जलधारायुक्त भवन, यन्त्रक पंखा, शृगारलीला हेतु संकेत स्थान, माधवीलतासँ बनल मण्डप, विश्राम करबाक चबूतरा, चित्रक घर, खाटक झूला, फूलक ओछान, प्रदीपक काज करैत माणिक्य, चन्द्रकान्तमणि, चतुस्सम युक्त (चारि सुगन्धित वस्तु मिलल) छोट डबरा एहि सभक असली परिचय चतुर व्यक्तियेकें पूछल जाए । जखन बाहरक हाल एहन तखन अरे बाप ! भीतर महलक बात के जानि सकैछ ?

चतुस्सम (सं०)–चन्दन अगुरु कस्तूरी कुंकुम एहि चारूक समान मात्राक सुगन्धित द्रव्य । पल्वल (सं०)– छोट जलाशय, चभच्चा । सियान (अव०)– सज्ञान (सं०) ।। ५९ ।।

एहि तरहें द्वारप्रकोष्ठक दूर–दूर तक देखलनि । ओतए किछु काल धरि विश्राम कएलनि, शिष्ट (प्रामाणिक) पदाधिकारी सँ अपन परिचय प्रमाणित करओलनि । गुणसँ ओतएक लोककेँ अपना दिस अनुरक्त (अनुरागयुक्त) कएलनि, सब महलक मर्म (रहस्य) बुझलनि, गुणवान् ओ बुद्धिमान् कें पुछलनि, ताहि सँ आशाकें (बादशाह सँ सहायता प्राप्तिकें) पल्लवित कएलनि (बढ़ओलनि), तखन साँझ पड़बा सँ किछु पहिनहि नगरक मध्य एक ब्राह्मणक घरमे वास कएलनि ।

एम (अव०)–एवं (सं०) । दारखोल (फा०)–द्वारप्रकोष्ठ । क्षणमुहूर्त (सं०)–छन भरि, मुहूर्त (४८ मिनट) भरि । उपसन्ध्यम् (सं०) सन्ध्याक समीप । विप्र=ब्राह्मण ।। ६० ।।

राजा कीर्त्ति सिंह प्रस्तुत सन्ध्या समय कें असन्ध्या (सन्ध्या भिन्न मध्यदिन) बनबैत चिरकाल तक पृथ्वीक शासन करथु । सन्ध्याकें असन्ध्या बनएबा मे एतए तीन हेतु देल गेल अछि–

1. सीदित (दुःखमे पड़ल) शत्रुक स्त्रीक मुख रूपी कमलकेँ मलिन देखला सँ मध्याह्न अछि । (कीर्तिसिंहसँ परास्त शत्रुक पत्नीक मुख

मलिन सायंकाल एहि लेल जे रातिमे रहबाक स्थान नहि छैक आ कमलक रुचि दिने मे रहैत छैक आ दुपहरमे रौदसँ मलिन भए जाइत छैक) ।

2. भक्ति सँ कएल गेल सूर्यक लेल परिचित बद्ध अञ्जलिक (अर्घक) प्रदान सँ । अर्थात् ओ सायं सूर्यकें अर्घ देलनि । दोसर अर्थ भेल जे बद्धाञ्जलि (जकर हाथ बान्हल छैक) शत्रुक भक्ति सँ प्रसन्न भए कीर्त्ति सिंह सूर्यक रहैते ओकरा त्यागि देलनि (मुक्त कए देलनि) । तें बद्धाञ्जलिक त्याग कए सन्ध्याकें असन्ध्या बनओलनि ।

3. अन्य (नोकर आदि) द्वारा कृतार्थ (भोजन पाबि चुकल द्विज (पक्षी, सुग्गा)क मुँह मे सन्ध्याकालमे दाना देलनि । दिन पक्ष मे- अन्य (धनी आदि) द्वारा अकृतार्थ (असफल) द्विज (ब्राह्मण) समूहक हाथमे पुष्ट भिक्षा देला सँ सन्ध्याकें असन्ध्या (मध्याह्न) कएलनि । भिक्षुककें दिने मे भिक्षा देल जाइछ ।

प्रत्यर्थिकान्ता- शत्रुपत्नी । 'निकर-कर' मे यमक, द्विज अकृतार्थ-कृतार्थ बद्धाञ्जलिक दू अर्थक कारण श्लेष अलंकार । सन्ध्याकें असन्ध्या कहब विरोधाभास अलंकार ॥ ६१ ॥

इति श्रीमान् विद्यापति ठाकुरक बनाओल कीर्तिलतामे दोसर पल्लवक पं० शशिनाथझाकृत व्याख्या समाप्त

तेसर पल्लव

आब भम्हरी फेर पुछैत अछि–

हे कान्त (प्रिय) ! तोरा द्वारा कहल जाइत ई अमृतरस (कथा) हमर कानमे समाए गेल अछि । हे बुधवर ! कहह, तखन आगूक वृत्तान्त (घटना) फेर कहह ।

अमिञ (अव०)- अमृत (सं० । वित्तन्त (अव०)- वृत्तान्त (सं०) ।। १ ।।

भम्हरा कहैत छैक–

राति वितल, भोर भेल । सूर्य अन्धकारकेँ दूर कएलनि । कमलवन मे भौंरा हँसल । आँखि नीन कें छोड़लक, राजा कीर्तिसिंह मुँह पखारलनि । जाए वजीरक (मन्त्रीक) आराधना (प्रार्थना) कएलनि, सब काज कहलनि । किएक तँ जँ प्रभु (बादशाह) बड़ प्रसन्नो होथि तइयो हुनक शिष्ट (प्रधान विचारक) केर अधीने काज रहैत छैक ।

रअणि (अव०)- रजनि (सं०)=राति । पच्चूस (अव०)- प्रत्यूष (सं०)= अहल भोर । इन्द (अव०)- इन (सं०)=सूर्य । इन्दक स्थान मे पं० गोविन्द झा 'भिङ्ग' पाठ देने छथि, तदनुसार 'कमलवनमे भौंरा हँसल'-ई अर्थ भेल । उज्जीर (अव०)-वजीर (फा०)=मन्त्री । सिट्ठाअत (अव०)- शिष्टायत्त (सं०)- राजासँ सम्मानित विचारीक अधीन, शिष्ट+आयत्त । अर्थान्तरन्यास अलंकार ।। २ ।।

तखने मन्त्री प्रस्ताव कएलनि आ बादशाह कीर्तिसिंह कें बजओलनि । राजा कीर्तिसिंह बादशाह केँ देखलनि, शुभ मुहूर्त मे सुखपूर्वक भेंट कएलनि । उत्तम घोड़ा ओ वस्त्र प्राप्त कएलनि, हृदयक दुःख ओ वैराग्यकें

मेटओलनि । संसारक अधिपति सुप्रसन्न भेलाह, कुशलमय बात पुछलथिन। वारम्वार प्रणाम कए कीर्तिसिंह वार्ता (तिरहुतक समाचार) कहए लगलाह।

पातिसाह (अव०)- पात्साह (फा०)- राजा, 'पात्साहो नृपे प्रोक्तः' -पारसीकप्रकाश । गोचरिअ (अव०)- देखलनि । खोदालम्ब (अव०)- खुदालम्ब (फा०)=संसारक शासक । वत्त=वार्ता । वृत्त-वृत्तान्त ।। ३ ।।

आइ उत्सव अछि आ आइये कल्यणो भेल । आइ सुदिन ओ सुमुहूर्त भेल । आइ हमर माए हमरा पुत्र रूपमे जन्म देलनि अछि, अर्थात् जन्म देब सार्थक भेलनि अछि । आइ हमर पुरुषार्थ (जीवनक लक्ष्य) पूर्ण भेल अछि, हम बादशाहक चरणवस्त्र पओलहुँ अछि । परन्तु एकहि बेर दू टा अकुशल अछि- पहिल ई जे अहाँक प्रताप घटि गेल आ दोसर ई जे हमर पिता गणेश राए दोसर लोक स्वर्ग गेलाह ।

वेविहि (अव०)-द्वे एव (सं०)- दुइये टा । अवर (सं०)-न्यून । सग्ग (अव०)-स्वर्ग (सं०) ।। ४ ।।

राजाक आदेश भेल जे ओ के थिक जे तिरहुत कें साधि लेलक (दखल कएलक) ? कीर्तिसिंह बजलाह- डरेँ ई कथा केओ नहि कहैत अछि । बात ई अछि जे एतए अहाँ शासन करैत छी आ ओतए असलान ।

फरमान (फा०)= आज्ञा । साहि-साधित ।। ५ ।।

पहिने अहाँक आज्ञा केँ टारि देलक । तखन गणेश राएक वध कएलक । उवेह सम्पूर्ण विहार कें अपन अधीन कएल लेलक । ओकरा चलैत काल चामर डोलाओल जाइत छैक । ओ छत्र धारण कए तिरहुत मे कर उगाहैत (ओसूलैत) अछि । तखनहुँ अहाँकेँ क्रोध नहि होइछ । तखन त असलान तुर्क ओतए राज्य करओ । एहना स्थितिमे आब अपने आइ अपन अभिमानक त्याग कएल जाओ ।

पढम (अव०)- प्रथम (सं०) । सएर (अव०)- सकल (सं०)- सगर (मै०) । जलाञ्जलि=आँजुर भरि जल लए प्रेतकें देल जाइछ, तहि कालसँ ओकरा सँ कोनो सम्पर्क नहि ।। ६ ।।

दू राजा वाली पृथ्वी आ दू नायक (पुरुष) वाली नारी, ई दुनू ओहि दुनूक (राजा आ नायकक) भार नहि सहि पबैछ आ ओहि दुनू मे अवश्य मारि करबैछ । दीपक अलंकार ।

बे (अव०)–द्वे (सं०)=दू । बेण्णा (अव०)–द्विनृका (सं०)– दू पुरुषवाली (वे=दू, ना=नर) । बेबि (अव०)– द्वे अपि (सं०)=दुनूक ।। ७ ।।

संसार भरि अहाँक प्रताप जागि रहल अछि । अहाँ खड्ग सँ शत्रुक दलन कएल । अहाँक सेवा करए सब राजा अबैत छथि । अहाँ दान सँ पृथ्वीकेँ भरि देलहुँ । अहाँक यशकें सब लोक गबैत अछि । एतेक प्रताप रहलो पर यदि शत्रुक नाम सुनि कए अहाँकें असह्य नहि लागए त आन बेचारा की करए ? वीरत्व त अपन जगह पर पड़ले रहि जाएत ।

होसउ=होएत । असहना=असहनीय । रिउ–रिपु=शत्रु । इअर=इतर=आन । वापुर (अव०)–व्यापृत (सं०)–असहाय (एकसर) काजमे लागल । वीरत्तण (प्रा०)–वीरत्व (सं०)=वीरता ।। ८ ।।

एना सुनिकए सुलतान कुपित भेलाह । हुनक दुनू बाँहि रोमांचित भए गेल (रोइयाँ ठाढ़ भए गेल), दुनू भौंहक तनला सँ गेंठ पड़ि गेल, बिम्बक समान (पाकल तिलकोड़क फड़ सन) ठोर फड़कए लागल, आँखि लाल कमलक शोभाकेँ धारण कएलक (क्रोधें आँखि लाल भए गेल) । तखने खान (दलपति) एवं उमरा (अमीर) सब कें फरमान (आदेश) भेटल जे सब अपन–अपन साँठ–माँठ (सुसज्जित) कए तैयार होउ आ तिरहुत देशक लेल प्रस्थान करै जाउ ।

कोकनद (सं०)–लाल कमल । खान (फा०)– बहुतो यवनक मालिक । उमरा (फा०)–धनिक । साँठ (मै०)–सज्जित । उपमा एवं रूपक अलंकार ।। ९ ।।

सुलतान गरमएलाह त दरबार मे खलबली मचि गेल । नोकर–चाकर ओ परिवारक लोक सब चलए लागल, जकर पएरक भारसँ धरती धसमसाए लागल । सम्पूर्ण भूमण्डल तप्त भए गेल, सभक मनमे सबसँ शंका होमए लागल । वायु प्रचण्ड वेग सँ बहए लागल जेना लंका नगरी जरि रहल

हो वा उजड़ि रहल हो । दीवान, अर्दगर, गद्दवर ओ कुरवक अधिकारी गण राजाकें अदब (सलाम) कए बैसि गेल, जेना एखनहि सबदिस सँ दौड़ि कए असलान कें पकड़ि आनि देत ।

तपत (मै०)-तप्त (सं०)=धिपल । रोल (अव०)-घोल (मै०) । तात (अव०)-तप्त (सं०) । उज्जल = ऊपर मुहें जरब अथवा उजड़ब । दीवान (सलाहकार), अर्दगर (दण्डाधिकारी) । गर्दावर (भूमिनिरीक्षक), कोरबेग (अस्त्रक अधिकारी) । अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा अलंकार ।। १० ।।

ताहि सँ दुनू सहोदर भाइ आनन्दित भेलाह । श्रेष्ठ राजा कीर्तिसिंह बादशाहक प्रसाद (प्रसन्नता, कृपा) लए बाहरो आबि गेलाह । एही बीच किछु अधलाह समाचार सुलतान पओलनि । आ कि जे सेना पूब दिस सज्जित भेल छल से पच्छिम दिस विदा भेल । (कीर्तिसिंह कें) आन काज करैत आन काज भए गेलनि । विधाताक चरित्र (क्रियाकलाप) कें के जानि सकैछ ?

तात्पर्य ई जे कीर्तिसिंह अपन राज्यक शत्रु पर चढ़ाइक व्यवस्था कए लेलनि, मुदा ओ चढ़ाइ दोसर दिस भए गेल । सुलतानक पश्चिम सीमा पर ताही काल उपद्रवक समाचार अएलनि आ से तैयार भेल सेना ओम्हरहि चल गेल । कीर्तिसिंहक काज बिगड़ि गेलनि । आनक आन भए गेल' तथा 'विधिक चरित के जान' मैथिलीक लोकोक्ति थिक ।

बेबि (अव०)- द्वे अपि (सं०)-दुनू । पसाअ (अव०)- प्रसाद (सं०)- कृपा । एत्त्थन्तर (अव०)- एही बीच ।। ११ ।।

ताही खन ओ राजा कीर्तिसिंह चिन्ता करए लगलाह जे सबटा हमर लज्जा भेल । कालक (अवसरक) चुकल काज की परिश्रमोसँ फेर सिद्ध भए सकैछ ? अर्थात् नहि ।। १२ ।।

तेहना प्रसंगमे चिन्ताक भार सँ झुकल राजा कीर्तिसिंहक मुख कमल कें देखि महायुवराज श्रीमान् वीरसिंहदेव अपन मन्त्रणा (परामर्श) कहलनि- एहनो स्थितिमे गुणवान् व्यक्ति दुःखक गणना नहि करैत छथि (परवाहि नहि करैत छथि) ।। १३ ।।

राजाक घर मे लोकक काज दु:खे सँ सिद्ध होइत छैक । तें उद्वेग (उद्विग्नता, व्याकुलता) नहि कएल जाओ, मित्र कें पूछि सन्देहकें दूर कएल जाओ । प्रयासक फल भाग्यक अधीन होइछ, तें पुरुषकर्म (पौरुष) मे साहस कएल जाओ । जँ साहस कएलहुँ पर सिद्धि नहि हो तँ ताहि लेल किएक झँखैत छी (सन्ताप करैत छी), होनी त होएबे करत, तखन वीर पुरुष उत्साह करैत छथि । दैवह (अव०)- दैवस्य (सं०)-दैवक, भाग्यक । आयत्त (सं०)-अधीन । झंख (देशी शब्द)-सन्ताप । पइ (अव०)-प्रति (सं०) ।। १४ ।।

अथवा- ओ (बादशाह) बुद्धिमान् आ अहाँ गुणवान्, ओ धर्मयुक्त आ अहाँ शुद्ध, ओ सदय आ अहाँ राज्यच्युत (राज्य सँ बेदखल), ओ विजयक इच्छावला आ अहाँ वीर, ओ राजा आ अहाँ राज्यमर्मज्ञ, ओ पृथ्वीपति सुलतान आ अहाँ राजकुमार थिकहुँ । एहि तरहें दुनूमे घनिष्ठ सम्बन्ध रहलें एकचित्त सँ यदि अहाँ हुनक सेवा करब त प्रतिकार अवश्य होएत ।। १५ ।।

एही बीच फेरो घोल पड़ल । सेनाक संख्या के जानि सकैछ ? सुलतानक तख्तान (सिंहासन) जखन चलि पड़ल त पृथ्वी कमलिनीक पात जकाँ थरथरा कए चलए लागल ।। १६ ।।

जखन सुलतान इब्राहिम साहक तख्तान चलि पड़ल त पृथ्वीक आधार कूर्म (काछु) बाजल-हे धरणी ! सुनू, अहाँक धारण करबाक (उघबाक) बल हमरा नहि रहल' । तखन पहाड़ टरए (उपर सँ टुटए) लागल आ पृथ्वी पर खसए लागल । पृथ्वीकें अपन फणा पर रखनिहार नागक फणा काँपए लागल । सूर्यक रथ आकाशमार्ग मे धूरा भरि गेला सँ झँपाए गेल ।

तकतान (अव०)-तख्तेराँ (फा०)- यात्रा मे संग चलएवाला सिंहासन । सुरुतान (अव०)- सुलतान (फा०)-सुरत्राण, बनौआ संस्कृत । इमराहिमो (अव०)- इब्राहिम (फा०) । अतिशयोक्ति अलंकार ।। १७ ।।

सैकड़ो मृदंग कतेको बेर बाजए लागल, रणवाद्य सब जोर-जोर सँ फुकाए लागल । प्रलयकालक मेघ वज्रक शब्द (स्वन) करए लागल जाहि

सँ शत्रुक बल (सेना) नुकाए लागल । लाखो तुर्क हर्ष सँ हँसए आ घोड़ा कें भीड़मे धसाबए लागल, मान धरैत तरुआरि निकालि मारि करए लागल ।। १८ ।।

जखने हाथी चलए तखन ओकर मदजल (भट्ठी) चुअए लागए आ ताहि पर लोकक पएर पिछड़ए लागल । शत्रुक घर मे डर उत्पन्न भए गेल आ ओकरा सबकें कपार धुनैत नीन नहि होइ । खड्ग लए गर्व कए जखन तुर्क सेना लड़ए लागल त सम्पूर्ण स्वर्गो शंका मे पड़ि मुर्झाए गेल ।। १९ ।।

पैदल सैनिक पएरक भार (दबाब) सँ जलकेँ सोखि (सुखाकए) स्थल बना देलक, ई जानि सम्पूर्ण संसारकें निश्चय शंका (अथवा भय) उतपन्न भेल । केओ सैनिक ओतए शत्रुकें पकड़ि बान्हि बादशाहक पएर तर राखि देलक आ केओ शत्रुक नारीक हाथ अपना हाथमे थामि लेलक ।

पलि (अव०)-पड़ि (मै०)=पड़ि कए । धुअ-ध्रुव-निश्चय । अप्पु (अव०)- अपन ।। २० ।।

चारू दिसाक भीतर, द्वीप एवं दिगन्तर (विपरीत दिशा अथवा दिशाक कोण) मे बादशाह दिग्विजय करबाक लेल घूमि रहल छथि । ओ दुर्गम स्थान केँ झकझोड़ैत कर (राजस्व) चाहैत वैरीक दलकेँ यमराज बनि मारैत छथि ।

चौदीसा-चतुर्दिशा । अन्तर-भीतर । दीप (अव०)-द्वीप (सं०) । दिगन्तर (सं०)- अन्या दिक्=दिगन्तरम्=दोसर दिस अथवा दिशोः अन्तरम्=दू दिशाक मध्यमे । दुग्गम (अव०)- दुर्गम (सं०) । वेरिसत्थ (अव०)- वैरिसार्थ (सं०)=वैरीक दल । संहणइ (अव०)=संहन्ति (सं०)=संहार करैत अछि । जम=यमराज ।। २१ ।।

इब्राहिम साह आन देशकें अपन अधिकारमे लए लेलनि, बड़का-बड़का पहाड़ एवं नगर कें जरा देलनि, समुद्रकेँ अपन राज्यक सीमा बनाए लेलनि, समुद्रकें पार कए शत्रुकें मारलनि, शत्रुकें सर्वस्व दण्ड करओलनि, ओकर घोड़ा लए ओकरा पएरहि रास्ता धरा देलनि तथापि यदि

ओ शत्रु आगू एक ठाम उबरए (बचि कए निकलि जाए) त दस ठाम घूसा खाइत छल। (सिपाही ओकरा घूसा मारैत छलैक)। एहि तरहें इब्राहिम साहक प्रयाण (युद्धयात्रा) कें पृथ्वी पर के राजा सहि सकैत (अड़ि सकैत) छथि ? ओहि राजा कें त पहाड़ ओ सागरक पारो भेला पर उबार (बचबाक उपाय) नहि छनि। तें ओ रैयत (करदाता) बनल जिबैत रहैत छथि।

बन्दीकरिअ-बन्धीकृत:=अपन राज्यक संग बान्हि (जोड़ि) लेलनि। पारक्य (सं०)=शत्रु। सरबस=सर्वस्व=सकल सम्पत्ति। डाँडिअ (मै०)=दण्डित करिअ। घोल-घोड़=घोड़ा। पञेड़ा (अव०)-पन्था: (सं०)-पेड़ा (मै०)= एक पेड़िया रास्ता। उब्बरिअ=उबरब=बाँचि निकलब। धाड़े (अव०)-धल (मै०)=घूसा। पुहुबि (अव०)-पृथ्वी (सं०)। कमन (अव०)-कवन= कौन=कोन (मै०)। उवार (अव०)- उद्वार (सं०)=उगरब (बचब)॥ २२॥

लोक रैयत बनिकए जतए जाइत छल ओतए खढ़ो तक नहि छूबि सकैत छल। छोटो काज (अपराध) पर बड़का शासन (दण्ड) भेटैत छलैक। ओहि सेना मे लम्पट एवं चापलूसक राज (चलती) छलैक। 'एकओ खढ़ नहि छुअब' मैथिली लोकोक्ति, तात्पर्य 'किछु नहि लए सकब'। साति (प्रा०मै०)-शास्ति (सं०)- शासन, दण्ड। कटक (सं०)=सैन्यदल। लटक=स्वार्थसिद्धि हेतु दलक पाछू लगनिहार। पटक=पटदए (तुरत) अनुकूल उत्तर देनिहार। राज (मै०)- राज्य॥ २३॥

नेताक (हाकिमक) हाथें (द्वारा) चोरकें घुड़ा देल जाइ छल (छोड़ि देल जाइ छल) आ दोष दोसराक माँथ पर फेकि देल जाइ छल॥ २४॥

ओतए सेरक हिसाबें (एक आना मे एक सेर) पानि कीनि कए आनल जाइत छल आ सेहो पीबए खन कपड़ा सँ छानए पड़ैत छल। एक सए पानक मूल्य सोनाक एक टाका लगैत छल। चाननक लकड़ीक दाम मे जारनि बिकाइत छल॥ २५॥

बहुत कौड़ी देला पर थोड़ खुद्दी भेटैत छल। घीक बेचाँ (मूल्य) देला पर घोड़ (तक्र) दैत छलैक। कड़ू तेल देहमे लगाओल जाइत छल (जे खएबाक छल, लगएबाक नहि), दासी आ बड़द समान दाममे पाओल जाए लागल।

कनिक (अव०)- कणिका (सं०)- टूटल अन्न, कणा । बेचाँ (मै०)=बिक्रय मूल्यक वस्तु (अन्न आदि), जेना चूनवाली केँ चूनक बेचा धान देल जाइ छलै । दाम लैत छलैक घीक आ दैत छलैक घोर । घोड़ (मै०)-तक्र, घोरमट्ठा । बाँदी (फा०)- दासी । सञोघ (अव०)- समर्घ (सं०)=समान मूल्य ।। २६ ।।

एहि तरहें कीर्ति सिंह सदल बल बहुत दूर पश्चिम दिशाक अन्त तक चल गेलाह । युद्धमे बहुत साहस कएलनि, बहुत ठाम फल-मूल खएलनि, तुर्कक संग रहैत बहुत कष्टसँ अपन आचारक रक्षा कएलनि । हुनक बटखर्चाक धन निघटि गेल, देह दुब्बर भए गेल, वस्त्र पुरान भए गेलनि, (किन्तु ई सब देखितहुँ) सुलतान हिनक सुधि नहि लेलनि, किएक त यवन (तुर्क) स्वभावहि सँ निर्दय होइत अछि । तुल्ययोगिता अलंकार ।

आचार=कुलकरीतिक आचरण । संबर (अव०)- संबल (सं०)= वटखर्चा, पाथेय । अम्बर (सं०)-वस्त्र । निवरल (अव०)-निवृतः (सं०)- निघटल, सधल ।। २७ ।।

धन सँ हीन वाणिज्य (बनियौटी, व्यापार) नहि होइछ । ने त विदेशमे ऋण भेटैछ आ ने मानक धनी (बहुत माननीय व्यक्ति) भीख माँगि सकैत छथि । राजकुलमे उत्पत्ति (जन्म) छनि तें दीनवचन मुँह पर नहि अबैत छनि । सेवा कएल स्वामी (मालिक) यदि सेवकक भरण-पोषण नहि करथि, भाग्य जँ आशा नहि पुराबए, आह ! तखन त महान् व्यक्तिओ की करए ? गण्डाक गण्डा (चारि चारि) दिन उपासक (भूखल रहबाक) गणना करैत रहथु ।

वाणिज्य=पूजी लगाए ओहि सँ नफा कमाएब । महत्तर (सं०)- अधिक महान् । गण्डञे (मै०)-गण्डाक द्वारा, गण्डा-चारि गनल वस्तु विशेषतः केरा । वअन (प्रा०) = वचन, दोसर वअन=वदन । उपास (मै०)-उपवास (सं०)=व्रत, भूखक दुःख सहब ।। उल्लेख अलंकार ।। २८ ।।

एहि दुःखक अवस्थामे प्रिय व्यक्तिओ सुधि नहि लैत छैक आ मित्रो पुछारी नहि करैत छैक । भोजन नहि जुटैत छनि, नोकर भूखें छटपटाए वा दग्ध (पिताँठ) भए भागि जाइत छनि, घोड़ा घास नहि पबैत छनि,

दिन-दिन अत्यन्त दु:ख बढ़ि रहल छनि । तखनो अखौरी श्रीकेशव कायथ आ सन्नगहि (सेनापति) सोमेश्वर हुनक सेवासँ नहि चुकैत छथि, दु:खक अवस्थाकेँ सहि हुनका लग रहैत छथि ।

संपजइ (अव०)-सम्पद्यते (सं०)-उपलब्ध होइत छनि । डड्ढिअ= दग्ध भए (जरिकए) । अक्खउरि (अव०)-अखौरी, सम्प्रति प्रचलित कायस्थक उपनाम । सन्नगहि-सैन्यग्राहक वा सान्धिविग्रहिक ।। २९ ।।

बुद्धिमान् व्यक्ति बनियाँ होइत छथि, धर्म रूपी हाट पर नोकर ओ मित्र रूपी सोना केँ पसारैत छथि आ विपत्तिकाल कसौटी थिक । (ताहि काल जे नोकर वा मित्र सङ देलनि से ओहि कसौटी पर शुद्ध भेलाह आ तनिक बड़ मोल होइछ ।) माला रूपक अलंकार ।। ३० ।।

ताहि तरहक परमकष्टक चरम सीमाक प्रसंग मे दुनू सहोदर (वीर ओ कीर्ति) मिलिकए अपन लाजक (प्रतिष्ठाक) चिन्ता करए लगलाह, आचारक रक्षा, गुणक परीक्षा, हरिश्चन्द्रक कथा, नलक व्यवस्था, रामचन्द्रक रीतिक अनुसरण करए लगलाह । दानक प्रीति, आत्मीय व्यक्तिक धनक ग्रहण आ साहस सँ उत्साह कए अकर्तव्य कार्य कें रोकलनि, बलि कर्ण आ दधीचि एहि तीनू महादानीक प्रतिस्पर्धा साधित करए लगलाह (यथाशक्ति खूब दान कएलनि) ।

समाज (प्रा०मै०)- लग, 'पहुक समाज'-पतिक लग । निअञेक (अव०)- निजहिक । पतिग्गह (अव०)-प्रतिग्रह (सं०)- दान वा पैंच लेब । अकृत्य-अनुचित कार्य ।। ३१ ।।

ताही खन राजप्रवर कीर्तिसिंह एकमात्र इयेह सोचए लगलाह कि हमरा सभक एतेक दु:ख सुनि कए हमर माए कोना जीवि सकतीह ।।

अम्हह-हमरा सभक । किमि-कोना ! जिव्विह-जिउतीह ।। ३२ ।।

परन्तु ओ आश्वस्त होइ छथि जे ओतए (तिरहुतमे) बुद्धिमान् मन्त्री सभ तिरहुतक भार टेकए वाला स्तम्भ (खाम्ह) स्वरूप विद्यमान छथि । ओ सभ हमर माए केँ अपन हाथक आश्रय (सहारा) देताह ।

विअक्खण (अव०)– विचक्षण (सं०)–बुद्धिमान् । 'हत्थ अवलम्ब' संरक्षण, धैर्य ।। ३३ ।।

ओतए मन्त्री आनन्द खान छथि जे सन्धि–भेद आ विग्रहो कें जनैत छथि । अत्यन्त पवित्र मित्र श्रीराजहंस छथि जे हमर काजक लेल अपन सब किछुक (सब धनक) उपेक्षा करैत छथि । सन्धि शत्रुसँ मेल । विग्रह–युद्ध । भेद–शत्रुक पक्षक योद्धा सबमे परस्पर मतभेद कराएब । उपेक्खइ (अव०)– उपेक्षा करब, बोहाइत धनक संरक्षण नहि कए ओहि सँ हटि जाएब । ।। ३४ ।।

हमर सहोदर श्री राजसिंह छथि जे युद्धक पराक्रममे रुष्ट (खिसिआएल) सिंह थिकाह । गुणसँ भारी मन्त्री गोविन्ददत्त छथि तनिक वंशक बड़ाइ कतेक कहू ? ।। ३५ ।।

ओ शिवक भक्त हरदत्त नामक छथि जेना संग्रामकार्यमे परशुराम होथि । धर्माधिकारी हरिहर केँ देखैत छी (नजरि पर अबैत छथि), जनिका प्रणाम कएला सँ चारू पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त होइत छैक ।

पण्णति (अव०)–प्रणति (सं०)– प्रणाम । पुरिसत्थ–पुरुषार्थ । उत्प्रेक्षा अलंकार ।। ३६ ।।

नीतिक मार्ग मे चतुर भवेश ओझा छथि जनिक मनमे पापक लेशो नहि लगैत छनि आओर परम ज्ञानी न्यायसिंह राउत छथि जे संग्रामकार्य मे अर्जुनक समान छथि ।

नअमग्ग (अव०)–नयमार्ग (सं०)–नीतिक बाट । कलुस–कलुष= पाप । लेश=अल्प, कम । अरु (अव०)–अवर (सं०)–अओर (मै०) । उपमा अलंकार ।। ३७ ।।

हुनका सभक आश्वासन (धैर्यप्रदान) सँ निश्चित हमर माए शोक नहि करतीह । हुनका घरमे विपत्ति नहि अबैत छनि , जनिका पर लोक अनुरक्त (अनुराग भरल) होइत छनि । अर्थान्तरन्यास अलंकार ।। ३८ ।।

लग जा कए वा आग्रह पूर्वक सुलतानकें कहैत छी जे चोट्टे (विन रुकनहि झटदए) उपाय कएल जाए । कियेक त विनु कहनहि

जनिका सेवकक काज मन पड़नि से राजा आब कतए भेटि सकैत छथि ? कतहु नहि । अर्थान्तरन्यास ओ अर्थापत्ति अलंकार । चापि (उड़िया)–समीप जाए, (प्रा०मै०)– आग्रह कए, दबाव दए । चोट्टे (मै०)–झटिति (सं०)– झट दए ।। ३९ ।।

जे साहस कए रण मे उछलि पड़लाह । जे आगिमे धसलाह, जे सिंहक केसर पकड़लनि, जे सापक फणा धएलनि, जे तमसाएल यमराजक भयकेँ सहलनि सएह दुनू सहोदर वीरसिंह ओ कीर्तिसिंह सुलतानक दर्शन कएलनि । किएक त तावते धरि जीवनक (प्राणरक्षाक) प्रति स्नेह रहैत छैक यावत् तक मान नहि जगैत छैक । (जखन मान–सम्मान पर ठेस पहुँचैत छैक आ ओहि व्यक्तिक मनमे मानक रक्षाक भाव जागि जाइत छैक । तखन ओ मानरक्षाक लेल प्राणक परवाहि नहि करैछ । क्रूर शक्तिशाली असलानक विरुद्ध आगू बढ़ब एवं सुलतान तक पहुँचब एहेन असम्भव काज थिक जेहन आगि मे कूदब आदि) । निदर्शना, काव्यलिङ्ग एवं अर्थान्तरन्यास अलंकार । झम्प (सं०)– झाँपब, धड़ाक दए कूदब–'सम्पातपतन' जटाधर कोष । धस (मै०)– नीचा प्रवेश करब । गोचर (सं०)– दृष्टिगत; (मै०) विनती, निवेदन । ।। ४० ।।

एहना अवसर मे परम कष्ट सँ अपन राजोचित साजसज्जाक विना, कटुतारहित कोमल रूपमे महाराजाधिराज श्रीमत्कीर्तिसिंह केँ देखि सुलतानक मनमे दया भरि गेलनि । राजा कीर्तिसिंह पातिसाह सँ निवेदन कएलनि ।। ४१ ।।

हम राज्य ओ परिवार छोड़ि आएल छी । पिताक वध सँ उत्पन्न वैरक कारण ईर्ष्या सँ भरल परम कष्ट सँ एतए परदेश अएलहुँ अछि, किन्तु एतए हमरा लोक सब कहैत अछि जे आइ धरि हम किछु नहि पाबि सकलहुँ । दुःख छोड़ि हम की कहू । आब ई राजकुमार (हम) की करए ? अपनेक मुख बदलल नहि (अपने किछुओ कृपा नहि कएल), एहिमे सबटा दोष हमरे थिक ।। ४२ ।।

यदि प्राकृत जन (अनुयायी प्रजा वा सेवक) अपन पक्षक (राजकीय दलक) सेवा नहि करए, राजा अपन अङ्गक (सहायकक) रक्षा नहि करथि

आ सुजन व्यक्ति स्पष्ट यथार्थ नहि बाजथि त धर्मक मन्त्रणा करएवाला कतए जाथु ? पक्ख-पक्ष (अपन दल) । पाउआ (अव०)-प्राकृत (सं०)-प्रजा । राओ (अव०)-राजा । फूर (अव०)-स्फुट (सं०)-स्पष्ट । सुअण-सुजन । तुल्ययोगिता अलंकार ।। ४३ ।।

तखन फेर सुलतान पलटलाह (पश्चिम मुँहें जे जाइ छलाह से पूब तिरहुतमुहें विदा भेलाह) । पुनः विधाता (भाग्य) प्रसन्न भेल, फेरो दुःख एवं दरिद्रता खण्डित भेल । सेनाक प्रस्थान तिरहुत दिस भेल । राजा कीर्ति सिंहक मुँह उत्साह सँ मण्डित भेल । हुनक साहसरूपी कल्पवृक्ष फलित भेल । बादशाहक कृपापूर्ण फरमान (राजादेश) भेल । तनिका लेल पृथ्वी पर की अशक्य (नहि करबा योग्य) अछि जनिका पर सुलतान प्रसन्न होथि ।। पलट्टिअ-घुरलाह । पुनबि (अव०)-पुनरपि (सं०) । कटकाञी (अव०)-सैन्य प्रयाण । वअण-वदन-मुँह । सानुग्गह (अव०)- सानुग्रह (सं०)-अनुग्रह (कृपा) सहित । फरमान (फा०)-राजाक आदेश । पुहुवी (अव०)-पृथ्वी (सं०)-धरती । असक्क-कए सकबा जोग नहि । 'साहस कल्पतरु' मे रूपक, 'असक्क की' मे अर्थापत्ति अलंकार ।। ४४ ।।

शत्रुमण्डलीक युद्धाभिमान कें नष्ट करएवला जे बल ताहिसँ, संसारक सब दिस पसरल कुमुद ओ कुन्द फूलक समान यश सँ, तथा चञ्चल चामर सँ युक्त हाथी-घोड़ा रूपी रङ्गमञ्च पर स्थित लक्ष्मी सँ सदा साहसकेँ सफल सिद्ध कएनिहार राजा कीर्तिसिंह विजयकें प्राप्त कए रहल छथि । उपमा, रूपक एवं यमक अलंकार ।। ४५ ।।

इति श्रीविद्यापतिक विरचित कीर्तिलताक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ-झाकृत प्रबोधिनी व्याख्यामे तेसर पल्लव समाप्त

चारिम पल्लव

आब भम्हरी फेरो पुछैत अछि–

हे प्रिय ! हमरा कहू-कहू, सत्य बात कहू जे कोन तरहें सेना चलल ? कोना-कोना कए तिरहुत पवित्र भेल आ तखन असलान तुर्क की कएलक ? ।। १ ।।

भम्हरा कहैत अछि–

कीर्तिसिंहक गुण हम कहैत छी । हे प्रिये ! एहि दिस कान दिअ आ सुनू- विना जनबल सँ, विना धनसँ आ विना झगड़ा सँ जे कीर्तिसिंह सुलतानकेँ तिरहुत विजय हेतु चला देलनि (तनिक चरित सुनू) ।

हञो (प्रा०मै०)- हम । अप्पहि-अर्पित करू । द्वन्द्व (संस्कृत)-दन्द (अव०, प्रा०मै०)- धन्ध (अव०)-संघर्ष । विभावना अलंकार ।। २ ।।

दुनू कुमार (वीरसिंह एवं कीर्तिसिंह गौरवशाली (महान्) छथि आ मलिक असलान सेहो महान् छथि, जनिका (कुमारक) चलओलासँ जकरा (असलानक) प्रति सुलतान अपनहि चलि पड़लाह । यथासंख्य अलंकार । गरुअ (अव०)- गुरुक (सं०)- भारी, गौरवशाली । मलिक (फा०)-मालिक, अधिपति ।। ३ ।।

सुलतानक आदेशसँ पूरा सैनिक दलमे घोल पड़ि गेल, काजी ख्वाजा मख्दूम चलि पड़लाह । 'कतए चली' तकर घोषणापत्र निकलल, लगभग लाख पैदल सैनिकक शब्द बाहरमे पड़ए लागल । बाजा बाजल, सेना साजल गेल । हाथी घोड़ा पैदल सेनाक जमघट लागि गेल । सबकें बाहर कए द्वारक मैदानमे दए देल गेल ।

सगरो (मै०)-सकलेऽपि (सं०)- सबहु । हसम (फा०)- अनुयायी दल, युद्धमे संग भेनिहार । रोल (अव०)- घोल (मै०) । कादी (अव०)-काजी (फा०)-उच्च अधिकारी । ख्वाजा (फा०)- खोजा (अव०)-धर्मक अधिकारी । मख्दूम (फा०)- धर्मप्रवचनकर्ता । लरू (अव०)-

व्यवस्थित रूपें चलब, 'लल विलासे' संस्कृत धातु । खोदाबरद (फा०)-खोधवेध (मै०)=जिज्ञासा । खत (फा०)-घोषणा पत्र । पएदा (अव०)- प्यादा (फा०)-पैदल सैनिक । पदाति (सं०)- पैदल सैनिक । दहलेज (फा०)- मुख्यद्वारक सामनेक विशाल मैदान ।। ४ ।।

'सज्जित होअह, सज्जित होअह' केर घोल (हल्ला) पड़ल । सेनाक ने त गनती आ ने मिति (नाप) छल । राए कीर्तिसिंहक मनोरथ पूर्ण भेल जे सेनाक प्रस्थान तिरहुत दिस भेल ।। इत्ति (अव०)- इयत्ता (सं०)-एतेक संख्या । मिति (सं०)-नापल (एतेक दूर धरि) ।। ५ ।।

सबसँ पहिने हाथीसवार सेना सजाओल गेल, तखन रथ आ जीन कसल घोड़ा तैयार कएल गेल । पैदल सेनाक झुण्डकें के गनए ? ओ त अनन्त छल । एहि तरहें चतुरंगिणी सेना (हाथी, रथ, घोड़ा, पैदल) चलि पड़ल ।

बल (सं०)- सेना । रह (अव०)-रथ । तोरि=तुलित कए, युक्त कए । पाइक चक्क (अव०)- पदातिचक्र (सं०)- पैदल सैन्य दल । चतुरंग (सं०)-चारि अंग (विभाग) सँ युक्त सेना ।। ६ ।।

मदमत्त हाथी लगातार सतत युद्धमे जा रहल अछि । (एकर अन्त नहि छल ।) ओ सब गाछकेँ भङैत (तोड़ैत) काछ तर चापि (दबाए) दैत, डोर (रस्सा) केँ तोड़ैत, घोल करैत (जोड़ सँ चिकरैत) संग्राम कें टेकैत, भूमिपर स्थित मेघस्वरूप (कारी), अन्हारक अचल ढेर स्वरूप, शरीरधारी गर्व स्वरूप देखबामे सुन्दर, कान चलबैत, पर्वतक समान ऊँच अछि । काछ (मै०)-जाँघक ऊपर सटल कक्ष (घुच्ची) । डोल-डोर-डोरी (रस्सा) । घोल (मै०)- हल्ला, तेज आवाज अथवा घोड़ा । थेघ (अव०, प्रा०मै०)- स्थगित कएनिहार । हाथीक कारी झुण्ड कें मेघ, अन्हारक जमाव, आ गर्वक रूपमे वर्णित कएने माला-रूपक एवं पर्व समानमे उपमा अलंकार अछि । स्वभावोक्ति अलंकार ।। ७-१० ।।

ओ पैघ-पैघ सूँढ सँ मारि कए मनुष्यक मुण्डकें फोड़ि दैत अछि । संभवतः एकरा विधाता विन्ध्याचल पर्वत सँ कारी पाथर चुनि कए गढ़ने छथि, अगस्त्य मुनिक नियमक उल्लंघन रूप दोषकें टारि (उपेक्षा कए) हाथी रूप पर्वतो बढ़ि गेल । दौड़ैत, खुनैत, जान मारि दैत अछि, किन्तु महथवारक

आँकुश (लोहाक बनल नियन्त्रणक अस्त्र) कें ओकर प्रभाव सँ मानि लैत अछि । उत्प्रेक्षा अलंकार । विनध्य पर्वतकें अगस्त्य मुनि बढ़बा सँ मना कएने छलथिन, मुदा हाथीक रूपमे ई विन्ध्य पर्वत ताहि नियमकेँ टारि बढ़ि कए ऊँच भए गेल तकर सम्भावना कएल गेल अछि ।। ११ ।।

घोड़सार मे पदसंचार (पएरक चहल पहल) होबए लागल, घोड़ाकेँ सजाओल गेल (ओहि पर जीन कसल गेल अर्थात् बैसवाक गद्दा लगाओल गेल) । सहीस ओकर पीठकेँ थपथपओलक, से सुनि घोड़ाक अंग रोमाञ्चित भए गेल अर्थात् उत्साहसँ ओकर रोइयाँ ठाढ़ भए गेलैक ।

पाइग्गह (अव०)- पाएगाह (फा०)- घोड़सार, अस्तबल । पल्लान (अव०)- पर्याण (सं०)- घोड़ाक सजावट । थनवार (अव०)-स्थानपाल (सं०)- घोड़ाक घरक व्यवस्थापक, घोड़ाक परिचारक ।। १२ ।।

तेजी ओ ताजी जातिक अनेक घोड़ा सजाए-सजाए आनल गेल, जकर नाम पराक्रमक कारण सब द्वीप मे जानल जाइत छल, अर्थात् अतिप्रसिद्ध छल । ओकर कन्हा विशाल आ सुन्दर बान्ह (शरीरक गठन) छलैक, कान सितुआ सन चमकैत शोभित छलैक । ओ तड़पि कए (कूदि कए) हाथी केँ ऊपर सँ लांघि जाइत छल आ शत्रुक सेनाकेँ क्षुब्ध कए दैत छल ।

बाजि=घोड़ा । तेजी=सिन्धी घोड़ा । ताजी=ताजिक, अरबी घोड़ा । शुक्ति=शीप, सितुआ ।। १३ ।।

ओ घोड़ा शक्तिशाली, शूर (पराक्रमी), पुष्ट छातीवाला, चारू टांग में चक्रचिह्न सँ युक्त, अनन्त काल तक युद्ध करएबाला ओ युद्धक मर्म (दाव-पेंच) जानएवाला छल जे युद्धभूमिमे सवार केँ तारि दैत छल, विजय प्राप्त करबैत छल । नीक जातिक शुद्ध (दोष-रहित), क्षोभक कारण तमसाएल, कान्ह उठाए दौड़ि जाइत अछि । दर्पसँ चूर भए टाप (सक्कत टपाटप आवाज करैत पएर) सँ नीचाँ चोट मारैत अछि जाहि सँ पृथ्वी चूर्ण भए जाइछ ।

ऊर=उरस्=छाती । सामि=स्वामी=घोड़सवार । संगर=युद्धभूमि । खोहें=क्षोभसँ, विपक्षक आक्रमण सँ प्रतिक्रियाक लेल मनक चंचलता सँ । तोरि=तोलि=सन्तुलित कए । विमुद्ध=विमुग्ध=मदान्ध ।। १४ ।।

विपक्षक सेनाकें देखि हिनहिनाए दमसैत अछि । चाबुकक डर सँ दौड़ैत हवाकेँ जीति लैछ, चामर सँ शोभित अछि । चित्र-विचित्र (अनेक तरहक) नाच नित्य करैत अछि । सहीसक राग वाग (टिटकारी) कें जनबामे निपुण अछि ।

दामसे=जोरदार शब्द सँ डरबैत अछि । निसान=निस्वान=एक युद्धवाद्य । सद्‌द=शब्द । भेरी=रणवाद्य । नद्‌द-नर्द=घोरशब्द । खोणि=क्षोणी । तजान=तर्जनी=चाबुक । वात जीत=हवा सँ तेज दौड़ि ओकरा जीति लैत अछि । विचित्त चित्त=अद्भुत । रागवाग=रागवाक्=घोड़ाक बुझवा-योग्य लययुक्त वाणी ।। १५ ।।

एही तरहेँ चुनि-चुनि तेजी ओ ताजी जातिक घोड़ाकेँ पाखर (कवच) सँ सजाए-सजाए लाखो संख्या मे आनल गेल जकर मूल्य सुमेरु पहाड़ो थोड़े होतए ।। १६ ।।

ओकरा प्रत्येक पएर मे नाल ठोकल छल, व्याकुल-व्याकुल मुँह, चमचम करैत आँखि, अत्यन्त दृढ़ बान्हक देह, कड़गर एवं चञ्चल कान्ह छैक, जकर पीठ पर सवार व्यक्ति अपन अहंकार सिद्ध करैत अछि, पहाड़ोकेँ लांघि कए शत्रुकेँ मारैत अछि । जेना अखने शत्रुक कीर्तिरूपी नदीकेँ लांघि पार भेल होअए तकरे जलक सम्पर्क सँ चारू पएर नीक जकाँ धोखारि कए धोअल हो । मुरली, मनोरी, कुण्डली, मण्डली इत्यादि अनेक चालि चलैत केहन लगैत अछि जेना ओकर पएरक तरमे वायुदेव बसैत होथि । कमलक फूलक आकार मे मुँहपाट (कपार पर कपड़ाक पट्‌टी) लागल छैक जेना स्वामीक यशरूपी चानन कपार पर लागल हो ।

कटक=बलय, बलयाकार गोल लोहाक नाल । चांगुरे-चांगुरे=प्रत्येक पाएर में, चंग-दक्ष, निपुण, चांगुर=पक्षी कुकुर विलाड़ि आदिक पएर, सादृश्य सँ एतए घोड़ाक खुर । प्रत्येक एवं अतिशय बुझएबाक हेतु शब्दकें दू बेर कहबाक व्यवहार अछि । वाकुल=व्याकुल, शत्रुकेँ पछाड़बाक हेतु बेचैन । काचल=काचक समान चमकैत । पारक=पारक्य (सं०)=शत्रु । धोखार (मै०)=पानिक चोटसँ थाल आदि धोअब । मुँहपाट=मुखपट्‌ट ।। १७ ।।

ओ घोड़ा सब तेज, वेग सँ चलनिहार, जबान, क्रोधसँ बढ़ल जा रहल छल, सिन्धुनदीक ओहि पार मे जन्म लेने छल, सूर्यक रथ मे बहैत काल जेना ओतए सँ खोलि कए आनल गेल छल, चलबामे बसातो कें पछुआ दैत छल, वेग सँ मनोकें जीति जाइत छल, दौड़धूप करैत टापक चोट सँ माँटिकें धसमसा दैत छल, जाहि सँ पृथ्वी पर वज्र खसबाक गर्जन होइत छल । युद्धक मैदानमे चलए लागल, अनेक तरहक नाच (चक्कर दैत) देहकें नचबैत अछि । शत्रुराजाक लक्ष्मीकें छीनि अपन सबारक आशा पुरबैत अछि ।

तरवाल=तरस्वी=वेगयुक्त । तामस (मै०)-क्रोध । काढ़ल (मै०)-लएकें राखल । घसमसइ-धँसाए मसकाएब । सञो (अव०)-समम् (सं०)-समान । परि (मै०)- जेकाँ, प्रकारक । अछोलि (मै०)-छीनब । उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक ओ अतिशयोक्ति अलंकार ।। १८ ।।

ताहि घोड़ा पर सुलतान चढ़लाह । ध्वजा जो चामर पसारल (सजाओल) गेल । ओ घोड़ा कतेको तरहें घीचि आनल गेल । यश ओ पराक्रम बड़ पओलक, राजघरक सब दिशाकें जनैत छल । राजामे श्रेष्ठ दुनू सोहदर (कीर्ति ओ वीर) दू गोट घोड़ा प्राप्त कएलनि जकर सब लगमे प्रशंसा करए आ शत्रु दूर जा हारि जाइत छल ।

वित्थरिअ-विस्तृत कएल गेल, विथारल गेल । बेबि=दुनू । राजगुरु=राजा मे श्रेष्ठ । भङ्ग=हारि ।। १९ ।।

तेजी ओ ततारी जातिक घोड़ा चारू दिस धराधरि छूटल, युवक तुर्क ओहि पर सबार भेल । ओकर चाबुकक आबाज तेना होइ छलै जेना बाँस फाड़ै काल फटाक कए उठैछ । ओ घोड़सबार मोजा पर सरमोजा चढ़ाए तरकसकें तीरसँ भरि कसि दैत छल । गर्व सँ भारी दर्प कए धनुषकें तनैत छल । कतेको फौज (पैदल सेना) लगातार निकलि रहल छल, तकरा के गनि सकैछ ? ओकरा सभक पएरक भार सँ वराह ओ शेषनाग गरा मोड़ैत छथि आ कूर्म (काछु) उनटि कए करओट फेरैत छथि। (पुराणक अनुसार पृथ्वीकें वराह भगवान् अपन दाँत पर उठाए ऊँच कएने छलाह, शेषनाग मस्तक पर रखने छथि आ तनिका कच्छप भगवान् पीठ पर रखने

छथि, अर्थात् सब पर पृथ्वीक भार अछि आ पृथ्वी पर जे सेनाक भार पड़ल ताहि सँ ई लोकनि तिलमिलाए उठलाह) ।

मोजा=पएरक वस्त्र । चाप (मै०)= दबाब । सीगिनि=सींगक धनुष । कसीस (फा०)-आकर्षण । गरुअ-भारी । फौद (अव०)-फौज (फा०) ।। २० ।।

करोड़ो धनुषधारी सैनिक दौड़ए लगल, लाखो संख्यामे ढेलवाह चलए लागल । चड़फड़ अंगवाला फलकधारी सब चलल । तरुआरिक नोंकक तरंग चमकए लागल । मंगोल जातिक यवन मत्त भेल ककरो बात नहि बुझैत छल । ओ खुन्दकारक कारण रणमे युद्ध करैत छल । कखनो ओ काँचे मांस खाए लैत छल, कदम्बरीक (मदिराक) रस सँ ओकर आँखि लाल छलैक ।

ढलवाइक-ढेलवाह (मै०) । फलक (सं०)-फर (मै०)= बाणक नोंक । खुन्दकार (फा०)-न्यायाधीश । काँचे माँसु (मै०) ।। २१-२२ ।।

ओ सब आधे दिनमे बीस योजन तक दौड़ जाय, बगल मे काँखतर (झोड़ा मे) लटकल रोटी खाए दिन बिता लेबए, सोँटा केँ काटि (चीरि) धनुष बना लेबए आ घोड़ा पर चढ़ि दौड़ि कए पहाड़ पर चढ़ि जाए । गाय आ ब्राह्मणोक वध केँ दोष नहि मानए आ शत्रुक नगरक नारीकें बन्दी बनाए आनि लेबए, युवक तुर्कक बोल सँ सैकड़ो-हजारो सैनिक हर्ष सँ हँसि उठए आ लगले रुष्ट भए जाए ।

जोजन-योजन-चारि कोस । वेलक-फराठी ।। २३-२४ ।।

आओर कतेको धांगड़ जाइत देखि पड़ए जे गाए कें मारि 'बिसमिल' कहि खाए लैत छल ।।

धाँगर=विशाल शरीर वाला (यवन) । गोरु=गाए । विसमिल=यवनक देवता ।। २५ ।।

धाँगर सेना मे बहुतो लटक सेना रहैछ, से जाहि दिस धड़ाक दए हुलैत अछि ताहि दिसक राजाक घरक युवती हाट पर बिकाइत अछि ।

(सब किछु लूटि भेला पर विवश भए हारल राजा स्त्रीकें हाट चढ़ाए बेचि लैछ ।) लटक=लम्पट, छिटफुट सेना । धाड़े=आक्रमण करैत ।। २६ ।।

ओहि सेना सभक हाथ मे एकहक टा साबर अछि, चेथड़ा-कोथड़ा सँ माथ बन्हने अछि । दूर तक दुर्गम स्थान मे आगि जराए दैत अछि । नारीकें विकल कए बालक कें मारि दैत अछि । लूटि कए धन अरजन करैछ, पेटे भरब व्यय छैक, अन्याये कए वृद्धि करैछ आ युद्धे सँ ओकर क्षय होइछ । ओकरा ने दीन-हीन पर दया, ने शक्तिमानक डर, ने वासि रोटी आदिक वटखर्चा आ ने विवाहता स्त्री घर मे छलैक ।

साबर=शर्वल (सं०)=सावल (मै०)=लोहाक मोट डंटा जकर आगू दिस किछु पातर एवं लिबल रहैत छैक जाहि सँ मोट लकड़ी उनटाओल जाइछ । विभारि=विह्वल कए । कन्दल(सं०)-युद्ध । सकता=शक्तिशाली । वासि=वसिया । संवल=बटखर्चा ।। २७-२८ ।।

ने ओकरा महान् व्यक्तिक शंका रहैत छैक जे हमर नीच कर्म देखि की बुझताह आ ने चोरक डर । ने ओ अपवित्र बुझैत अछि, ने रवि चन्द्र आदि ग्रहक नीक-अधलाह गति जनैत अछि, ने ओकरा पाप सँ घृणा, ने धर्मक प्रयोजन, ने शत्रुक आक्रमणक शंका आ ने मित्रक लाज छैक जे नीच कर्म देखि लेताह ।

अपइत=अपैत=भात आदिक सम्पर्क सँ अशुद्ध वर्तन आदि जे ऐंठ नहियों रहला पर अपवित्र मानल जाइछ, उपहत । गर्हा (सं०)-निन्दा ।। २९ ।।

ओकरा ने वचन स्थिर, ने कम भोजन, ने जसक लोभ, ने अजसक डर, ने शुद्ध मन, ने नीकलोकक संग, ने पीबाक छोड़नाइ आ ने युद्धक भंग होइत छैक ।

ग्रास (सं०)-कओर । उपशम=छोड़नाइ । जुझबा=युद्ध करबाक ।। ३० ।।

एहन सैन्यदल मे बहुतो लटक (पाछू सँ संग लगनिहार) सब जाइत देखि पड़ैछ जे भोजन-भाषण छोड़ैत नहि अछि आ चलबा सँ हारि नहि मानैत अछि, अर्थात् चलिते रहैछ ।

लटक=सेनाक संग लटकि गेनिहार । भक्खण=भक्षण वा भाषण । परिभूत=थाकल ।। ३१ ।।

तकरा पाछाँ सँ चलैत हिन्दू-सैन्यदल आबए लागल जाहिमे राजा सबकें गनब पार नहि लगैछ त राउत कें के गनि सकैछ ?

पारिअइ=पार पाबि सकैछ । राउत=राजपूत । लेक्खिअ केन=के लेखा कए सकैछ ।। ३२ ।।

अनेक देशक राजा बादशाहक सेवा मे अएलाह, ओसब सैन्य प्रयाण मे जाए लगलाह जे अपन-अपन धनक गर्व सँ भरल आ संग्राम मे सुन्दर लगैत पृथ्वी पर अँटैत नहि छलाह । राजपूतक पुत्र बहुतो चलैत रहलाह जनिक पएरक दबाब सँ पृथ्वी काँपए लागल । राजा सभक पताका ओ राजचिह्न भिन्न-भिन्न छलनि, हुनक पएर सँ उड़ल धूरा सँ सूर्यक रथ झँपाए गेलनि ।

दिगन्तर=दोसर दोसर दिशा । सेवाँ=सेवाक लेल, वर्णरत्नाकरमे 'तोरि सेवाँ' आएल अछि । कटकाजी=कटकक प्रस्थान । रइरह=रविक रथ ।। ३३ ।।

ओ सब चारि-चारि कोस दौड़ि जाइत छथि, घोड़ाकें नचबैत (चक्कर कटबैत) गाढ़ बोल बजैत छथि । लाल, पीयर आ कारी चामर प्राप्त करै छथि । कान मे कुण्डल डोलि रहल छनि । अएबा-जएबाक रेड़ामे रास्ता बदलबाक क्रममे एक युग बदलि जएबाक भान होइत अछि । जोर सँ तबला ओ नगाड़ाक बजबाक कारण कोनो बात कान सँ सुनल नहि जाइत अछि, तें अनका इशारासँ लग बजओल जाइत अछि ।

गढ़िम=गम्भीर, अभिमान भरल । आवर्त=अएबाक वेग, विवर्त= जएबाक वेग । भाणा=भान भेल, बुझल गेल । निसान=रणक बाजा । साने=संकेत, इशारा । हकारब=समीप अनबाक हेतु कहब ।। ३४ ।।

खच्चर, गदहा तथा बड़द लाखो चलल । भेड़ी महिसा कड़ोरो छल । ओहि सभक सबार चलि रहल अछि । ओकरा सभ पएरक घर्षण (रगड़ा) सँ पृथ्वी छोट भेल जा रहल अछि । जे सैनिक पाछू रहि गेल से लड़खड़ाइत ठामहि ठाम बैसए लागल । ओ अपन दल कें नहि पबैत पाछुए रहि गेल, अपन सामान नड़ाए देलक (ठामहि छोड़ि देलक) । नोकर सब भुखले घूमि रहल अछि ।

वेसरि=खच्चर । इड़िका=भेंड़ी । पुहवी=पृथ्वी । गोहन=अपन दल । गुलाम=नोकर ।। ३५ ।।

तुर्क सभक फौज हाथीक हौदे-हौदे (पीठ परक ओछान सभ पर) चढ़ि तेजीसँ (सोझे निडर भए) चारू भर घूमि रहल अछि आ हिन्दू सैनिक ताक (अवसर) पाबि (कतराए) लड़ैत रणभूमिमे उतरैत अछि । असपख, एकचोइ, सरैचा, शामियाना, कारिगह आ मण्डल (गोल तम्बू) नामक कपड़ाक घरकेँ गनल नहि जा सकैछ । एहि सबकेँ पूर्वी नगर जौनपुरक संरचना कहल जा सकैछ । आखण्डल=इन्द्र, तनिक दिशा पूब । जौनपुर दिल्लीसँ पूबे अछि ।। ३६ ।।

जखन सुलतान चललाह त तकर लेखा-जोखाक अन्त के जानि सकैछ । सूर्य अपन तेज समेटि लेल, आठो दिक्पाल केँ कष्ट होबए लागल, पृथ्वी धूरा सँ अन्हार भए गेल, तहि सँ चकबी (चकबाक स्त्री) असमर्थ भए प्रियकेँ देखब छोड़ि देलक, सूर्य चन्द्रमाक समान भए गेलाह । एहन विकट समय केँ कोना बिताएब ? सैन्यदल जंगल ओ दुर्ग केँ दलमलित कए पएरक भार एवं आघात सँ पृथ्वीकेँ खुनि देलक । विष्णु ओ शंकर डरेँ मिलिकेँ एक हरिहर रूप भए गेलाह ओ डरेँ ब्रह्माक हृदय डगमगाए लागल ।

अन्हार मे चकबा-चकबीकेँ वियोग भए जाइत छैक । इन्द=इन=सूर्य । कमन परि=कोन तरहेँ । पेलब=प्रेरब=बिताएब ।। ३७ ।।

महिसा मनसूबा कए दौड़ि घोड़सबार केँ मारए लागल । हरिण हारि कए (विवश भए) वेगसँ चलब छोड़ि देलक, जकरा पैदल सैनिक हाथहिसँ पकड़ए लागल । खढ़िया ओ मूस डेराए गेल, पक्षी सब उड़ि कए आकाश चल गेल, एतए नीचामे सेनाक पएर सँ पिचाए आ ओतए आकाशमे ओकरा बाज झपटि खाए लागल । इब्राहिम शाहक सैन्यक प्रस्थान मे जतए-जतए सेना जाए ओतए खुनि, खोधि, चूरि, पकड़ि मारए लागल, एको जीव जन्तु उबरए नहि पाबए ।

मनुसाए=मनकेँ बढ़ाए । हलु=हरु=हरण कएलक । सैचान=बाज पक्षी ।। ३८ ।।

एहित तरहें दूर तक आनो-आनो द्वीपक राजाक नीन उड़बैत, विदलित एवं व्याकुल कए चूरि चापि (तर कए, अधीन कए) कए, पहाड़क गुफा सभ कें झोड़ैत, शिकार खेलाइत, बाण मिलबैत, शत्रुक दर्प (घमण्ड)क भङ्ग करैत, वनविहार, जलक्रीड़ा करैत, मद्यपान सुरतक उत्सवक रीति कए, राज्यसुखक अनुभव करैत, बाट पार कए तिरहुत पैसलाह आ सिंहासन पर चढ़ि सुलतान बैसि गेलाह ।

चापल=पाएर तर दबबैत । तकत=तख्त (फा०)=सिंहासन ।। ३९ ।।

तिरहुत मे नियुक्त अपन खास व्यक्ति सँ दुनू पक्षक (कीर्तिसिंह ओ असलानक) कथ्य (पक्ष) सुनि कए तखने सुलतानक आदेश भेल जे सुलतान त बड़ पराक्रमी अछि, कोन तरहें ओकरा भगाओल जाए ।। ४० ।।

तखन राजा कीर्ति सिंह कहए लगलाह-प्रभो ! अहाँ की ई कुमन्त्रणा (व्यर्थक परामर्श) करैत छी ? हीन वचन सँ की समय बितबैत छी ? कियेक शत्रुसेनाक विचार करैत छी ? कियेक शत्रुक सामर्थ्यक कल्पना करैत छी । सब हमर पाछू चलि देखओ, हम ओहि रणभूमिक भँडुआ (उपहास योग्य) कें अनैत छी । पाखरें पाखरें ठेलि कए असलानकें पकड़ि समर्पित कए दैत छी ।

खप्पिअ=खेपैत छी । काञि=कियेक । पाखर=अश्वकवच ।। ४१ ।।

आइ हम शत्रुताक उद्धार कए लेब (शत्रु सँ बदला लए लेब) यदि शत्रु संग्राम मे आबि जाए । यदि ओकर पक्षसँ सदलबल इन्द्रो अपन पराक्रम लाबथि, यदि ओकर रक्षा ब्रह्मा-विष्णु सहित शम्भुओ करए लागथि, सर्पराज शेषो ओकर रक्षामे लागि जाथि, कोप कए यमराजो हमरा दबाबए लागथि तैयो हम असलानकें मारबे करब आ ओकर शोणितक नदीमे पएर देब जँ ओ अपन अन्त घड़ी मे प्राण लए पीठ नहि देखाए जाए' ।

वेर=वैर=शत्रुता । सपक्ष=दलसहित । अवर=अओर । गोहारि=रक्षा । चाप=दबाएब । अवसान=अन्त ।। ४२ ।।

तखन सकल सेना कें सारांश (संक्षेप) मे फरमान पढ़ि सुनाओल गेल– कीर्तिसिंहक प्रतिज्ञाक पूर्ति करबाक हेतु सेना नदीक पार करए ।

फरमान=राजाक आदेश । वाचिअ=पढ़ल गेल । हसम=हश्म=सेना । सार=मुख्य बात । पूरनहिं=पूरा करबाक हेतु ।। ४३ ।।

शत्रुक सेनाक भङ्ग करबा मे भारी मलिक महमूद मगानी (इब्राहिम शाह) घोड़ाकेँ दौड़ाए गण्डक नदीक पार भेलाह । ओम्हर 'असलान' एक-एक फौज जुटाए अपन सेना केँ सजओलक । नगाड़ा, पिपही, ढोल, मृदंग आदि रणवाद्य बाजए लागल ।

पेरि=प्रेरित कए । गरुअ=गुरु=भारी, अधिक बलशाली । मलिक=अधिपति । मगानी=मैकानी (फा०)=श्रेष्ठ पदासीन । फौद=फौज (फा०)= सेना । काहल=फूकि कए बजाबए बाला बाजा ।। ४४ ।।

राजा कीर्तिसिंहक नगर राएपुरक पुबरिया क्षेत्र (मैदान) मे दुपहर दिनमे दुनू सेना टकराएल आ योद्धा सभक भिड़न्त बाझि गेल । सेनाक पएरक आघात सँ पृथ्वी काँपए लागल, पहाड़क चोटी टुटए लागल, प्रलयकालक वर्षा जकाँ बाण पड़ए लागल आ कपड़ाक कवच खुजए लागल ।

राए=राजा कीर्तिसिंह, तनिक पुर राएपुर गण्डक सँ पूब दिस अछि । पहरा दुइ वेरा=दुपहरक वेला=समय । वेबि=द्वे अपि (सं०)=दुनू । बजल=बाझल । भटभेड़ा=भट (वीर) सभक भिड़ान । काण्ड=बाण । पटवारण=कपड़ा जे अस्त्रक निवारण कए देहकेँ बचाबए, कवच ।। ४५ ।।

वीर सभ 'रे रे अरे' ! बजैत उत्साह सँ रोमांचित होइत आगू बढ़ए लागल, तलवारक धारक तरंग सँ चारू दिस चमचमाए लागल, घोड़सवार घोड़ा केँ सन्तुलित कए दौड़ि शत्रुदलमे पैसए लागल जकरा सँ बँचबाक लेल फरिआइत सैनिकक दल मत्ता हाथीक पाछु होइत नुकाए लागल ।

रेकार='रे रे' शब्द । तोरि=तोलि=सन्तुलित कए, त्वरित=झट हाँकि । परजुत्थ=शत्रुक झुण्ड । मतङ्गज=हाथी, मातंग । फरिआइत= फलक-धारी, नोंकदार बाण वाला ।। ४६ ।।

धनुषक डोरीक टंशब्दक भार सँ आकाशमण्डल भरि गेल । पैदल सैनिकक अनेक दिस सँ पाखर अस्त्र उठए (फेकल जाए) जे शत्रुक समुदायकेँ चूर चूर करए लागल । तामसें पकपक करैत वीर बढ़ल जे अपन दर्प (घमण्ड), पराक्रम ओ गुणक प्रचार करैत रहल । सरओं खेलाएल (व्यायाम करएवाला) सभक पूर्वकृत श्रम कुश्तीक मारि मे चल गेल (समाप्त भए गेल ।)

सीगिनी=शृंगिणी=सींगक बनल धनुष । फौद=फौज=सेना । परचक्कह शत्रुक चक्र (दल) । सरमी=श्रमी=भारी वस्तु उठाए व्यायाम कएनिहार । सरमेरा= श्रममेलक=कुश्ती ।। ४७ ।।

समतल मैदान मे दुनू सेनाकेँ भेँट (आमना-सामनी) भेल । डंटा ओ धनुष चलए लागल जकर चोट वस्त्रक कवचकें उनटि देलक । तखन भुजारूपी दण्डे थेघए (टेकए) वाला भए गेल ।

चौपट=चतुष्पट=चारू दिस समताल । पटवाल=कवच । थेघब=शरीरक भार केँ टेकब ।। ४८ ।।

हुंकार कए वीर सब गरजि रहल छल आ पैदल सैनिकक गोलबन्दी केँ भंग करैत छल । भगैत सैनिकक धारा (पाँती) टूटि रहल छल आ बाणसँ कवच फुटैत छल ।। ४९ ।।

राजपूत सब रोष सँ युद्धमे लागि गेल, खड्ग सँ खड्ग केँ भाङए लागल । अत्यन्त रुष्ट शूर सब आबए लागल, रास्ता-बेरास्ता दौड़ए लागल ।। ५० ।।

एक एक कए वीर एक एक सँ भिड़ए लागल, पराई (शत्रुसम्बन्धी) लक्ष्मीकेँ मेटाबए लागल, अपन मान बढ़ाबए लागल, बेलक नामक तीर सँ शत्रुकेँ मारए लागल आ आर-पारक बात बुझैत स्थानमुद्रा (धनुर्युद्धक आसन) मे धनुष सँ युद्ध करए लागल ।

पारारी=शत्रुक । ओआर-पार=अवारपार=आरपार ।। ५१-५२ ।।

दुनू दिस सँ पाखर उठए लागल (फेकाए लागल) । बीच युद्ध भूमिमे संघर्ष बझि गेल । खड्ग सँ खड्ग टकराए लागल, आगिक चिनगी उड़ए लागल । घोड़सबारक तलवारक धार सँ राउतक संग घोड़ो टूटि गेल (खण्डित भए गेल) । 'बेलक' नामक बाणक वज्र समान चोट सँ कवचक संग काया (शरीर) सेहो फूटि गेल । शत्रुक हाथीक पाँजर मे बर्छा पैसि गेल, ओतए सँ शोणितक धार ऊठि कए आकाश केँ भरए लागल । एहि तरहेँ राजा कीर्तिसिंहक कार्यमे उत्साह सँ वीर सिंह संग्राम कए रहल छथि।

भेट=भिड़न्त वा साक्षात्कार । फुलुँग=स्फुलिंग, चिनगी । कज्जरसेँ=कार्यमे रुचि सँ ।। ५३ ।।

एहि युद्ध केँ धर्मराज अओर सुलतान देखैत छथि । आकाशमे इन्द्र, चन्द्र, अन्य देवता, सिद्ध ओ गन्धर्व उतरि गेलाह । वीर सभक युद्ध देखबाक लेल विद्याधर सभ आकाशकेँ भरि देने छथि । जतए जतए शत्रुक दल टकराए ओतए-ओतए तलवार पड़ए लागल । शोणित सँ पृथ्वी स्नान कए लेलक । कीर्तिसिंह एहि तरहेँ मारि कए रहल छथि ।

अवरु=अओर । पेक्खई=देखैत छथि । अन्तरिक्ष=आकाश । संघल=संघट्ट=टकराएल । घल=घटा=समूह ।। ५४ ।।

रणभूमि मे रुण्ड (कटल धर) ओ मुण्ड पड़ल छल, बाँहि रूपी दण्ड खसल छल । सियार सब नरकंकालक खण्डकेँ कड़कड़बैत (चिबबैत) छल । टुटैत शरीर माँटि पर लोटाइत छल । लड़ैत चलैत पएर चेष्टाहीन भए जाइत छल । अँतरी सभक जालमे बन्हाएल ओझराएल गिद्ध चर्बीक वेग मे बुड़ैत-डुमैत उड़ि जाइत छल । मुइल देहकेँ निकालैत शोणित-चर्बी पिबैत घुमैत प्रेत नरमांसक खण्ड बोकरैत छल ।

खले=स्खलित=खसल । कलक्केइ=कड़कड़ शब्द सँ चिबबैत । पझालन्ति=पझाइत अछि, मिझाइत अछि । अन्तावली=आँतक समुदाय । वसा=चर्बी । गअं=गत, मुइल व्यक्तिक शरीर ।। ५५-५६ ।।

सियारनी जोर सँ पिक्की (हुआ-हुआ) मारैत अछि (घोल करैत अछि) । बहुत भुखाएल डाकिनी (देवीक परिचारिका शक्ति) डाक दैत (जोर सँ शब्द करैत अछि) । बहुत उत्फाल (कूदफान) करैत वेताल (भूत लागल हँसैत शव) घोल करैत अछि आ उनटैत-पुनटैत कबन्ध (मूड़ी रहित धर) पड़ल अछि ।

बाणक वर्षासँ वेधल सैनिक हाथ सँ इशारा करैत अछि आ उसाँस-निसाँस लैत प्राण छोड़ैत अछि । जतए शोणितक लहरि भरल नदीमे अनेक तरंग उठैत अछि, ओतहि झूल सँ सजाओल हाथी डूबि जाइत अछि ।

सिआ=शिवा=गिदड़नी । सरासार=शरक आसार= (वृष्टि)।

सान=संकेत=इशारा । सारि=हाथीक पीठ पर ओछाओल गद्दाक कोर परक किनारी ।। ५६-५८ ।।

शोणित सँ रङल माँथ केँ फोड़ि गिदड़नी सब उफरि कए खाए रहल अछि । जखन हाथ सँ हाथीक मुइल देह नहि उठैत छैक तखन वेताल पाछू हटि जाइत अछि । मनुष्यक कटल धर धड़फड़ाइत (उछलैत) अछि जकर मर्मस्थल (शिरा)केँ वेताल सब तीरि रहल अछि । शोणितक नदीक कछेर मे भूत सब झलहरि (जलक्रीड़ा) खेलाए रहल अछि ।

डमरूक ढक् ढक् शब्द उछलि गेल, सब दिस डाकिनी सब डाकनि (तेज शब्द) दए रहल अछि । मनुष्यक कान्ह एवं धर सँ पृथ्वी भरि रहल अछि, राजा कीर्ति सिंह युद्ध करैत छथि ।

फेरवी=सियारनी । पेल्लइ=प्रेरित करैत, तीरैत अछि । जरहरि=जलकेलि ।। ५९ ।।

दुनू सेना टकराएल । तरुआरि खण्डित भेलहु पर नहि मानैत अछि (चलिये रहल अछि) । शरीर युद्ध भूमि पर पड़ल रहल आ ओ वीर दौड़ि कए विमान सँ चलि पड़ल, आकाशमे अप्सरा सब स्वच्छ हाथेँ हुनका आँचर हौँकैत अछि जकरा सभक आँखिक कोर घुमैत अछि जे भौँरा सन सुन्दर एवं प्रेम सँ चिक्कन अछि । गन्धर्व सभक गीति बाजाक संग बहुत नीक लागि रहल अछि, जकर विशुद्ध परिचय के जानि सकैछ ? श्रेष्ठ कीर्ति सिंहक रणसाहस सँ देववृक्षक फूलक वर्षा होबए लागल ।

वेबि=द्वे अपि=दुनू । वीजए=हौंकए । सुरतरु=देववृक्ष । सुविट्ठि=सुवृष्टि ।। ६० ।।

तखन मलिक असलान चिन्ता करए लागल- हमर सब सेना खसि पड़ल, कुपित बादशाह (इब्राहिम शाह) आबि गेलाह । हमर अन्यायक महान् गाछ फड़ि गेल, दुष्ट दैवा (दुर्भाग्य) हमर निकट आबि गेल । तेँ एहि चंचल जीवनकेँ पलटि (परिवर्तित कए, उत्तम काज दिस मोड़ि कए) स्थिर निर्मल यश लए लेबाक चाही । कीर्तिसिंह सँ सिंह समान बनि वीरोचित एक भिड़न्त दए दी।

सञो=सँ । सिंह सञो=सिंहसम । भट भेडा=भटक भिड़न्त ।। ६१ ।।

ई निश्चय कए असलान हँसि कए (उत्साहित भए) दहिना हाथ मे शस्त्र लए लेलक आ खड्ग लए रणवृत्त (युद्धक परिस्थिति) केँ पलटि देलक (बदलि देलक) । ओतए एक-एक कए प्रहार पड़ए लागल जतए खड्ग सँ खड्गक धार टकराए लागल ।

घोड़ाक लघिमा (फुर्ती) एवं स्वस्थताक कला प्रदर्शित भए रहल छल, तरुआरि विजलोकाक ज्वाला जकाँ चमकए लागल । सैनिकक टोप टरए एवं शरीर टुटए लागल, शरीर सँ शोणितक धारा सँ धार बहए लागल ।

ससत्थ=सशस्त्र । लंगिमा=लघिमा (हल्लुक भए फुर्त्ती) । चंगिम=सुन्दरता, स्वस्थता । चारु=चलल । विज्जु झला=विद्युतक ज्वाला । धारहि धार=धाराक नदी ।। ६२-६३ ।।

मनुष्यक देहक शोणितमय रंग घोड़ाक देह पर बसि गेल (टपकि पड़ल) । से लगैत छैक जे रोषवश देह केँ छोड़ि रहल हो । सब लोक ओहि युद्धकेँ तेना देखैत छल जेना महाभारत-युद्धमे अर्जुन ओ कर्णक युद्ध भए रहल हो । लगैत अछि जे बाणासुर सँ युद्धक विकट वार्ताक अधिकता जानि विष्णु ओ महादेव युद्ध कए रहल होथि । महाराज कीर्तिसिंह असलान केँ चापि (दबाए) लेलनि । निदान (निरुपाय) भए असलान पीठ देलक (हारि कए भागल) ।

णं=ननु (सं०)=जनु । आहव=युद्ध । माहव=माधव । विवत्त=विकट वार्ता ।। ६५ ।।

ताही खन राजा कीर्तिसिंह ओकरा (असलान केँ) पड़ाइत देखलनि आ नीक जकाँ चुभा कए आक्षेप कएलनि– जाहि हाथेँ हमर पिताकेँ मारने छलेँ से हाथ (हाथक शक्ति) के हरि लेलकौ ? ६६ ।।

अरे रे असलान ! प्राण बचएबाक लेल कायर ! अपन मानक अपमान कएनिहार ! युद्ध भूमिकेँ छोड़बाक साहस कएनिहार ! केवल जान केँ प्रिय मानएवाला ! की जाइ छेँ ? अपजस सिद्ध कए शत्रुक दृष्टि सँ पीठ देखाए भावहु जेकाँ भैंसुरक सोझाँ बचाए जाइ छेँ ।। ६७ ।।

जाहि प्राण धएकेँ जीबैत छेँ, जीवह गए । जो जो असलान ! हमर यश तीनू लोकमे पसरि रहल अछि । तोरा जीवनदान दैत छियहु (तोरा खिहारि नहि मारबौ) ।। ६८ ।।

जेँ तोँ रणभूमि सँ भगैत छेँ तेँ तोँ कायर थिकेँ आ जे तोहरा (भगोड़ा) केँ मारए सेहो कायर होएत । जो जो सागरक (समुद्रक) लग अनुसरण कर (अत्यन्त दूर भागि जो) । एहि तरहेँ हँसि कए दुनू नायक (वीरसिंह ओ कीर्ति सिंह) कहैत छथि ।। ६९ ।।

तखन युद्धमे जीति राजा कीर्ति सिंह अपन गाम पलटलाह (घुरि अएलाह) । शंखक शब्द गुंजल, नाँच-गानक संग बाजा बाजए लागल, चारू वेदक पाठ गनगनाए लागल, शुभ मुहूर्तमे राज्याभिषेक (राजतिलक) भेल । बान्धव लोकनि उत्साह करए लगलाह । तिरहुत देश अपन गौरव केँ प्राप्त कएलक । पातिसाह (प्रधान राजा) जनिका तिलक लगओलनि से कीर्ति सिंह राजा भेलाह ।। ७० ।।

एहि तरहेँ युद्धभूमिमे साहस कए शत्रुमथनक आरम्भहि मे उदयकेँ प्राप्त करएवाली लक्ष्मीकेँ श्रीकीर्तिसिंह ता धरि बढ़बैत रहथु जा धरि चन्द्र ओ सूर्य संसारक संचालन करैत रहथि आ माधुर्यक उत्पत्तिक स्थान तथा बड़भारी यशक विस्तारक शिक्षा देबए वाली जे कवि विद्यापतिक भारती (वाणी) स्वरूप ई ग्रन्थ कीर्तिलता ता धरि सज्जनक मुँह मे खेलाइत रहओ जा धरि ई संसार रहए ।। ७१ ।।

इति महामहोपाध्याय उत्कृष्ट ठाकुर श्री विद्यापतिक विरचित कीर्तिलतामे दीप ग्रामवास्तव्य विद्यावाचस्पति पण्डित श्री शशिनाथ झाक व्याख्याक चारिम पल्लव समाप्त भेल ।

ई ग्रन्थो पूर्ण भए गेल ।

परिशिष्ट-I

कीर्तिलता में सूक्ति

अवसओ विसहर बिस वमइ	–	1–8
दुज्जन वैरि न होए	–	1–9
जो बुज्झिह सो करिह पसंसा	–	1–11
दुज्जन नाम मइल्ल	–	1–11
देसिल वअना सबजन मिठ्ठा	–	1–13
णहु पुरिसो जम्ममत्तेण	–	1–17
सो पुरिसो जसु माणो	–	1–18
कबहु एहु नहि कम्म करिअइ	–	2–6
छोटेओ तुरुका भभकी मार	–	2–49
जइ पहु बड़ओ पसन्न हो तञो सिट्ठाअत रज्ज	–	3–2
आन करइते आन भउ	–	3–11
पुनु कि परिस्समे सिज्झिहइ कालहि चुक्किय कज्ज	–	3–12
अइसनेञो उपताप गुणिञे न गणिअइ	–	3–13
दुक्खें सिज्झइ राअघर कज्ज	–	3–14
सुहिअ पुच्छि संसअ हरिज्जइ	–	3–14
पुरिस कम्म साहस करिज्जइ	–	3–14
होञे होसइ एक्क पइ	–	3–14

चन्दन मूलेँ इन्धन बिका – 3-35

घीवक बेचाँ दीअ घोड़ – 3-36

जवन सभावहि निक्करुण – 3-27

वित्तेँ हीन णत्थि वाणिज्ज – 3-28

न उण मानधन भिक्ख भावइ – 3-28

विपअ न आबइ तासु घर, जसु अनुरत्ते लोअ – 3-38

आब कतए ओ राए – 3-69

लूटि अरजन पेटे वय – 4-28

सरमी केरा सरम गेल सरमेरा मारी – 4-47

अनअ महातरु फलिअ – 4-61

जे करेँ मारिअ वप्प मझु, से कर कमन हरेओ – 4-66

मान विहूना भोअणा, सत्तुक देलेँ राज ।
सरण पइट्टे जीअना, तीनू काअर काज ।। 2-10

जे अपमाने दुक्ख न मानइ, दान खग्ग को मम्म न जानइ ।
परउअआरेँ धम्म न जोअइ, सो धण्णो निच्चिन्ते सोअइ ।। 2-10

अवसओ उद्दम लच्छि वस, अवसओ साहस सिद्धि ।
पुरुसविक्खण जं चलइ, तं तं मिलइ समिद्धि ।। 2-19

बे-भूआला मेइनी, वे ण्णाएक्का नारि ।
सहए न पाबए वेवि भर, अवस कराबए मारि ।। 3-7

वाणिअ होइ विअक्खणा, धम्म पसारइ हट्ट ।
भित्ता मित्ता कञ्चना, विपअ काल कसबट्ट ।। 3-30

परिशिष्ट-II

कीर्त्तिलता में फारसी शब्द

प्रथम पल्लव- XX

द्वितीय पल्लव में- अनु०-38-बजार, हजार, बाँदि, बन्दा, गन्दा । 39-तत्थ, कूजा, तबेल्ला, तीर, कम्माण, दोक्काणदारा, सराफे, बाजू । 40-खरीद, गुलाम, तुरुक्क, सलाम, खीसा, पइज्जल्ल, मोजा, मीर, बल्ली, सइल्लार, खोजा । 41-अबेबे, सराब, कलीमा, कलाम, कसीदा, मसीदा, कितेबा । 42-खोदाए, तुरुक, सराब, खराब, बाँदि, कबाब, दिरम, फरीबी, पएदा, । 43-खान, सालन, नेवाला, गाँडू, तीर, मुकदम । 44-मतरुफ, तुरकिनी, सअद, सेरणी, दोआ, दरवेस, मख्दूम, नबाबइ, खुन्दकारी, हुक्कुम, । 45-बाँग, विसमिल । 46-खोजा, रोजा, कूजा, नमाज । 47-बेगार, चुडुआ । 48-मसीदा । 49-गोरि, गोमठ । 52-तुरुक्का, खान, मुलुक्का, गालिम । 53-सइअदगार, दरबार, खाण, उमारा, महल, मजेदे, सुरतान, सलाम, इनाम । 56-खास, दरबार । 57-दारखोल, दबाल, दरबाल, औअलदर, म्यानदर, स्यालदर, दारिगह, वारिगह, निमाजगह, खोआरगह, खोरमगह । 60-दरखोल, महल = कुल-95 शब्द ।

तृतीय पल्लव में- अनु०-2-उज्जीर । 3-खोदालम्ब । 4-पापोस 5-फरमान, असलान । 9-खान, उमारा । 10-देमान, अरदगर, गद्दबर, कुरबक, अदप । 17-तकतान, सुरतान, इब्राहिम । 22-रैयत । 23-रैयत । 26-बाँदी । =कुल-18 शब्द ।

चतुर्थ पल्लव में- अनु०-4-सुरुतान, फरमान, कादी, खोजा, मखडूम, खोदावरद, खत, दहलेज । 20-चाबुक, मोजा, कसीस, फौद । 22-खुन्दकार । 23-बगल, कमान, बेलक । 65-गोरु, विसमिल । 35-गुलाम । 36-फौद, हौदा,

सरइचा, सरमाना । 39–सिकार, तीर, तकत । 40–फरमान । 43–फरमान, हसम । 44–मलिक, महमद, मगानी । 47–फौद । 51–बेलक्क । 53–वेलक । 65–मल्लिक । 69–काअर=कुल 37 शब्द ।

इस तरह 95+18+37=150 फारसी शब्दज शब्द इस कीर्त्तिलता में प्रयुक्त हुए हैं, जबकि कीर्त्तिपताका में ऐसे 31 शब्द आये हैं ।

परिशिष्ट-III

कीर्त्तिलता में चर्चित व्यक्ति और स्थान

	नाम	पल्लव	अनु०	विवरण
1.	अक्खउरि सिरि केसव-	1	29	आक्षपटलिक (कीड़ा सचिव)
2.	असलान-	2	4	
		3	5,6	
		4	1,3,40,41 42,44,61, 65,67,68	मलिक, असलान, तुर्कसरदार
3.	आनन्द खान-	3	34	कीर्त्ति सिंह के मन्त्री एवं उनके बहनोई-'भुतहरी कलिआम' कुल के गणेश्वर के पिता, ब्राह्मण । आधिपत्यसूचक 'खान' ।
4.	इब्राहिम शाह-	2	36	जौनपुर का सुलतान
		3	17,12	
		4	38	
5.	ओइनी-	1	22	समस्तीपुर जिले के पूसारोड रेलवे स्टेशन के निकट वैनी गाँव ।
6.	ओइनी वंश-	1	22	इस गाँव के मूल निवासी ब्राह्मण वंश 'ओइनिवार' ।
7.	कामेसर राए-	1	23	कीर्त्ति सिंह के प्रपितामह राज्योपार्जक, महान् पंडित (1342 ई० तक)
8.	कीर्त्तिसिंह-	1	5, 20, 21, 24, 28, 30	

	2	4,5,7,61	
	3	3,11,32,41,45	
	4	2,41,43,54,60	
		61,70,71	चरित नायक
9. केशव कायस्थ-	1	29	देखें-'अक्खउरि'।
10. गएणेश, गएनेसर-	1	20,25,26	कीर्त्ति सिंह के पिता
	2	2,3,6,7	गणेश्वर या गणेश।
	3	4,6	
11. गोविन्द दत्त-	3	35	कीर्त्ति सिंह के मन्त्री, विद्यापति के पितामहभ्राता गोविन्दमानसोल्लास ग्रन्थ के रचयिता। परमवृद्ध।
12. जोनापुर-	2	20	जौनपुर (उ०प्र०), इब्राहिम शाह का नगर।
13. तिरहुति-	2	3	
	3	5,6,9,33,44-	तीरभुक्ति, उत्तर बिहार,
	4	1, 5, 71	मिथिला, कीर्त्तिसिंह का देश।
14. तुरुक्क असलान-	2	4	द्र०- असलान
15. न्याय सिंह राउत-	3	37	कीर्त्तिसिंह के सचिव
16. पातिसाह-	1	26	
	2	14, 66	
	3	3, 4, 21, 41-	एक प्रदेश का शासक, इब्राहिम साह।
	4	61, 70	

17. पिअरोज साह-	1	24	फीरोज शाह तुगलक, दिल्ली का बादशाह ।
18. भवेश-	3	37	विल्वपंचक वंशीय म०म० वर्धमानोपाध्याय के पिता । ओझा विशेषण से जान पड़ता है कि इनका विवाह ओइनवार कुल में था ।
16. भोगाइ, भोगीस राए-	1	24,26	कीर्त्तिसिंह के पितामह
	2	16	राजा भोगीश्वर ।
20. महमद्द मगानी-	4	44	इब्राहिम शाह का नाम ।
21. राएपुर-	4	45	राजा कीर्त्ति सिंह का नगर ।
22. राज सिंह-	3	35	कीर्त्ति सिंह के ज्येष्ठ भ्राता, नामान्तर जयसिंह ।
23. लक्ष्मण सेन संवत्-	2	2	इस संवत् का प्रारम्भ 1109 ई० में हुआ था ।
24. विद्यापति कवि-	1	5, 10	कीर्त्तिलता के कवि
विज्जावइ	4	71	विद्यापति कवि
25. बिहार-	3	6	बिहार राज्य
26. वीरसिंह देव-	1	27	कीर्त्ति सिंह के अग्रज
	2	12	
	3	13	
	4	53	
27. सुरुतान-	3	9,10,15,17	
		39,40,41,44	
	4	2,3,4,19,36	इब्राहिमशाह

28. सोमेश्वर सन्नगहि–	3	29	कीर्त्तिसिंह के बहनोई का भाइ, आनन्द खान का पुत्र, सन्धिविग्रह–सचिव ।
29. हंसराज–	3	34	कीर्त्ति सिंह का मित्र ।
30. हरदत्त–	3	36	कीर्त्ति सिंह का राजपण्डित, विद्यापति के प्रपितामह–भ्राता यदि इन्हें मानें तो ये परमवृद्ध थे ।
31. हरिहर–	3	36	कीर्त्ति सिंह के धर्माधिकारी (न्यायाधीश), बलियास–वंशीय जयधर (माधू, भवसिंह के न्यायाधीश) के पुत्र, भर्त्तृहरि निर्वेदनाटक के रचयिता ।

परिशिष्ट-IV

कीर्त्तिलता के छन्दों एवं गद्यखण्डों की सूची

अनुष्टुप्- 1-2, 4, 5

अरिल्ल- 4-21 से 25

गाहा- 1-17, 18

गद्य- 1-27, 29

2-7, 25, 26, 27, 32, 24, 25, 57, 58, 59

3-13, 31, 41

4-4, 11, 17, 39, 67

चञ्चला- 4-16

चौपाइ- 1-10, 11, 13

2-10, 37 । 4-69

छप्पए (षट्पद)- 1-20, 24, 26

2-2, 3, 12, 29, 42, 43, 44, 56

3-10, 22

4-18, 20, 37, 38, 42, 53, 59, 60

जयकरी- 3-5

तोटक- 4-62 से 65

त्रिभङ्गी (पद्मावती)-2-52 से 55 । 3-21 । 4-1

दोहा 1-6 से 9, 12, 14, 15, 19, 21, 25, 28, । 2-1, 5, 8, 9, 12, 19,, 20, 30, 36, 50, 51 । 3-1, 7, 12, 16, 30, 32, 33, 38, 39 43 । 4-2, 3, 5, 6, 12, 26, 31, 32, 40, 43, 48, 66, 68

नाराच–	4–13, 14, 15
निशिपाल–	3–17, 18, 19, 20
पज्झटिका–	3–34, 35, 36, 37
पद्मावती–	दे० त्रिभङ्गी
पुमानरी–	4–3 से 36
पृथ्वी–	3–45
बाली–	2–15 से 18, 28, 45 से 49 । 3–23, 24, 25, 26 4–27 से 30
भुजङ्गप्रयात–	2–38 से 41 । 4–55 से 58
मधुभार–	4–6 से 10
मनबहला–	दे०–बाली ।
मालिनी–	1–1
रड्डा–	1–16, 22, 23 । 2–4, 6, 13, 14, 31, 33, 60 । 3–2, 3, 4, 6, 8, 9, 11, 14, 15, 27, 28, 29, 40, 42, 44 । 4–19, 41, 54, 61, 70
रथोद्धता–	1–30
विद्युन्माला–	4–49 से 52
शार्दूलविक्रीड़ित–	1–3 । 4–71
षट्पद–	दे०–छप्पए ।
स्रग्धरा–	2–61
हरिगीतिका–	2–21 से 24

कुल पद्य एवं गद्य की संख्या

प्रथम पल्लव में-	30
द्वितीय पल्लव में-	61
तृतीय पल्लव में-	45
चतुर्थ पल्लव में-	71
कुल =	**207**

***

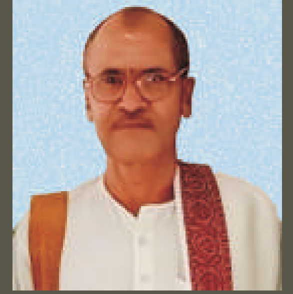
***

विद्यापति कृत कीर्त्तिलता

(अबहट्ठ काव्य, विशुद्ध मूलपाठ, संस्कृत छायानुवाद, 'प्रबोधिनी'-हिन्दी-मैथिली-व्याख्या एवं विस्तृत भूमिका सहित)

सम्पादक अनुवादक व्याख्याकार- डॉ० शशिनाथ झा

विद्यापति कृत कीर्त्तिलता अबहट्ठ भाषा में रचित गद्य-पद्यात्मक राज-चरित वर्णनात्मक प्रख्यात काव्य के आजतक दस संस्करण व्याख्यासहित प्रकाशित होने के बाद भी मूलपाठ में संशोधन की आवश्यकता बनी ही हुई है। इसकी भाषा से कम परिचय के कारण मूल पुस्तक (हस्तलेख) के प्रतिलिपिकारों ने इसे बहुत स्थलों पर विकृत कर दिया, सम्पादकों एवं व्याख्याकारों ने उन-उन अपपाठों का खींचातानी कर अर्थ बैठा दिया और मूल हस्तलेख एवं मूलभाषा (मैथिल अपभ्रंस) की सहायता लेने में शिथिलता की। प्रस्तुत संस्करण में कीर्त्तिलता के मूल हस्तलेख (काठमाण्डू में स्थित) की फोटो प्रति एवं प्रतिलिपि का उपयोग किया गया है, प्राचीन एवं नवीन मैथिली भाषा को दृष्टि में रख कर इसका निरीक्षण किया गया है, मैथिली लिपि से प्रतिलिपि करने में जो स्वाभाविक रूप से भूल होती है, उसका ध्यान रख कर अर्थ संगति के अनुसार पाठ संशोधन किया गया है, पूर्व संस्करणों के पाठभेद से पाठ निर्धारण में सहायता ली गयी है और संस्कृतच्छाया एवं हिन्दी मैथिली व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।



डॉ० शशिनाथ झा

पिता - पं० गङ्गानाथ झा

पता - ग्राम+पो०-दीप,
भाया- झंझारपुर आर०एस०
जिला- मधुबनी-847403
मो०- 9199475909

जन्म तिथि - 15.2.1954

योग्यता - आचार्य (व्या०,सा०), एम.ए., विद्यावारिधि, विद्यावाचस्पति, पाण्डुलिपिविशेषज्ञ

अध्यापन - व्याकरणविभाग, का.सिं.द. संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा-1979 से 2019 तक।
मध्य में- प्राचार्य, सं०म०वि०, लगमा- 1985-1994

सम्मान - 1. भाषासम्मान- साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली-2007
2. मिथिला विभूति- दरभंगा-2007
3. विद्यासागर- दिल्ली-2018
4. शैवभारती पुरस्कार- वाराणसी-2018

ग्रन्थ - संस्कृत, मैथिली एवं हिन्दी में लिखित एवं सम्पादित-101 ग्रन्थ।

विशेष परिचय द्रष्टव्य : http://www.brahmipublication.com/dr-shashinth-jha/

मूल्य : ₹ 50.00

सम्पादक डा. शशिनाथ झा के आदेश से ई-बुक के रूप में प्रकाशित